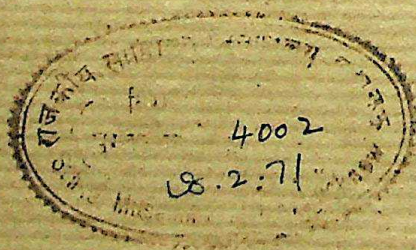


4002

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. _____

Book No. _____



ब्रज भारती

ज्येष्ठ सं० २०२५ वि०



सम्पादक

श्री वृन्दावन दास
बी० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

श्री किशन प्रसाद जैन
संयुक्त प्रधान मन्त्री

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २२]

वार्षिक मूल्य ४)

[अंक १

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	... श्री वृन्दावनदास	१
२.	इतना मत ठुकराओ (कविता)	... श्री भोजराज चतुर्वेदी	४
३.	यावनी के दूर करी नागरी चलाई	... श्री रामस्वरूप आर्य	५
४.	सूर मंजरी	श्री उदयशंकर दुबे एम. ए.	६
५.	ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण क.र.	... श्री बा० श्याम सुन्दर खत्री	८
६.	अध्यक्षीय भाषण (अर्द्धशताब्दी समारोह)	... श्री पं० बनारसी दास चतुर्वेदी	९
७.	त्रिदिवसीय साहित्यिक समारोह	... श्री बा० वृन्दावनदास	१४
८.	ब्रज का संप्रदाय साहित्य	... श्री व्यौहार राजेन्द्र सिंह	१७
९.	राष्ट्रनिर्माण में संस्कृति और साहित्य का योगदान	... श्री गौरी शङ्कर द्विवेदी (शंकर)	१९
१०.	पद्माकर की गंगालहरी और गवाल की यमुना लहरी	श्री भगवान सहाय पचौरी भवेश एम. ए.	२५
११.	वैदिक साहित्य में आभूषण	... डा० राज बुद्धिराजा एम. ए. पी-एच. डी.	२५
१२.	विक्रमादित्य का ऐतिहासिक अस्तित्व	... श्री वृन्दावनदास	२८
१३.	इन नेत्र बिन्दुओं का निर्माता कौन	... श्री हरिश्चन्द्र सिंहल एम. ए.	३२
१४.	पत्र व्यवहार	... श्री कृष्णानन्द गुप्त	३५
१५.	स्वागत भाषण (अर्द्धशताब्दी समारोह)	... श्री वृन्दावनदास	३९
१६.	वर्मा जी नाट्यकृतियों में राष्ट्रीय भावना	डा० लक्ष्मीनारायण दुबे एम. ए. पी-एच. डा.	४२

ब्रज भारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २२]

मथुरा ज्येष्ठ सं० २०२५

[अङ्क १]

सम्पादकीय -

पत्रिका के फाल्गुन अंक और ज्येष्ठ अंक के बीच की अवधि में तीन अपूर्व साहित्यिक समारोह सम्पन्न हो गये । (१) कविरत्न सत्यनारायण अर्द्ध शताब्दी समारोह (२) सूर स्मारक मंडल द्वारा आयोजित सूर समारोह (३) अखिल भारतीय कविवर शिशुपालनिह 'शिशु' स्मृति समारोह । ये तीनों समारोह आगरा मण्डल के अन्तर्गत ही विभिन्न स्थानों पर मनाये गये ।

कविरत्न सं० ना० अर्द्ध शताब्दी समारोह की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसके त्रिदिवसीय कार्यक्रम में कुँवर हनुमन्तसिंह और महाकवि ग्वाल की शताब्दियाँ भी मनाई गईं । तीनों महान विभूतियों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रथक्-प्रथक् एक-एक स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया । मुद्रित भाषणों में भी काफी खोज पूर्ण चर्चा है और इस दृष्टि से वे भी साहित्य की निधि के रूप में देखे गये हैं । इस नवीन साहित्य-सृजन ने हिन्दी की श्री वृद्धि की है । ब्रजभारती के प्रस्तुत अङ्क में हमने कविरत्न की अर्द्ध शताब्दी पर दिए गए अद्भुत पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी का अव्यक्षीय भाषण, इन पंक्तियों के लेखक द्वारा लिखा हुआ समारोह की उपलब्धियों पर एक लेख तथा स्वागताध्यक्ष का भाषण यथास्थान दे दिए हैं । पत्रिका के आगामी अंक में कुँवर हनुमन्तसिंह और महाकवि ग्वाल सम्बन्धी भाषणों को प्रकाशित करेंगे । एक ही अंक में समस्त कार्यवाही का प्रकाशन विस्तारभय से कहीं किया गया ।

सूर स्मारक समारोह भी दो दिन तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया । डा० सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तव इस समारोह की चलती फिरती आत्मा थे । खुला अधिवेशन और विचार गोष्ठी दोनों ही शली-भाँति सफल रहे । डा० श्रीवास्तव की योजना तो बहुत बड़ी और महत्वाकांक्षीपूर्ण है । वे उसके कार्यान्वयन के लिए जी जान से जुटे भी हुए हैं । प्रगति भी हो रही है, देखिए सूरदासजी के इष्टदेव अपने भक्त की कीर्ति स्थापना के विषय में अपने अन्य भक्तों के हृदय में कितनी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करते हैं ?

अखिल भारतीय 'शिशु' समारोह को सम्पन्न हुए तो अभी कुछ ही दिन हुए हैं । यह समारोह ब्रजभाषा और हिन्दी के प्रख्यात एवं लब्ध प्रतिष्ठ कवि श्री राजेश दीक्षित और उनके साथी

श्री कृष्ण कान्त देव की कार्यक्षमता और प्रबन्ध पटुता का बड़ा अद्भुत उदाहरण था। समारोह की व्यवस्था बड़े व्यापक पैमाने पर की गई थी। राजेश जी ने दौड़ धूप करके समारोह के प्रति आर्थिक और मस्तिष्कीय सहानुभूति का अंजन मण्डलव्यापी स्तर पर कर लिया और यही कारण है कि समारोह का रूप व्यापक और बहुविध बन पड़ा। इस सम्मेलन में साहित्यिकों ने बड़ी सह-योगात्मक भावना से भाग लिया। ऐसा प्रतीत होता था कि वे बड़े उत्साह से अपने भाई राजेश जी की खुशी में खुशी मनाने आये थे। कुछ भी हो इस समारोह की सफलता ने श्री राजेश दीक्षित को एक सिद्धहस्त कार्यकर्ता प्रमाणित कर दिया है।

समारोह में राष्ट्रकवि पं० सोहनलाल द्विवेदी, डा. क्षेमचन्द्र सुमन, डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश, श्री रामकृष्ण देव, डा. राजेश्वर प्रसाद आदि चतुर्वेदी विद्वानों का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण रहा। समारोह के अन्तर्गत आयोजित कवि सम्मेलन की सफलता शानदार रही। एक और विशेषता थी कुछ साहित्यकारों के अभिनन्दन के एक आयोजन की जिसका कि उद्घाटन इन पंक्तियों के लेखक ने किया। सर्वश्री जवाहरलाल चतुर्वेदी, अमृतलाल चतुर्वेदी, दीनानाथ सुमनेश, रामलला, कलाश चन्द्र कृष्ण, सुभाषी जी, चक्खनलाल मिश्र, चातकजी, बलवीर सिंह जी रंग, कपिलजी एवं अमृतसिंह जी आदि को एक भव्य कार्यक्रम के बीच उनकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष में एक-एक ताम्रपत्र भेंट किया गया। पं. हृषीकेश चतुर्वेदी के सभापतित्व में लावनी सम्मेलन भी सफल रहा।

इस सम्मेलन के आयोजकों से हमारा अनुरोध है कि समारोह की उपलब्धियों और परिणामों को चिरस्थायी बनाने के लिए एक विवरणात्मक स्मारिका का प्रकाशन अवश्य किया जाय।

भाषा की समस्या

उस भाषा की जिसे देश की जनता का दो तिहाई भाग भली-भाँति बोल और समझ सकता है और शेष एक तिहाई का अधिकांश भी टूटी-फूटी भाषा के रूप में सुन समझ सकता है समस्या ही क्या हो सकती है? उसकी समस्यायें तो राजनीति की देन है अथवा यों कहिए राजनीतिज्ञों द्वारा उत्पन्न की गई हैं। हिन्दी की व्यापकता और लोकप्रियता उसके राष्ट्रभाषा होने की दलील है। किसी भी स्वतन्त्र देश की राष्ट्रभाषा उसकी निजी भाषा ही हो सकती है विदेशी भाषा कदापि नहीं। यद्यपि हिन्दी को कभी राज्याश्रय प्राप्त नहीं रहा तथापि प्रबल लोकाश्रय प्राप्त होने के कारण उसके रथ का वेग बराबर बढ़ता ही रहा है और वह दिन दूर नहीं है जब कि इसके प्रति उत्पन्न हुई समस्त दुर्भावनाएँ विगत काल की वस्तु हो कर रह जायँगी और यह सर्वसम्मत रूप से देश की एक मात्र राष्ट्रभाषा के रूप में अभिषिक्त होगी।

अन्तर्जनपदीय परिषद्

कविरत्न स. ना. अर्द्ध शताब्दी समारोह के अवसर पर एक समिति का गठन हुआ था। इस कार्य को अग्रसारित करने का पुनीत कर्तव्य उसी समिति के सुपुर्द किया गया था। यह कार्य जितना आवश्यक है उतना कठिन भी है। सबसे पहले कार्य की रूपरेखा बनना बड़ा जरूरी है। एतन्निमित्त ब्रजभारती के माध्यम से विद्वानों तथा विशेषज्ञों द्वारा तद्विषयक चर्चा चलाना आवश्यक समझा गया। वादे वादे जायतेतत्त्व बोधः। प्रस्तुत अंक में श्री कृष्णानन्द गुप्त के इन पंक्तियों के लेखक

के नाम दो पत्र मुद्रित हैं। उन पत्रों से इस विषय पर माननीय गुप्तजी का दृष्टिकोण स्पष्टतया परिलक्षित हो जाता है। कोश-निर्माण इस दिशा में एक ठोस कार्य है-ऐसा कार्य जो अब से बहुत पहले ही हो जाना चाहिये।

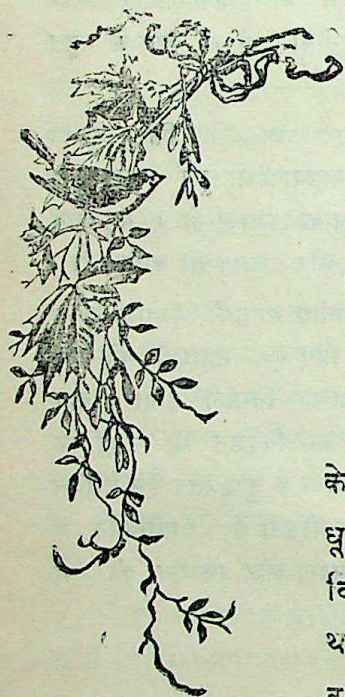
एक-एक स्थानीय भाषा (Dialect) का अलग-अलग एक-एक कोश हो। फिर उनका समन्वय करके एक वृहत् कोश का निर्माण किया जाय। कार्य बड़ा महत्वाकांक्षा पूर्ण है परन्तु है वास्तविक। इसके लिए ज्ञानियों और कार्यकर्त्ताओं की एक सेना की आवश्यकता होगी। यह कार्य त्याग और बलिदान की भावना से ही सम्पन्न होगा। परिश्रम, निष्ठा और लगन तो चाहिए ही।

सबसे पहिले हमें यह निश्चय करना है कि कौन-कौन सी स्थानीय भाषाओं (बोलियों) के कोष-निर्माण का कार्य हाथ में लें। प्रत्येक स्थानीय भाषा के कोष के लिए एक महारथी को सर्व-सत्ता प्राप्त नेता के रूप में चुनना होगा। उन्हीं के तत्वावधान में कोश का निर्माण होगा। वही अपने अधीनस्थ नीचे के कार्यकर्त्ताओं का चयन करेंगे। कार्य पद्धति का निर्देशन भी उन्हीं के द्वारा होगा। कितनी भी निःस्वार्थ, बलिदानी भावना से काम हो योजना के कुछ स्तर ऐसे हैं जिन पर पारश्रमिक के रूप में कुछ व्यय की भी आवश्यकता होगी। अतएव योजना के कार्यान्वयन के लिए धन-संग्रह भी अपेक्षित है। कोष-निर्माण के बाद उसके तुरन्त मुद्रण और प्रकाशन की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

ब्रज साहित्य मण्डल

ब्रज-साहित्य मण्डल का गत् अधिवेशन सन् १९६३ में गाजियाबाद में हुआ था। उस अधिवेशन में पदाधिकारियों की अवधि दो वर्ष के स्थान पर तीन वर्ष की कर दी गई थी तथा प्रत्येक नवीन अधिवेशन दो के स्थान पर तीन वर्ष बाद किया जाना तय हुआ था। इस प्रकार मण्डल का नया अधिवेशन सन् १९६६ में होना चाहिए था जो कुछ कारण वश न हो पाया। अब की बार प्रधानमन्त्री श्री जगदीश नारायण चतुर्वेदी के विशेष प्रयत्नों से मण्डल का नवीन अधिवेशन शीघ्र ही होने वाला है। स्थायी समिति की दो बैठकें पहिली दिल्ली और दूसरी गाजियाबाद में हो चुकी हैं। मण्डल का अधिवेशन गाजियाबाद में ही फिर होगा। स्थायी समिति की बैठकों में सदस्यों की बड़ी संख्या में उपस्थिति तथा बा० हीरालाल गोयन के नेतृत्व में गाजियाबाद के साहित्यिक वन्दुओं का मण्डल के प्रति अनुराग इस बात के शुभ चिन्ह हैं कि मण्डल का आगामी अधिवेशन धूमधाम से सम्पन्न होगा।





इतना मत ठुकराओ

[श्री भोजराज चतुर्वेदी हिन्दू लैम्प्स शिकोहावाद]

दंशित प्रत्याशा के, नील हुये बिम्बाधर,
कोलाहल निगल रहा, रागों का स्वर्ण प्रहर,
इतना मत गहराओ, क्षितिजों पर अंजन घन,
मचले अनुशासन की रास छूट जाय ।

केशर की बयारी में पशुता के क्रूर चरण,
धूमिल प्रति अभिलाषा, घायल प्रति नवल किरण,
विद्रुम तट डूब उठे, झग भरौ लहरों में,
थका थकी श्वास श्वास, भूछित सी हर धड़कन ।
इतना मत विसराओ प्राणों का आवाहन,
अभिमान की याचन की प्यास रुठ जाय !

निर्वासित मुस्कानें भटक रहीं द्वार द्वार,
मुक्त कथा सुधियों का आवतन बार बार,
धूलित विश्वासों के उड़ते हैं चक्रवात,
दिशा निशा खोज रही, खोयी प्रतिध्वनि पुकार !
इतना मत बिखराओ, जीवन में सूनापन,
अनुवर्ती, चिन्तन की श्वास टूट जाय !

सुखर हुआ गंधों में, उपवन का आमंत्रण,
मंगल घट कली कली, सुमन सुमन अभिनन्दन,
बरजो तो चपलायें, बाँधो तो बज्रोपल,
अंकन को साध लिये, साधनरत्न दर्पण मन,
इतना मत ठुकराओ, अर्चन का आयोजन,
असमर्पित चन्दन की, आश टूट जाय ।

यावनों के दूर करी नागरी चलाई

[श्री रामस्वरूप आर्य, २३८ मुहल्ला भाटान, विजनौर]

बात आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८७७ ई० के आसपास की है। बिहार की अदालतों में उस समय फारसी का बोलबाला था। उन्हीं दिनों श्री भूदेव मुखोपाध्याय सी० आई० बिहार के शिक्षा विभाग में उच्च अधिकारी नियुक्त हुए वे हिन्दी के परम भक्त थे। उन्होंने अपने अकाट्य तर्कों द्वारा अदालतों में हिन्दी के प्रयोग का समर्थन किया, जिनसे सन्तुष्ट होकर तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने बिहार की अदालतों में नागरी का प्रचलन आरम्भ कर दिया। उस समय बिहार के लोग भूदेव बाबू के इस कार्य से परम प्रसन्न हुए और उन्होंने उनकी प्रशंसा में कई गीत रच डाले। यहाँ पं० अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित ऐसे ही दो गीत प्रस्तुत हैं :—

[१]

धन्य धन्य गवर्नमेंट परजा सुखदाई ।

यावनी के दूर करी नागरी चलाई ॥

‘भुवनदेव’ करि पुकार लाट निकट जाई ।

परजा दुख दूर करहु यावनी दुराई ॥

नानाविधि जाल होत यावनी में राई ।

परजा में हरष होत विद्या निज पाई ॥

धन्य बुद्धि धनि विचार धन्य अन्तर साई ।

करि नियाव हिन्द बीच हिन्दुई चलाई ॥

परजा नित सुयश गाव अम्बिका मनाई ।

जब ले चद सुरज रहैं राज रहै भाई ॥

[२]

हुकुम भईल सरकारी,

रे नर सीखो नागरिया ।

पढ़ि गुन काज करो नर हरिया ॥

ले पोथी नित पाठ करहु अब,

यावनि ग्रंथ देहु पसरिया ॥

जब ले नागरी आवत नाहीं

कैसी अक्षर लिखो कचहरिया ।

धन्य मन्त्री प्रजाहितकारी,

अम्बिका मनावत राजविकटोरिया ॥

श्री भूदेव मुखोपाध्याय जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र अगस्त १९१२ ई० की ‘सरस्वती’ में प्रकाशित हुआ था। उपरोक्त प्रसंग उसी के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

“सूरमंजरी”

(श्री उदय शंकर दुबे, एम. ए., काशीपुरा, वाराणसी)

‘सूरमंजरी’ सूरदास की कोई अलग कृति नहीं वरन् सूरसागर के दृष्ट सात सौ एक-हतर पदों का संग्रह है। इसके संग्रहकर्ता हैं कवि त्रिलोकचन्द, जिन्होंने संवत् १७३६ वि० में सूरसागर के सरस, सरल और प्रसंगानुकूल पदों को संकलित कर उसे ‘सूरमंजरी’^१ की संज्ञा से विभूषित किया। ग्रंथ के आरम्भ में कवि त्रिलोकचन्द ने पद्यबद्ध एक लम्बी भूमिका भी दी है। वे स्वयं एक अच्छे कवि थे। सूरमंजरी के प्रारम्भ में आये पद बात के प्रमाण हैं। यदि उन पदों में संकलनकर्ता ने अपनी छाप न दी होती तो सहसा यह निश्चित कर पाना असम्भव हो जाता है कि वास्तव में ग्रंथारंभ के पद सूरदास द्वारा प्रणीत हैं या किसी अन्य द्वारा। इस ग्रंथ का उल्लेख अन्यत्र नहीं हुआ है।^२

कवि त्रिलोकचन्द के विषय में भी विशेष जानकारी नहीं है। सूरमंजरी के एक पद से ज्ञात होता है कि वे भोगांव निवासी मेदनीमल्ल कायस्थ के पुत्र थे। इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं है—

राग सारंग

अब यह कथा प्रेम रंग रायी ।

सूरसागरहि मधि कै सूरमंजरी कही ॥

उत्तम बात अनूप बहुत है रसिक रसीलन नई ।

सुनत सुनावत जो जन गावत मन कौ फल यही ॥

निहचै मन यह कथा बनाई चित दै प्रेम मही ।

संवत सत्रस सै छत्तीसा तब यह प्रकट नई ॥

कथाथ पुत्र भोगांउ के वासी सूल की पौरि कही ।

मेदनी मल्ल के सुवन तिलोकचंद जात संकसा भई ॥^३

सूरमंजरी के विषय में संकलनकर्ता त्रिलोकचंद का कथन है —

राग सारंग

माधो जू सूरमंजरी सुनिये ।

याके सुनत प्रेमनिधि पावै सोई काहि न गहिये ॥

अंतरध्यान प्रेम अति उपजै फल निधि विधि के लुनिये ।

यह अभ्यास परमगति पावै अपनै श्रवणन सुनिये ॥

जो जन सुनि पुनि गावै लीला डिठ मन चित दै मनई ।

त्रिलोकचंद उन जन के काजै कनक के मन्दिर चुनई ॥^४

१ — ‘सूरमंजरी’ की हस्तलिखित प्रति दतिया (म० प्र०) निवासी श्री शम्भुदयाल श्रीवास्तव ‘ब्रजेश’ के संग्रह में सुरक्षित है। प्रति का लिपिकाल संवत् १८३२ वि० है और यह दलीप नगर (वर्तमान दतिया) में ही तैयार की गई थी। प्रति सुस्पष्ट और पूर्ण है।

२ — दृष्टव्य— हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—द्वितीय खंड, पृ० ५८२, नागरी प्रचारिणी सभा—काशी।

३ — सूरमंजरी, पद संख्या ६

४ — सूरमंजरी, पद संख्या ११

ग्रन्थारंभ कवि ने लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की स्तुति से की है—

राग भैरो

कहा गुन कहौ सोच विचार जे गुन परम अनूप अपार ।
जिनकी गत सिव सनक सुर मुनि रिपि न पावत पार ॥
ब्रह्मादिक ध्यान अंतर धरत बारम्बार ।
नाहिं हरि कौ अंत पावत वहै अगम अपार ॥
सुर मुनी सुर मर्नाहिं खोजत पचत भटकन हार ।
थकत भएन सकत कछु यक भक्ति करत अनुसार ॥
वे त्रभुवन प्रतिपाल भक्तन असुर नासन हार ।
देवकी के हेत कारन धरौ जय अवतार ॥
तब देख लीला मनहिं सुरपति भ्रम भयौ अधिकार ।
भ्रममान करि अति कोप वरषे जल ज्यों जल निरधार ॥
तब सोच मन पुर चरन पकरे निलज अति जिय हार ।
परम गुन किहि भाँत बरनौ उरग सह सक न डार ॥
रटत निसदिन नाम उनकौ नाना रूप विचार ।
ताऊ न पावत भेव हरि कौ खोजत मति पचिहार ॥
थकत ह्वै धरि सासलानै निगम पंथ निहार ।
ते गुन अकथ्यौ विचारौ जिहि कौ नहीं पार ॥
तिलोकचंद मुरारि गिरधर पठत जगत उदार ॥^१

सूरमंजरी का विषय विभाजन क्रमशः इस प्रकार है—मंगलाचरण, जन्म-समय, माखन चोरी लीला, आँख-मिचौनी लीला, ब्रह्म लीला, प्रथम मिलन लीला, गोवर्द्धन लीला, कालीदमन लीला, चीर-हरण लीला, पनघट लीला, दान समय, दान लीला नैन वर्णन, मुरली लील, रहस्य लीला, अर्न्तर्ध्यान लीला, जलक्रीड़ा लीला, मान लीला, हिंडोरा लीला, कंस लीला मथुरा गमन, भ्रमरगीत, द्वारका गमन, रुक्मिणी मंगल, श्री दामा प्रसंग, वामन अवतार के पद, द्रोपदी समय के पद, भीष्म पर्व के पद, रामायन समय, कड़वा, विनय तथा स्फुट पद । सूरमागर के मध्यभाग की समस्त कथा को अति संक्षेप रूप से सूरमंजरी में रखा गया है जिसमें सूरमागर के चुने-चुने पदों को चुन-चुन कर संग्रहकर्ता ने अपनाया और उसे 'सूरमंजरी' का अभिधान प्रदान किया ।

कवि तिलोकचंद की संग्रह प्रवृत्ति इस ग्रन्थ में द्रष्टव्य है । प्रत्येक प्रसंग की कथा के लिये जिन पदों को कवि ने चुना है वे सरलः भावपूर्ण, विषयानुकूल तथा अपने आप में पूर्ण हैं; कथा का प्रसंग कहीं टूटने नहीं पाता । शृङ्गार संबंधी पदों का इसमें आधिक्य है । वर्तमान समय में अनेक संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—यथा सूरमुधा, सूर ववतावली, सूर सुषमा आदि; किन्तु यह पहला संग्रह ग्रन्थ है जो आज से २८६ वर्ष तैयार किया गया था और जिसमें मनोनुकूल उपयुक्त पदों को, कथा प्रवाह तथा संकलन की विधाओं को स्थान दिया गया है । संकलन की दृष्टि से सूरमंजरी एक महत्वपूर्ण कृति है ।

—*—

ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न के प्रति

(बा० श्यामसुन्दर खत्री, ३ ई नन्दी स्ट्रीट, कलकत्ता.)

सोया-सोया जागा सहसा नव्य चेतना का मधुमास,
छाया नव आनन्द चतुर्दिक हृदय-सुमन खिल उठे सहास,
देश-भक्ति की मादकता की भृंगावली उठी गुंजार,
नव-जागृति-सन्देश-राग की हुई प्रवाहित चपल बयार,

हुआ सुधा-सिंचित दूरागत मोहन-मुरली-ध्वनि का भान,
जब ब्रजवाणी के निकुंज में गूँजा उस कोकिल का गान ।

जिसमें महामान्य कवियों की प्रतिभा की परियों का लास,
जिसमें महामना सन्तों का जगमग-जगमग आत्मप्रकाश,
श्यामा-श्याम-भक्ति-रस-धारा जिसके महाप्राण की वीन,
जिसकी सुता राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर है आसीन,

उस उपेक्षिता ब्रजवाणी के उर-ग्रन्तर की मूक पुकार,
उस कोकिल के ललित कंठ से फूट पड़ी होकर साकार ।

स्वर्णम-स्वप्न मधुरिमा-विजडित, कलित कल्पना से रंगीन,
उच्च विचार गहन चिन्तन की सुषमा संयुत सदा नवीन,
लोकोत्तरानन्द-सौरभ से परिपूजित जन-मन रंजन,
मर्मस्पर्शी भव्य भाव की कल्पलता के सरस सुमन,

हृदय-वाटिका से चुन-चुन कर वर मालाएँ रच-रच कर,
करता रहा समर्पित वह कवि सरस्वती के चरणों पर ।

जग-मंगलकर महाजनों के जीवन का क्या होता अर्थ,
उन्हें भेट देने में जग से हो जाती यदि मृत्यु समर्थ,
ग्रामनिवासी सत्य सुकवि वह, चिरजीवित चिर अभिनन्दित,
रसिक जनों के मानस-पट पर उसकी रचनाएँ अंकित;

वह तारक साहित्य-गगन का, मरण नहीं उसका आखीर,
पार्थिव तनु से उज्ज्वलतर है उसका शाश्वत यशःशरीर ।

ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण कविरत्न अर्द्धशताब्दी समारोह के अवसर पर पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी का अध्यक्षीय भाषण “ब्रजभूमि का पुनर्निर्माण”

अपने भाषण के प्रारम्भ में ही स्वर्गीय पं० केदारनाथ जी भट्ट, श्रद्धेय बाबू गुलाबराय जी, आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल, बन्धुवर श्रीराम शर्मा और भाई हरीशङ्कर शर्मा को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। ये पाँचों ही ब्रजभूमि के रत्न थे और उनकी अनुपस्थिति आज मुझे बहुत अखर रही है।

स्वर्गीय कविरत्न पं० सत्यनारायण जी के विषय में मैं इतनी बार लिख चुका हूँ कि अब उनके बारे में कुछ भी कहना पिष्ट पेय ही होगा। सत्यनारायण जी का स्वर्गवास १६ अप्रैल सन् १९१८ को हुआ था और परसों उनकी इक्यावनवीं पुण्यतिथि होगी। कविरत्न जी ब्रज के अनन्य भक्त थे और ब्रज में ही पुनर्जन्म लेने की उनकी आकांक्षा थी अतएव यह सर्वथा उचित ही होगा कि उनकी अर्द्धशताब्दी के अवसर पर हम ब्रजभूमि के पुनर्निर्माण की चर्चा करें।

सबसे प्रथम यह कह देना जरूरी है कि मैं प्रान्त निर्माण जैसे विवादग्रस्त प्रश्न को इस प्लेटफार्म से नहीं उठाना चाहता। मैं कोई राजनैतिक जीव नहीं हूँ और सत्तात्मक राजनीति से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इस मंच पर तो शुद्ध साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ही विचार करना चाहिये।

विश्व के महान साहित्यिक मैक्सिम गोर्की के इस कथन से मैं सर्वथा सहमत हूँ कि प्रत्येक जनपद की एक आत्मा होती है और निस्संदेह ब्रज की भी एक आत्मा है और यथोचित दिशा में उसका विकास ही हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिये।

ब्रजभूमि शताब्दियों तक भारत की सांस्कृतिक केन्द्र रही है और ब्रजभाषा भी अखिल भारतीय भाषा, फिर भी उसकी एक निजी संस्कृति रही है। अपने जनपद की विशेषताओं की रक्षा करते हुए विश्व की सांस्कृतिक धारा से उसका मेल मिलाप करने में ही हमारा कल्याण है। आज से लगभग साठ वर्ष पहले सत्यनारायण जी ने भ्रमर दूत में कहा था :—

“पहले कैसे अब न तिहारो यह वृन्दावन
याके चारों ओर भये बहु विधि परिवर्तन
बने खेत चौरस नये, काटि घने वन कुंज
देखन को बस रहि गये, निधि वन सेवाकुंज
कहाँ चरिहैं गऊ ?

ब्रज का अर्थ है “वह हरी भरी भूमि, जहाँ गीएँ चरती हैं।” ब्रज के हरे भरे वन को कायम रखना है और यहाँ गो-सम्पत्ता का निर्माण करना है—पेट्रोल सम्पत्ता के आक्रमणों तथा घनाचारों से उसे बचाते हुए !

बन्धुवर पालीवालजी ने एक नारा दिया था—

मुल्क आजाद हो गया है, उसे अब आबाद करना है ।

रूसी लोगों ने अपनी राजधानी मास्को को संसार की सबसे हरीभरी राजधानी (Greenest capital in the world) बनाने का निश्चय किया था और उन्होंने उस दिशा में काफी सफलता भी प्राप्त की है । इधर हम लोग बिल्कुल उल्टी दिशा में चल रहे हैं । मुझे यह बात बड़ी लज्जा के साथ स्वीकार करनी पड़ती है कि ब्रज को रेगिस्तान बनाने में हमारे नगर फीरोजाबाद का जबरदस्त हाथ है । लाखों मन लकड़ी फीरोजाबाद के कारखानों में कोयले की जगह जलती रही है और डेढ़सौ वर्गमील के घेरे में वृक्षों का कतलेआम होता रहता है । मैंने तो यहाँ तक सुना है कि देहरादून तक के जंगल फीरोजाबाद के कारखानों की बलिवेदियों पर कुर्बान हो गये । चक्रवर्दी के कानून की वजह से भी सहस्रों ही पेड़ कट गये । हमारे नगर फीरोजाबाद में एक महात्मागांधी पार्क है । उसके अनेक सुन्दर वृक्षों को होली के मौके पर काटकर भोंक दिया गया और वहाँ की नपुंसक जनता तथा नामदं चुंगी के मेम्बर इस अनाचार को प्रतिवर्ष सहन करते रहे हैं । सड़क के किनारे के वृक्षों पर भी निरन्तर आघात होते रहते हैं । इन सब अन्यायपूर्ण कार्रवाईयों को रोकना है और ब्रज को रेगिस्तान बनने से बचाना है ।

हाँ, सरकार की ओर से गोवर्द्धन पर्वत पर वृक्ष लगाने तथा छलेसर में बबूल वन के निर्माण करने का जो उपयोगी कार्य हुआ है उसकी हमें शतमुख से प्रशंसा ही करनी पड़ेगी । भूमि की कटन को रोकने का जो प्रयास जलेसर में किया गया है उसे बन्धुवर बालकृष्ण जी गुप्त की कृपा से हमें अपनी आँखों से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । वहाँ एक साहित्य गोष्ठी की गई थी और कवि सम्मेलन भी हुआ था । प्रत्येक ब्रजवासी लेखक या कवि से हमारा अनुरोध है कि वह छलेसर की तीर्थयात्रा अवश्य करे । हमने सुना है कि आगरे से ६-७ मील दूर ग्रामों का एक बाग है, जिसमें सैकड़ों ही आम्र वृक्ष विद्यमान हैं । शीघ्र ही उसके दर्शन करने की लालसा हमारे मन में है । दिल्ली के पास राठौल में फरीदी साहब का आम का एक बगीचा है, जिसमें कई हजार आम के पेड़ हैं । खेद है कि हम उसे देख नहीं पाये ।

क्या ही अच्छा हो यदि हमारी ब्रजभूमि के सुन्दर स्थानों की एक सूची बना दी जाय और उनका सचित्र विवरण भी प्रकाशित कर दिया जाय । इस भूमि में उपवन लगाने वालों को सरकार तथा जनता दोनों की ओर से सम्मान तथा पुरस्कार मिलना चाहिये । बन्धुवर श्रीराम शर्मा ने उसाइनी की मरुभूमि में नवजीवन फार्म की स्थापना करके जो महत्वपूर्ण कार्य किया था वह उनकी किसी भी साहित्यिक कृति से कम प्रशंसनीय नहीं । युगनिर्माता आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने हाथों ग्रामों का एक बाग लगाया था और वे उसके आम मौसम के वक्त खाते भी थे ।

इस प्रसंग में हमें आचार्य विनोबा जी के कुछ वाक्यों की याद आरही है उन्होंने लिखा था—

‘आइये हम अपने ग्राम को गोकुल बनायें’

“गोकुल में रहकर कृष्ण भगवान क्या करता था ? गायें चराता था । उसने दावानल निगल लिया । यानी क्या किया ? देहातों को जलाने वाले लड़ाई भगड़ों का खातमा किया ।

सब लड़कों को इकट्ठा किया। प्रेम बढ़ाया। इस तरह वह श्रीकृष्ण गोपाल कृष्ण है। वह तुम्हारे गाँव का आदर्श है। गोपाल कृष्ण ने गाँवों का वैभव बढ़ाया, गाँवों की सेवा की, गाँवों पर प्रेम किया। गाँव ही उसका देवता था। आगे चक्कर वे द्वारकाधीश बने। लेकिन फिर भी गोकुल में आते थे, फिर गायेँ चराते थे, गोबर में हाथ डालते थे, गोशाला बुहारते थे,--वनमाला पहनते थे, बंसी बजाते थे, लड़कों के साथ, गोपवालों के साथ खेलते थे। ब्रजकिशोर उनका प्यारा नाम था। उन्होंने गोकुल में असीम आनन्द और सुख पैदा किया।

हमें देहातों को हरा-भरा गोकुल बनाना है—स्वाश्रयी, स्वावलम्बी, आरोग्य सम्पन्न, उद्योगशील और प्रेमपूर्ण। ईख का कोल्हू चल रहा है, चरखा चल रहा है, धुनिया धुन रहा है, तेल का कोलू चूँ चरू बोल रहा है, कूएँ पर मोटर चल रही है, चमार जूता बना रहा है और बंसी बजा रहा है—ऐसा गाँव बनने दो। अपनी गलती से हमने गाँवों को मरघट बना दिया। आइये उनको गोकुल बनाएँ।

आचार्य विनोबा जी ने हमारी ब्रज संस्कृति और ब्रज जीवन का जीता जागता चित्र खींच दिया है।

अभी तक मैंने ब्रजभूमि के भौतिक शरीर की रक्षा तथा पोषण का ही जिक्र किया है, क्योंकि बिना शरीर के आत्मा रह ही नहीं सकती। ब्रज की ओर बढ़ते हुए रेगिस्तान को रोकने का कार्य क्या किसी भी साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक आयोजन से कम महत्व रखता है?

पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम ब्रज की साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक जाग्रति का उचित मूल्याङ्कन नहीं करते। उस दिशा में जिन-जिन महानुभावों ने जो-जो कार्य किये हैं अथवा जो अब भी प्रयत्न कर रहे हैं—बिना छोटे बड़े के भेदभाव के—हम उन सब का अभिनन्दन करते हैं। स्वर्गीय डाक्टर वामुदेवशरण अग्रवाल तो जनपदीय कार्यक्रम के प्रवर्तक ही थे और उनकी अनुपम सेवाओं को हम लोग कदापि नहीं भूल सकते। उनके तथा डा० सत्येन्द्र तथा श्री जवाहरलाल जी चुनवेंदी के प्रयत्न से पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ तय्यार हुआ था, जो एक प्रकार से ब्रज का विश्वकोष ही माना जायगा। बन्धुवर श्री प्रभूदयाल मीतल जी ने तो अपने जीवन का सर्वोत्तम समय ब्रजभाषा की सेवा करने में ही व्यतीत किया है और उनके लिखे तथा सम्पादित किये हुए ग्रन्थ हमारी अमूल्य निधि हैं। यही बात श्रद्धेय जवाहरलाल जी के ग्रन्थों के बारे में भी कही जा सकती है। इधर ब्रज में एक ऐसी विभूति हमारे सामने आरही है जिसके दिन के बारह घण्टे ब्रज की साहित्यिक सेवा में ही नित्यप्रति बीत रहे हैं। भाई वृन्दावनदास जी के विषय में अधिक कहकर उन्हें ईर्ष्या का पात्र नहीं बनाना चाहता। फिर भी इतना अवश्य कहूँगा कि उनसे मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। हमारे सौभाग्य से श्रद्धेय प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी जो वस्तुतः ब्रजवासी हैं, अब अपनी प्यारी ब्रजभूमि में ही विराजमान हैं। उनकी अद्भुत संगठन शक्ति से हम लोगों को पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। स्वयं वे अच्छे कवि भी हैं, पर उनके द्वारा स्थापित कृषि फार्म के लहराते हुए खेतों को मैं 'महाकाव्य' मानता हूँ। वे एक दृढ़प्रतिज्ञ तथा कल्पनाशील व्यक्ति हैं। और यदि चाहें तो अपने यजमानों की सहायता से ब्रजभूमि की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये बहुत काम कर सकते हैं। उनसे भक्त लोग यदि चाहें तो उन्हें एक सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट कर सकते हैं, जो ब्रज के भावी निर्माण के लिये सन्दर्भ ग्रंथ का काम दे सकता है।

इस अवसर पर मैं ब्रजभूमि में प्रकाशित होने वाले पत्रों के मालिकों तथा सम्पादकों का ध्यान दो बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ—एक तो यह कि वे इस जनपद के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यों के लिये अधिक स्थान रिजर्व कर दें। ‘आल्डिंडिया’ प्रश्नों पर लिखने के मोह में उन्हें कुछ कमी तो लानी ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि वे ब्रज के उदीयमान लेखकों तथा कवियों को यत्किंचित पारिश्रमिक भी देना प्रारम्भ कर दें। ब्रजभूमि में सैकड़ों ही प्रेस होंगे—और कितने ही ऐसे प्रेस ब्रजभूमि के बाहिर भी हैं जिनके मालिक ब्रजवासी हैं—क्या वे अपनी प्यारी ब्रजभूमि के लिये कुछ भी त्याग नहीं कर सकते? क्या वे अल्प मूल्य पर या लागत के मूल्य पर पुस्तिकाएँ नहीं छाप सकते?

ब्रजभूमि में सैकड़ों ही लखपती भी हैं—स्वयं हमारे नगर फिरोजाबाद में पचासों लखपती सुने जाते हैं—पर उनसे हमें कुछ भी नहीं कहना, क्यों कि एकाध को छोड़कर हमारी बात वे सुनेंगे भी नहीं। हम स्वयं वर्तमान समाज व्यवस्था के जड़मूल से नष्ट होने के पक्ष में हैं। वह दिन दूर नहीं है जब कि इस देश के द्रव्य साधनों पर जनता का पूर्ण अधिकार होगा। यदि हमारा साधन सम्पन्न वर्ग स्वेच्छा से लोकहित के कार्यों में मदद नहीं देता तो आगे चलकर मजबूरन उसे उन साधनों से हाथ धोना पड़ेगा। “अन्तहु तोहि तजैगे पामर, क्यों न तजै अबही तैं”

रूस की साहित्यिक यात्रा में दो बार कर चुका हूँ और रूसी भाइयों ने अपने साहित्य सेवियों की कीर्ति रक्षा के लिये जो महान प्रयत्न किये हैं उन्हें देखकर मैं दंग रह गया हूँ। उक्रेन के कवि तथा चित्रकार शैवचैङ्गो का संग्रहालय पच्चीस बड़े कमरों में है और उसका मूल्य एक करोड़ रुपये से कम न होगा। वैसे संग्रहालयों का मूल्य रूपों पैसों में आँका नहीं जा सकता। चैखव के चार संग्रहालय हैं। हमारे यहाँ ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के आचार्य पंडित श्रीधर पाठक के जौधरी वाले मकान पर दूसरों ने काबू कर लिया है और उनकी प्रयागवाली आलीशान कोठी पद्मकोट बिकाऊ है। पर हमारी उत्तर प्रदेश सरकार में भला इतनी कल्पनाशक्ति कहाँ जो पद्मकोट को खरीदकर श्रीधर पाठक संग्रहालय का रूप दे दे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्रीधर पाठक चैखव के समकालीन थे और जिन सत्यनारायण कविरत्न की अर्द्धशताब्दी आज हम मना रहे हैं उनके धाँधूपुर वाले मन्दिर को जीर्णोद्धार अवस्था में देखकर हार्दिक वेदना होती है। हमारे प्रदेश के राज्यपाल शान्तिनिकेतन के स्नातक हैं और उनसे हमें कुछ आशा तो रखनी ही चाहिये। हमारा सार्वजनिक जीवन इस निम्नातिनिम्न घरातल पर पहुँच गया है कि चुनावों के दलदल में फँसी हुई संस्थाओं के अधीन मैं किसी भी संग्रहालय की स्थापना के पक्ष में अपनी राय हर्गिज नहीं दूँगा।

सत्यनारायण कविरत्न विषयक जो दुर्लभ तथा अमूल्य सामग्री मैंने साहित्य सम्मेलन के पास रखवा दी थी, उसकी रक्षा सम्मेलन नहीं कर सका। ऐसी परिस्थिति में मैं व्यक्तिगत संग्रहालयों का समर्थक हूँ। हाँ, बहुमूल्य चीजों की फोटोस्टेट कापी या माइक्रो फिल्म तय्यार कराई जा सकती हैं और वे भिन्न-भिन्न स्थानों में रखवाई जा सकती हैं।

आजकल हिन्दी जगत् में चारों ओर निराशा का जो वातावरण दीख पड़ रहा है, गत्यवरोध का जो दृश्य उपस्थित हो रहा है उसके लिये हम केवल सरकार को ही दोषी नहीं ठहरा सकते। स्वयं हम लोगों का भी कुछ अपराध है, हमारी निज की कुछ श्रुटियाँ हैं और सर्वप्रथम उनकी

और ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे हृदय में जो पदलोलुपता है, अर्थ के प्रति जो मोह है और त्याग तथा बलिदान से कोसों दूर रहकर सत्ता के हड़पने की जो प्रवृत्ति है वही हमारे सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साक्षात् प्रतिबिम्बित दीख पड़ती है। पर इससे निराश होने की जरूरत नहीं। समानशील और परस्पर पूरक व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूह बनाकर हमें अपने-अपने केन्द्रों में काम शुरू कर देना चाहिये।

इस अवसर पर मुझे वाल्मीकि रामायण का एक प्रसंग याद आ रहा है। जब हनुमान जी लङ्का के द्वार पर पहुँचे तो एक राक्षसी उस पर पहरा देती हुई दीख पड़ी। हनुमान जी ने उससे लङ्का का पता पूँछा तो वह बोली—

“अहं हि लङ्का नगरी स्वयंमेव प्लवंगम” हे बन्दर मैं स्वयं ही लङ्का नगरी हूँ।

सिस्टर निवेदिता ने उस राक्षसी के इस कथन को नागरिकता का सर्वोत्तम दृष्टान्त बतलाया था। दुःख की बात केवल यही है कि समस्त ब्रजभूमि में इस समय एक भी ऐसा व्यक्ति विद्यमान नहीं, जो दृढ़ता पूर्वक कह सके “मैं ही ब्रज हूँ”

ब्रजभूमि का पुरनिर्माण न तो व्याख्यानों से होगा, न आयोजनाओं के बनाने से और न रेडियो वार्ताओं से। उनकी सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये अपना जीवन, अपने प्राण अर्पित करने वाले व्यक्ति जब तक इस भूमि में उत्पन्न नहीं होंगे, तब तक यह स्वप्न अमुरा ही रहेगा।

एक अंग्रेजी कवि ने कहा था—

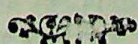
“If you give all and life retain
I say that your gift is in vain.”

चाहे आप सर्वस्व दे दें पर अपने जीवन अपने प्राणों को बचाये रखें तो मैं कहूँगा कि आपका दान निरर्थक ही गया।

हमारे ब्रज साहित्यमंडल के भूतपूर्व प्रधान स्व० बालकृष्ण शर्मा नवीन का यह पद्य हमारा मोटो या आदर्श वाक्य होना चाहिए—

“अरे ! समुद्र अर्पण ही अर्पण यह जीवन का क्रम है।
और ग्रहण में मृत्यु निहित है, प्रतिफल केवल भ्रम है॥”

—बनारसीदास चतुर्वेदी



त्रिदिवसीय साहित्यिक समारोह

[ऐतिहासिक महत्व, महत्वपूर्ण निष्कर्ष व उपलब्धियाँ]

(बाबू वृन्दावनदास, अध्यक्ष ब्रज-साहित्य मण्डल)

ब्रज की जिन तीन महान् विभूतियों की स्मृति में यह समारोह दिनाङ्क १४, १५, १६ अप्रैल को आगरा के सेंट पीटर्स कालेज के प्रांगण में सम्पन्न हुआ, वे हिन्दी साहित्य की तीन अमर विभूतियाँ हैं—(१) ब्रज कोकिल कविरत्न पं० सत्यनारायण (२) कुंवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी और (३) महाकवि ग्वाल। यह समारोह कई दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण था। इससे जो निष्कर्ष निकले अथवा इसकी जो उपलब्धियाँ हैं उन पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

इस समारोह के द्वारा ब्रज क्षेत्र की तीन महान् विभूतियों के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा प्रस्तुत हुई। तीनों महापुरुषों के जीवन के अनुकरणीय तत्व सामने आये।

विशिष्ट विभूतियाँ

कविरत्न पं० सत्यनारायण एक महान् आदर्शवादी चरित्रवान् कवि थे। उनकी रचनाओं में माधुर्य और सरसता तो कूटकूट कर भरी हुई थी ही, उनमें हिन्दी, हिन्दू, हिन्द के लिए भी बड़ी टीस थी। वे एक राष्ट्रीय जनकवि थे।

कुंवर हनुमन्तसिंह जी उच्चकोटि के लेखक, पत्रकार और समाज-सुधारक थे। उन्होंने जीवन पर्यन्त साहित्य और समाज की सेवा की। उन्होंने अनेक सार्वजनिक संस्थाओं को अपना अमूल्य सहयोग और उपेक्षितों को प्रश्रय दिया। अनेक नवोदित साहित्यकारों ने उनके चरणों में बैठकर साहित्य सृजन किया। उनका व्यक्तित्व हिन्दी के महान् निर्माता के रूप में उभर कर सामने आया।

महाकवि ग्वाल ने ब्रजक्षेत्र में जन्म लिया परन्तु उन्होंने अनेक अहिन्दी भाषी प्रान्तों में भ्रमण कर अपने उत्कृष्ट काव्य द्वारा हिंदी की विजय पताका फहराई। काव्य सौष्टव के साथ ग्वाल की रचनाओं में लोक-धर्म, सद्ग्रहस्थता और व्यवहार-नीति का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। यह उनकी नीतिज्ञता का द्योतक है। और यही कारण उनके छंदों की लोकप्रियता और अगाध कण्ठ-स्थता का है। ग्वाल का यह रूप सम्मेलन में विशेष रूप से चर्चित हुआ।

भला, इन शताब्दियों को मनाये बिना मानव-जीवन की इस व्यस्तता में हम इन विभूतियों का स्मरण कैसे करते? शताब्दियों व जयन्तियों को मनाने का आशय यही है कि हम पूर्व पुरुषों की विशिष्टताओं की चर्चा करके अपने को लाभान्वित करें और जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

समारोह का स्थल

इस समारोह की दूसरी विशेषता यह है कि ब्रजभाषा और हिन्दी से सम्बंधित यह सम्मेलन एक अंग्रेजी के कालेज-भवन में सम्पन्न हुआ। प्रधानाचार्य फादर कोलम्बन ने तीन दिन के लिए

कालेज के समस्त साजसज्जा से सुसज्जित सभा-भवन को समारोह समिति को दे दिया। बाहर से आये हुए साहित्यिक बंधु भी कालेज भवन में ठहराए गए तथा उनके आतिथ्य-सत्कार का प्रबंध भी प्रधानाचार्य महोदय की ओर से हुआ।

कालेज के प्रबंधक आर्क विशप परम-पवित्र डोमीनिक एथेड ने पं० सत्यनारायण के तैल चित्र का अनावरण किया और कविरत्न की स्मृति में एक निधि स्थापित करने की घोषणा की जि के द्वारा योग्य तथा निधन छात्रों को छात्रवृत्ति दी जायेगी। कालेज की ओर से प्रतिवर्ष अंतर्विद्यालय काव्य प्रतियोगिता का आयोजन होगा, जिसके अंतर्गत 'सत्यनारायण स्मृति-चल वैजयन्ती' प्रदान की जायेगी। यह उल्लेखनीय है कि पं० सत्यनारायण इसी सेन्ट पीटर्स कालेज के विद्यार्थी थे।

ब्रजभाषा और हिन्दी में स्पर्धा का कोई प्रश्न नहीं। ब्रजभाषा हिन्दी के साहित्य की भाषा है। उसका संरक्षण, सम्बर्द्धन और उन्नयन हिन्दी के हित की बात है, अहित की नहीं। ये तथ्य प्रमुख रूप से मंच से दुहराये गए। उपस्थित सभी विद्वानों की इन तथ्यों पर सहमति पाई गई। इन स्थापनाओं के द्वारा सम्मेलन ने ब्रजभाषा और हिन्दी के मध्य मधुर सम्बंध की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

समन्वयकारी दृष्टिकोण

ब्रजभाषा ही नहीं, समस्त उत्तरी-भारत की क्षेत्रीय बोलियों अथवा उपभाषाओं से हिन्दी की कोई प्रतिद्वंदता नहीं, यह मान्यता भी सम्मेलन में स्थिर हुई। इस विषय पर भी विद्वानों में मतभेद न था। इस प्रकार सम्मेलन ने एक महान् समन्वयकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो कि राष्ट्रीय एकता के हित में सिद्ध होगा।

ब्रजभाषा साहित्य के प्रकाशन पर बल दिया गया। नागरी प्रचारिणी सभा आगरा के मंत्री डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी ने घोषणा की कि वे शीघ्र ही कविरत्न की समस्त उपलब्ध कृतियों को एक ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित करने जा रहे हैं। ब्रज साहित्य मण्डल द्वारा अद्यतन प्रकाशन हुए हैं। मण्डल अधिक से अधिक ब्रजभाषा ग्रन्थों के मुद्रण और प्रकाशन के लिए कृत संकल्प है।

सम्मेलन के मंच से तीनों विभूतियों के साहित्य के प्रकाशन पर अधिक बल दिया गया। निःसंदेह इस दिशा में सम्मेलन ने एक चेतना उत्पन्न कर दी है। आशा है समारोह समिति-नागरी प्रचारिणी सभा आगरा, अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य मण्डल तथा अन्य संस्थानों द्वारा प्रकाशन कार्य का शीघ्र ही श्रीगणेश होगा।

अन्तर्जनपदीय कार्य

लाक-साहित्य तथा लोक संस्कृति का विकास और हिन्दी के भण्डार की वृद्धि करने के हेतु यह निश्चय किया गया कि अंतर्जनपदीय कार्य को बढ़ावा दिया जाय। एतदर्थ एक समिति का गठन किया गया। स्वर्गीय डा० वामुदेव शरण अप्रवाल के शब्दों में हमारी जन-पदीय बोलियाँ देववाणियाँ हैं, वे साक्षात् कामधेनु हैं जिनसे हिन्दी का भण्डार भरेगा।' कुछ व्यव-

धानों के कारण जनपदीय आंदोलन ठप पड़ा था। सम्मेलन द्वारा इस कार्य को पुनः हाथ में लेना एक ऐसी घटना है जिससे यह सम्मेलन सदैव स्मरणीय रहेगा।

सम्मेलन ने देश के विभिन्न भागों से आये हुए साहित्यिकों के मिलन का एक अपूर्व अवसर प्रदान किया। सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में पारस्परिक आदान प्रदान द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए। सर्वश्री गणेश चौबे, देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी, डा० सत्येन्द्र, डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, जगदाश प्रसाद चतुर्वेदी आदि ने अंतर्जनपदीय आंदोलन पर महत्वपूर्ण भाषण दिये।

सम्मेलन का उद्घाटन हिन्दी जगत के सर्वमान्य नेता डा० सेठ गोविंददास ने किया और पहिले दिन के अधिवेशन की अध्यक्षता श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने की। दूसरे दिन का सभापतित्व पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल और महेन्द्र जी ने किया तथा तीसरे दिन की बैठक की अध्यक्षता इन पंक्तियों के लेखक ने की। तीसरे दिन ग्वाल समारोह का उद्घाटन राजस्थान के मूर्धन्य साहित्यकार पं० जुगलकिशोर चतुर्वेदी ने किया। इसी दिन पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने कविरत्न के स्मृति ग्रन्थ का विमोचन किया।

प्रेरणा स्रोत

इस समारोह के आदि प्रेरणास्रोत श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी हैं। जिन्होंने कई महिने पहले मुझे और पं० देवीप्रसाद शर्मा दिव्य को पत्र लिखकर इस आयोजन को सम्पन्न करने की सलाह दी थी। पं० रमेशचन्द्र दुबे का अमूल्य सहयोग हमें शुरू से ही प्राप्त हो गया। बाद में सर्वश्री राजेन्द्र रघुवंशी, सूर्यपालसिंह तोमर, हृषीकेश चतुर्वेदी, अमृतलाल चतुर्वेदी, तोताराम पट्टज आदि सज्जनों ने इस कार्य में अपना विशिष्ट योगदान दिया। स्व० पं० हरिशङ्कर शर्मा सभी कार्यक्रमों को अंतिम रूप दे मानो अपना कार्य पूर्ण कर स्वर्ग सिधार गए। हर क्षण हमें उनकी याद बनी रही।

समारोह समिति तीनों विभूतियों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर तीन स्मृति ग्रन्थ प्रस्तुत करने में समर्थ हुई यह भी अपने आप में सम्मेलन की एक उपलब्धि समझी जानी चाहिये।

समारोह में अवसरानुकूल सुरुचिपूर्ण सांस्कृतिक कार्यक्रम भी तीनों दिन प्रस्तुत किए गए। ये ब्रज संस्कृति के प्रतिनिधि कार्यक्रम खूब सफल रहे और उनकी इस सफलता का श्रेय श्री राजेन्द्र रघुवंशी और उनके साथियों को है। समारोह समिति का कर्तव्य तो इस विषय में इतना ही था कि उन्होंने रघुवंशीजी को सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संयोजक चुन दिया। रघुवंशीजी ने अकेले ही जिस कुशलता के साथ सांस्कृतिक आयोजनों की व्यवस्था की, वह उनकी निश्ठा और अपूर्व क्षमता की परिचायक है। समारोह का समापन एक श्रेष्ठ कवि सम्मेलन के द्वारा हुआ जिसकी अध्यक्षता पं० अमृतलाल चतुर्वेदी ने की।

ब्रज का संप्रदाय साहित्य

(व्यौहार राजेन्द्रसिंह, जबलपुर)

वल्लभ सम्प्रदाय और उसका साहित्य

श्री वल्लभ संप्रदाय का वृन्दावन में कोई विशेष मन्दिर नहीं है। मथुरा में विश्रामघाट के पास श्री वल्लभाचार्यजी की एक बैठक अवश्य बनी है। आचार्य जी के इष्टदेव बालकृष्ण होने के कारण शायद युगल उपासक वृन्दावन इनके अनुकूल न बना हो। श्री गोवर्धन की प्रतिमा जब मुगल-काल में उदयपुर चली गई तब से श्रीनाथ जी तथा काँकरोली ही इनके केन्द्र बन गये।

इस संप्रदाय के सूरदास आदि अष्टछाप के कवि ब्रज ही में हुए। इनकी वाणियाँ भी अधि-कांश प्रकाशित हो चुकी हैं। सूरदास जी पर तब से अधिक काम भी हुआ है। उसके सुसंपादित संस्करण तथा आलोचनात्मक ग्रन्थ भी निकल चुके हैं। अलीगढ़ में श्री ब्रजवल्लभजी ने परमानन्द कवि पर उनकी कृति परमानन्द सागर तथा उस पर शोध ग्रन्थ भी प्रकाशित कराया है। होली पर आयोजित जतीपुरा के कुनवारे के अवसर पर एकत्रित इस संप्रदाय के आचार्यों ने कई महत्वपूर्ण निर्णय किये जिन्हमें शंकरोली का दुर्लभ पुस्तकालय यहाँ स्थानान्तरित करने का प्रस्ताव है। यहाँ आने से समस्त हिन्दी संसार लाभान्वित हो सकेगा।

निम्बार्क संप्रदाय और साहित्य

श्री निम्बार्क ने राधाकृष्ण की युगल उपासना का प्रचार किया था। श्री रंगजी के मन्दिर के पीछे उनका प्रमुख केन्द्र है जो चारों ओर टट्टियों से घिरा होने के कारण टट्टी स्थान के नाम से प्रसिद्ध है। श्री जीकी कुञ्ज इस संप्रदाय का मन्दिर है जहाँ विधि-पूर्वक पूजन अर्चन संगीत आदि होता है। यहाँ से सर्वेश्वर नामक मासिक पत्र भी निकलता है इसके वृन्दावन विशेषांक में ब्रज का काफी परिचय प्राप्त होता है। एक विशेषांक में नागरीदासजी तथा दूसरे में श्री सर्वेश्वर की बाणी संग्रहीत की गई है। श्री हरि प्रियाजी की महावाणी भी अब प्रकाशित हो गई है। अपने प्रेस में और महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित करते रहते हैं। श्री नाभाजी की भक्तमाल तथा इस पर प्रियादास जी की टीका सहित एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित हुआ है। प्रसिद्ध संगीतकार और भक्त हरिदास जी की केलिमाल और चतुर्दश यश भी प्रकाशित हुए हैं। हरिदास सागर नामक वृहत्-संग्रह श्रीकृष्णादि की अवधूत ने प्रकाशित कराकर बिना मूल्य वितरित किया था। फल-स्वरूप अब किसी मूल्य पर भी यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। केवल दर्शन किये जा सकते हैं। इस संप्रदाय के अन्य भक्तों ने भी उतन साहित्य प्रकाशित किया है। श्री बोहरे ब्रज-लालजी ने श्री युगल शतक (भट्टाचार्य कृत) सटीक प्रकाशित करवाया है।

गौड़ेश्वर-सम्प्रदाय और उसका साहित्य

श्री रूप सनातन और जीव गोस्वामी ने वृन्दावन में जो भक्ति और ज्ञान की धारा बहाई उसके फलस्वरूप प्रचुर साहित्य का मृजान हुआ। बंगला और संस्कृत दोनों में ये धारायें चलीं। हिन्दी में उनके अनुवाद प्रकाशित हो गये हैं। उज्ज्वल नीलिमणि उत्कृष्ट अलंकार ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है। विदग्ध माधव आदि नाटक भी हिन्दी में आ गये हैं। यह सब कर रहे हैं एक परम अकिञ्चन कर्मठ भक्त कृष्णादास बाबा जो पहले कुमुम-सरोवर पर रहते थे और अब मथुरा में रहने लगे हैं। साधनहीन होने पर भी उन्होंने लगभग १५० छोटे बड़े ग्रन्थ प्रकाशित कराये हैं। उनका प्रयास सराहनीय है। कोई संस्था या धनी की सहायता न होने पर भी

भिक्षा माँग कर वे अपना निर्वाह करते हैं और निरन्तर ग्रन्थ प्रकाशित कराते जा रहे हैं। भागवत संदर्भ आदि वृहत् ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ भी उनके पास तैयार हैं। अनुवाद से लेकर प्रकाशन और विक्रय तक सब काम अकेले ही करते हैं।

श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय और उनका साहित्य

श्रीकृष्ण की लीला भूमि में सभी सम्प्रदायों ने अपने-अपने मठ और मन्दिर स्थापित किये हैं। राधाजी का जन्म रावत नामक ग्राम में बताया जाता है। उसी के पास नाद ग्राम में हित हरिवंशजी का जन्म हुआ। किसी ब्राह्मण ने अपनी दो कन्याओं के साथ उनका विवाह कर राधा-वल्लभजी की मूर्ति दहेज में दी जो उसे वहीं प्राप्त हुई थी। बाद में यही श्री राधावल्लभ मंदिर में स्थापित हुई। पास ही श्री हित हरिवंश जी का प्राचीन मंदिर है जो मानसिंह का बनाया कहा जाता है।

सम्प्रदाय के गोस्वामियों के पास हस्तलिखित पुस्तकों का बड़ा भण्डार है। सबसे अधिक स्व० रूपलालजी का भण्डार है। श्री मुकुन्दवल्लभ जी के पास हित चतुरासी जी की हस्तलिखित प्रति है जिसके बीच-बीच में सुन्दर चित्र अंकित हैं जो देखते ही बनते हैं। हजारों रुपयों में ये माँगे जा चुके हैं किंतु दिये नहीं गये। शासन को इनकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये।

श्री ललिताचरण गोस्वामी ने राधावल्लभ सम्प्रदाय और साहित्य पर सुन्दर ग्रन्थ लिखा है। चाचा वृन्दावनदास जी ने कहते हैं चार लाख पद लिखे। उनके लाड़ सागर ब्रज प्रेमानन्द सागर-समय-मार आदि ग्रन्थों का प्रकाशन श्री धर्मनन्द जी ने बड़े परिश्रम से किया है। राजवैद्य श्रीलक्ष्मीनारायण जी ने राधा-मुधा निधि की विस्तृत व्याख्या प्रकाशित करना शुरू किया है। चार प्रकरण प्रकाशित भी हो चुके हैं। न्यूछावर—केवल प्रेम है हित सौरभ त्रैमासिक भी प्रकाशित होने लगा है।

श्रीकृष्ण-धाम की योजना

श्रीकृष्ण धाम की योजना सेठ गोविन्ददास जी ने बहुत पहले बना ली थी। कहते हैं कि वह स्व० जगमोहनदास जी की कल्पना थी। जो भी हो योजना अच्छी है। यतीपुरा में हुए वल्लभ कुन के आचार्यों ने उसे स्वीकृत कर अपनी योजनाओं में शामिल कर लिया है अतः उसे क्रियात्मक रूप मिल रहा है। वह एक सांस्कृतिक संस्था के रूप में रहेंगी। वल्लभ शोध-पीठ के बाद व्यास-भवन की योजना है। हमने उसमें कालिदास की जगह भागवत भवन और वाल्मीकि वन जोड़ने का सुझाव दिया। हमने उसे श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कर उनके विभिन्न रूपों के अनुसार चार भागों में विभाजित करने की सलाह दी है—

१—दार्शनिक—विश्व तत्त्व ज्ञान में गीता का योग।

२—सांस्कृतिक—विश्व संस्कृति में भारत का स्थान।

३—ब्रज साहित्य का अनुसंधान।

४—कलात्मक विकास के लिए साहित्य संगीत नाट्य।

५—राजनीतिक—विश्व राजनीति में श्रीकृष्ण का योग, महाभारत और व्यास के राजनीतिक सिद्धान्त, विश्व के राजनीतिक सिद्धान्तों में भारत का भाग अरस्तू से कौटिल्य और गाँधी तक।



राष्ट्र-निर्माण में संस्कृति और साहित्य का योगदान

[श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर', शङ्कर निवास भाँसी]

विश्व के मानव-मात्र अपनी-अपनी संस्कृति, सम्यता और साहित्य पर भरपूर आस्था रखते हुए उससे अविच्छिन्न सम्बन्ध रखते हैं और यह है भी उचित, विशेषकर स्वाधीन-राष्ट्र के निवासियों के लिए।

राष्ट्र-निर्माण की दिशा में अग्रसर होने के पूर्व यह आवश्यक है कि अपनी संस्कृति की पूर्वा-पर दशा पर दृष्टि रखते हुए भविष्य की रूपरेखा निर्धारित की जाय।

देश और समाज की संस्कृति और सम्यता का आभास साहित्य और लोक-साहित्य द्वारा ही मिला करता है और साहित्य ही भावनात्मक एकता का सूत्रपात्र करके समूचे राष्ट्र के जन-जन को एक सूत्र में आवद्ध कर सकता है।

कोई भी स्वतंत्र-राष्ट्र तब तक उन्नत और गौरवशाली नहीं बन सकता जब तक वह अपनी संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ नहीं होता। इस विषय पर युग-युगों से हमारे कवियों, लेखकों और साहित्यकारों ने अपनी-अपनी ओजमयी वाणी और सशक्त लेखनी द्वारा समय-समय पर भर-पूर प्रकाश डाला है, हमारा इतिहास इसका साक्षी है।

राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम में, कवियों और साहित्यकारों ने जन-जागृति का प्रशंसनीय कार्य किया था तब ही सफलता प्राप्त हो सकी।

अब उत्तर-दक्षिण का तारा लगाकर जो व्यक्ति मतभेद उत्पन्न करना चाहते हैं, वे राष्ट्र के हितैषी नहीं हैं। हमारी तो यह ध्रुव-धारणा है कि काश्मीर से कन्याकुमारी तक और पुरी से गांधी-धाम तक समूचे राष्ट्र में हमारी एक ही संस्कृति का विस्तार है और राष्ट्रीयता की दृष्टि से हम सब एक हैं। देश के चारों कोनों में स्थापित चारों-मठ और स्थल-स्थल पर विशाल-मंदिर तथा कीर्ति-स्तम्भ हमारी सांस्कृतिक-एकता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

हिन्दी-उर्दू का मतभेद भी उचित नहीं क्योंकि उर्दू भी हिन्दी में घुलमिल कर एक हो गई है। साम्प्रदायिकता का बखेड़ा उठाकर हिन्दी-उर्दू के मतभेद को जो बढ़ावा देते हैं वे राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में रोड़े ही अटकते हैं। भारतवर्ष धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है अतएव संकुचित मनोवृत्तियों को महत्व नहीं देना चाहिए, अपनी-अपनी संस्कृति की रक्षा करने के लिए सबको ही एक समान स्वाधीनता प्राप्त है।

देश के लिए संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का गौरवपूर्ण-पद प्राप्त हो चुका है फिर भी उसके प्रचार और प्रसार के लिए जैसा चाहिए वैसा प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। यह संतोष प्रद है कि कितने ही प्रदेशों की सरकारों ने अपना सब काम-काज हिन्दी में करना प्रारम्भ कर दिया है किन्तु केन्द्रीय-सरकार की गति-विधियाँ विशेष उत्साह जनक नहीं। इस ही सप्ताह (जन-

वरी ६८) में, समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था कि विदेशों में अस्सी भारतीय दूतावास हैं। उन सबमें अंग्रेजी का ही बोलबाला है। केवल रूस और नेपाल के दूतावासों में विवश होकर हिन्दी को स्थान देना पड़ा। नेपाल-सरकार अपने पत्रों का उतर हिन्दी भाषा में ही स्वीकार करती है, इसी प्रकार रूसी सरकार ने वे सब पत्र जो अंग्रेजी में लिखे गए थे भारतीय दूतावास को लौटा दिए थे तब विवश हो हिन्दी में पत्र भेजने पड़े। उक्त विदेशी-सरकारें हिन्दी का समर्थन करें और हमारी केन्द्रीय-सरकार इतने वर्षों के पश्चात् भी उसके लिए उचित व्यवस्था न कर सके यह आश्चर्यजनक है।

केन्द्रीय-सरकार की शिथिलता के कारण ही दक्षिण में हिन्दी विरोधी अभियान ने जोर पकड़ा अन्यथा वह इतना उग्र रूम धारण न करता। एक प्रार तो यह स्वीकार किया जाता है कि अंग्रेजी केवल एक प्रतिशन व्यक्तियों की भाषा है फिर भी दूसरी ओर ९९ प्रतिशत देशवासी भाइयों की भावनाओं की उपेक्षा की जाती है।

यह युग की मांग है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी को सब प्रकार बलवती बनाकर सर्वप्रिय बनाया जाय और अंग्रेजी का प्रयोग जितनी जल्दी हो सके बन्द कर दिया जाय। देश की अन्य भाषाएँ हिन्दी के साथ ही साथ अपना-अपना विकास कर सकती हैं। उनके द्वारा ही समूचे राष्ट्र का साहित्य समृद्ध हो सकेगा। अनावश्यक विवाद बढ़ाकर राष्ट्र की शक्ति का दुरुपयोग करना उचित नहीं है।

युग-परम्परा से भारतीय-संस्कृति यही संदेश देती आई है कि 'जियो और जीने दो' 'वसु-धैव कुटुम्बकम्' की भावनाओं का आदर करो। प्राचीन काल से ही प्रतिदिन हम सब अपनी प्रार्थनाओं में नियम पूर्वक कहते आ रहे हैं—

मित्रस्य अहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे

—वेद

मैं सब संसार की ओर मित्र-भाव से देखूँ जिससे सब उस ही दृष्टि से मुझे देखें—

महात्मा बुद्ध ने उक्त भावनाओं को और अधिक प्रसारित किया। अपनी इस संस्कृति की महानता के कारण सब प्रकार समर्थ होते हुए भी हम प्राचीन-काल में आक्रान्ता नहीं बने। इतिहास हम बात का साक्षी है कि समूचे राष्ट्र के गाँव-गाँव में हमारी संस्कृति अब भी जीवित है, घोर-संघर्ष उसको तिरोहित नहीं कर सके। इस गए बीते युग में राष्ट्रपिता विश्व-बन्ध बापू ने, बिना रक्त बहाए, उसी संस्कृति का आश्रय ले देश को स्वाधीन बना दिया।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति-निकेतन और विश्व-भारती की स्थापना करके देश को महत्ता दी जिससे इस राष्ट्र की संस्कृति और साहित्य को तो महत्व मिला ही विश्व भर को मार्ग दर्शन मिल गया। युग-पुरुष विनोबा भावे ने राष्ट्रपिता बापू की सर्वोदय विचारधारा लेकर भूशान और पद यात्रा द्वारा विश्व को चकित कर दिया और सिद्ध कर दिया कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में अपरिमित शक्ति समायी हुई है।

विश्व का कल्याण भारतीय-संस्कृति और आध्यात्म ज्ञान द्वारा ही संभव है, क्यों कि वह नैतिक-जीवन की गुरुता और आध्यात्मिक-जीवन की महत्ता पर आधारित है अतएव केवल अपने राष्ट्र-निर्माण के लिए ही नहीं, विश्व-प्रेम और विश्व-शान्ति के लिए हमारी संस्कृति और हमारा साहित्य वरदान तुल्य सिद्ध होगा।

पद्माकर की 'गंगालहरी'

और

गवाल की 'यमुना लहरी'

(श्री भगवान सहाय पचौरी 'भवेश' एम० ए०—कृष्णापुरी मथुरा)

गासाँद तामी ने गवाल की यमुना लहरी के विषय में लिखा था—“पद्माकर कृत” गंगा लहरी (गंगा की लहर) के क्रम में प्रकाशित “यमुना लहरी”—(जमुना की लहर) के रचयिता गवाल हैं, बनारस, १८६५, २०—२० पंक्तियों ३६ अठपेजी पृष्ठ^१। तामी महोदय के कथन से ध्वनित होता है कि पद्माकर की 'लहरी' गवाल की 'लहरी' के पहले रची गई थी। सर्वश्री शिव-सिंह सेंगर, मिश्र-बंधु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति साहित्येतिहासकारों ने इस विषय में मौन धारण किया है। श्री प्रभुदयाल मोतल लिखते हैं—“कहते हैं, गवाल ने यह ग्रन्थ (यमुना लहरी) पद्माकर कवि कृत 'गंगा लहरी' की प्रतियोगिता में बनाया था। जमुना-लहरी के कुछ छंदों में पद्माकार के अनुकरण की छाप भी है।^२, इससे स्पष्ट है कि मोतलजी का आधार साहित्यिक 'जनश्रुति' है, जिसके अनुसार पद्माकर के अनुसरण पर गवाल की 'यमुना-लहरी' बनाई बताई गई है। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इस विषय में लिखते हैं—“इन्होंने (गवाल ने) अपने पूर्व-वर्ती कवियों की शैली का विविध ग्रन्थों में अनुगमन करने का प्रयास किया है। पद्माकर की 'गंगा लहरी' का अनुगमन करने का प्रयास किया गया है^३, 'पद्माकर पंचामृत' में आचार्य मिश्र इस सम्बन्ध में और भी स्पष्ट करके इसी मत की पुष्टि इन शब्दों में करते हैं—“गवाल ने तो मानों पद्माकर की डांडा-मेड़ी में ही रचनाएँ की हैं। उनकी 'यमुना लहरी' पद्माकर की 'गंगा लहरी' की होड़ा-होड़ी में बनी और 'रसरंग' 'जगत-विनोद' के अनुगमन पर निर्मित हुआ। इन कवियों के विषय की ही समानान्तरता नहीं है उप विषय, प्रसंग, भाव आदि ठीक आमने-सामने भिड़े बैठे हैं।^४ मिश्र जी का तो स्पष्ट निर्णय ही है कि गवाल ने 'यमुना-लहरी' पद्माकर की 'गंगा लहरी' के अनुगमन पर बनाई।

परंतु इन दोनों लहरियों के रचनाकाल को देखने पर और किंचित सतर्कता के साथ अंत-साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य का अवलोकन करने पर यही निर्णय इसके ठीक विपरीत जा बैठता है और

१—इस्त्वार दला लितरेत्यूर ऐंडुई एं ऐंस्तानी: हिन्दी अनुवाद हिन्दुई साहित्य का इतिहास—

डा० लक्ष्मी सागर वाष्ण्य—१९५३ पृष्ठ ६७-६८

२—गवाल कवि:—श्री प्रभुदयाल मोतल—२०१७ वि०, पृष्ठ ४९

३—हिन्दी साहित्य का अतीत:—द्वितीय भाग २०२३ वि०, आ० पं० वि० ना० प्रसाद मिश्र पृष्ठ ६०५.

४—पद्माकर पंचामृत: आ० वि० ना० प्रसाद मिश्र: स० १९९२, वि०, पृष्ठ ७७.

अनुसरणकर्ता ग्वाल नहीं पद्माकर सिद्ध होते हैं। इसी के प्रामाण्य साक्ष्यों पर नीचे एक दृष्टिपात किया जायगा।

ग्वाल की 'यमुना लहरी' के रचना काल के विषय में कहीं भी दो मत नहीं हैं। इसकी रचना सं० १८७९ वि० में हुई। अंतर्साक्ष्य कहता है—

संबत् निधि रिसि सिद्धि ससि, कातिक मास सुजान ।

पूरनमासी परम प्रिय, राधा हरि कौ ध्यान ॥

भयौ प्रगट ताही सु दिन, जमुना लहरी ग्रन्थ ।

पढ़े सुनै आनन्द मिलै, जानि परै सुर पंथ ॥

सभी विद्वानों ने इसकी पुष्टि की है।

पद्माकर की गंगा लहरी की रचना कब हुई अन्तर्साक्ष्य इस विषय में मौन है। तासी महोदय बस इतना लिखते हैं—'गंगा लहरी' (गंगा की लहरें) सदासुखलाल कृत 'गंगा की लहर' शीर्षक रचना की भाँति। बनारस, १८६५, २३० पंक्तियाँ, ३६ अ० पेजी पृष्ठ १^२, इससे कोई भी बात नहीं बनती। श्री त्रियसंन महोदय लिखते हैं—'कवि ने अन्तिम वर्ष' गंगा की उपासना में बिताये और 'गंगा लहरी' नामक ग्रन्थ की रचना की।^३ सेंगरजी का कथन इस प्रकार है—'गंगा सेवन में शेषकाल व्यतीत किया। गंगा लहरी नाम ग्रंथ इनका है।^४, मिश्र बंधु महोदय इसके विषय में लिखते हैं—'रोगमुक्त होने पर पद्माकर जी गंगा सेवनार्थ कानपुर चले गए और वहीं सुखपूर्वक अपनी आयु के शेष दिन उन्होंने प्रायः ७ साल तक व्यतीत किये। इसी समय उन्होंने गंगा लहरी नामक ५६ छंदों का एक उत्तम ग्रंथ बनाया।^५ इससे एक बात तो यह निश्चय होती है कि पद्माकर के अन्तिम ७ वर्ष कानपुर में गंगा सेवन में बीते और दूसरे कि यहीं 'गंगा लहरी' की रचना हुई। पद्माकर जी का गंगा लाभ काल सं० १८६० वि० सर्व सम्मत और सर्वमान्य है। इसके अनुसार गंगा लहरी की रचना काल सं० १८८३ से सं० १८६० वि० के बीच में निश्चित होता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इस मत की इन शब्दों में पुष्टि की है—'अन्तिम समय निकट जान पद्माकर जी गंगातट के विचार से कानपुर चले आये और वहीं अपने जीवन के शेष सात वर्ष पूरे किये। अपनी प्रसिद्ध 'गंगा लहरी' इन्होंने इसी समय के बीच लिखी।^६ कवि के वंशधर विद्वान पं० भालचंद्र राव तैलंग इस प्रसंग में लिखते हैं—'वे सीधे कानपुर चले आए

१—यमुना लहरी ग्वाल—छं० सं० १०७, १०८.

२—गार्सा इतासी का इतिहास—अन० हिन्दूई साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १३६

३—बीइंग रिचली रिवाड्ड ही डिबोटेड द रैस्ट औब् हिज लाइफ टु द वरशिप औब् द गेंजोज एन्ड रोट अ वर्क नेम्ड गंगालहरी—पोयट नं० ५०६.

—द माडर्न बर्नाब्यूलर लिटरेचर औब् हिन्दूस्तान

४—शिव सिंह सरोज—ठा० शिवसिंह सेंगर सं० १६३४ संस्करण पृष्ठ ४०६

५—मिश्रबन्धु विनोद—द्वितीय भाग सं० १६८४ संस्करण पृष्ठ ६०३.

६—हिं० सा० का इतिहास—आचार्य शुक्ल सं० २०१५ वि० पृष्ठ २६५

और अपना गंगा लहरी ग्रंथ सीधे कानपुर में ही समाप्त किया ।^१ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि 'अंत के पद्यों में मानों रचयिता गंगा के सम्मुख ही पहुंच गया है, ।^२

उपरोक्त सभी साक्ष्यों से गंगा लहरी कवि की अंतिम रचना ठहरती है । साथ ही उनका कानपुर प्रवास काल इस रचना का रचना काल निश्चय होता है । अतः गंगा लहरी की रचना सं० १८८३ व १८९० वि० के मध्य हुई थी, इस मत के विरुद्ध सम्प्रति कोई साक्ष्य दिखाई नहीं देता । डा० ब्रजनारायण सिंह ने इस विषय में निष्कर्ष इस प्रकार निकाला है — 'कवि ने इसकी रचना सं० १८८४ वि० के लगभग प्रारम्भ करदी होगी..... तथा अंतिम वर्ष (१८९० वि०) में आकर इस ग्रंथ को कवि ने समाप्त किया । इस प्रकार कवि का यह अंतिम ग्रंथ ठहरता है' ।^३

उपयुक्त साक्ष्यों के परिशीलन विवेचन से मेरा मतव्य यही सिद्ध करने का है कि गंगा लहरी की रचना, बहुत खींचा जाय तो, सं० १८८३ वि० से पहले प्रारम्भ नहीं हुई थी । इसके विरुद्ध मत में साहित्य कोई प्रमाण नहीं जुटाता । ग्वाल की यमुना लहरी, सं० १८७९ वि० में पूर्ण हो चुकी थी । इस प्रकार पद्माकर ने अपनी 'लहरी' को ग्वाल की 'लहरी' के प्रायः ४-५ वर्ष उपरांत लिखना प्रारम्भ किया था । अतः अतर्क्य रूप से 'गंगा लहरी' यमुना लहरी' की परवर्ती रचना सिद्ध होती है न कि पूर्ववर्ती । इस परिस्थिति में ग्वाल ने पद्माकर का अनुगमन या अनुसरण कैसे कर लिया, यह विचारणीय है । यमुना लहरी और गंगालहरी के कई छन्द परस्पर विषय और भावों में साम्य रखते हैं, इस विषय पर विद्वानों ने पर्याप्त लिखा है ।^४ इस पर यहाँ प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं दिखाई देती । यहाँ दोनों कवियों के 'चित्रगुप्त' आदि के प्रसंगों की ओर संकेत भर कर देना ही पर्याप्त होगा । इस विषय और भावसाम्य से इस धारणा को बल मिलता है कि पद्माकर ने ग्वाल की 'यमुना लहरी' का अनुगमन करके न केवल 'गंगा लहरी' की रचना की थी बल्कि 'जमुना लहरी' भी बनाई थी । यहाँ यह बता देना प्रासंगिक ही होगा कि 'जमुना लहरी' ग्वाल की प्रारम्भिक रचना है और 'गंगा लहरी' और 'जमुना लहरी' पद्माकर की अन्तिम । अतः यह बात स्वाभाविक ही थी कि पद्माकर की रचना ग्वाल की रचना से उत्कृष्ट होती । ग्वाल की 'यमुना लहरी' प्रारम्भिक कृति होने पर भी पर्याप्त मूल्यवान तथा प्रौढ़ रचना है ।

इसका प्रकाशन ग्वाल के जीवन काल में ही सन् १८९६ ई० में हो गया था, जबकि पद्माकर की गंगा लहरी का प्रकाशन उनकी मृत्यु के प्रायः ३२ वर्ष पश्चात् सन् १८९५ ई० में हुआ था । ग्वाल की यमुना लहरी के नवल किशोर प्रेस लखनऊ के चार संस्करणों के देखने का अवसर हमें मिला है । इसका प्रकाशन "निम्बार्क माधुरी" में भी हुआ । पंजाबी और गुजराती में भी इसके संस्करण हुए । काव्यकला के साथ-साथ इसका काव्यशास्त्रीय महत्व भी है । कारण, इसमें पट्कृतु वर्णन और नवरस का भी परिपाक है । पद्माकर की 'गंगा लहरी' में आद्योपान्त उत्कृष्ट

१—माधुरी वर्ष १३ खंड २ सं० १ सन् १९३४ ई०

२—पद्माकर पंचामृत—पृष्ठ १९

३—कविवर पद्माकर और उनका युग—डा० ब्रजनारायणसिंह १९६९ पृ० १३०

४—देखिए हिन्दी साहित्य का अतीत — भाग द्वितीय आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं इन्हीं का पद्माकर पंचामृत ।

काव्य के दर्शन होते हैं। अपने-अपने स्थान पर दोनों ही अत्यन्त महत्व की अमर कृतियाँ हैं। पद्माकर की “जमुना लहरी” के कुछ छन्द ही खोज में मिलते हैं, जिन पर ग्वाल की ‘जमुना-लहरी’ का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह लिखना भी अप्रासंगिक नहीं दिखाई देता कि विद्वानों ने ग्वाल की कई अन्य रचनाओं को किसी न किसी भ्रान्तिवश परवर्ती रचनाओं की अनुकृति बता रखा है। ग्वाल के ‘हम्मीर हठ’ को चन्द्रशेखर बाजपेयी के ‘हम्मीर हठ’ की अनुकृति ठहरा दिया गया है। अन्त-संक्षेप के आधार पर ग्वाल का गम्मीर हठ सं० १८८३ वि० और चन्द्रशेखर का सं० १९०२ में रचा गया था।

देखिए—

ग्वाल कृत हम्मीर हठ का छन्द—

संवत गुन सिधि-सिधि ससी, कातिन कुहू बखान ।

श्री हमीर प्रगट सौं, अमृतसर सुभ थान ॥

चन्द्रशेखर बाजपेयी कृत हम्मीर हठ का छन्द—

कर नभ रस अरु आतमा, संवत फागुन मास ।

कृष्ण पक्ष तिथि चौथ रवि, जेहि दिन ग्रन्थ प्रकास ॥

ग्रन्थों के रचना काल को दृष्टि में रखकर ही किसी कवि की कृति को पूर्ववर्ती या परवर्ती घोषित किया जाता है। परन्तु ऐसी कई भ्रान्तियाँ साहित्य में चलती रहीं हैं— जिनका निराकरण आवश्यक है। केवल छन्द साम्य आदि के आधार पर अनुमान के सहारे निष्कर्ष निकालना कदापि न्याय संगत नहीं कहा जा सकता।



१—(प्र) देखिए—हिन्दी अनुशीलन का धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक—ग्वाल कवि—ले० आचार्य पं० विद्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ३३०

(ब) ग्वाल कवि—श्री प्रभुदयाल मोतल पृष्ठ ५४।

वैदिक साहित्य में आभूषण

[डा० राज बुद्धिराजा शादीपुर (नई दिल्ली)]

मनुष्य की चिरकाल से चली आती हुई सौन्दर्य प्रियता की भावना अलंकार के मूल रूप में निहित है। जीवन की बलवती प्रेरणा से मनुष्य आभूषण धारण करता है। आभूषण आधुनिक युग की देन नहीं है। संस्कृत साहित्य में विभिन्न प्रकार के आभूषणों का वर्णन मिलता है। वैदिक साहित्य अब तक देवताओं का प्रशस्तिगान समझा जाता रहा है। वेद प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। यहाँ मात्र देवताओं का गान नहीं है। आर्यों की सभ्यता और संस्कृति का भी दिग्दर्शन होता है। उस समय के वस्त्र परिधान और आभूषणों का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। उस समय चांदी और अक्रत्रिम धातुओं के आभूषण नहीं बनते थे। हिरण्य, रत्न, मणि और मोतियों के आभूषण बनते थे। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही आभूषण धारण करते थे। स्त्रियाँ तो सिर से पैर तक आभूषणों से लदी रहती थीं। वे स्वर्ण के समान व्यवहार करती थीं।

उस समय एक धातु विशेष से आभूषण बनते थे जिसे हिरण्य कहते हैं। यह धातु सोने के समान उज्ज्वल और चमकती हुई होती थी। सूर्य के समान इसके अनेक रंग होते थे। आधुनिक युग का सुवर्ण इसी धातु से बना होगा। 'हिरण्य' शब्द अनेक मंत्रों में प्रयुक्त हुआ है। यह धातु सीमित नहीं होती थी, स्थान-स्थान पर इसका फैलाव होता था। यजुर्वेद के ३३ वें अध्याय और २८ वें मन्त्र से यह पता चलता है कि यह धातु अनेक प्रकार की होती है। सहस्रों प्रकार की असंख्य सुवर्णादि धातु 'हिरण्यगर्भ' में रहती थी। जहाँ से ये धातुएं निकलती थी, उस स्थान विशेष को 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता था।

हिरण्यगर्भः समवतताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक प्राप्नोत् ।

स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋक् १०, १२१, १.

हिरण्य धातु बहुमूल्य होने के साथ-साथ सुव्रदायक भी है। इसका गुणगान अनेक मंत्रों में किया गया है। यह आनंददाता है। इसको पास रखने से सब प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं। आर्य लोग जिन देवताओं की स्तुति किया करते थे वे सभी हिरण्यमय थे, हिरण्य देने वाले थे। अपात्र, सोम, अग्नि और वरुण सभी इस चमकती हुई धातु को देने वाले हैं।

या ते अग्नयः शया तनूर्वापिष्टा गह्वरेष्ठा ।

यजु० अ० ५, मं० ८

आकाश की बिजली और पृथ्वी की अग्नि दोनों ही हिरण्य प्राप्त कराते थे। न केवल राजा ही इस धातु के आभूषण धारण करते थे, बल्कि विद्वानों का मोह भी इसके प्रति कम नहीं था। वे भी विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनते थे। सुवर्णादि पदार्थों से वे सुवर्णवान और उत्तम प्रजा-युक्त होते थे और लोग उनका स्वागत करते थे।

नराश सः प्रतिशूरो भिमानस्त नूनपात्यति यज्ञस्य धाम

गोभिर्वपान्मधुना समंजनहिरण्येश्चन्द्री यजति प्रचेताः ।

यजु० अ० २०, मं० ३७

‘अयः’ ‘पेशः’ शब्द भी सुवर्ण के पर्याय रूप में वेदों में प्रयुक्त हुए हैं। इससे पता चलता है कि उस समय लोगों के पास असंख्यों हीरे जवाहिरात तथा सोना होता था। न केवल मनुष्य बल्कि उनके पशु भी आभूषणों से लदे रहते थे। घोड़ों को सजाने का वर्णन तो स्थान-स्थान पर मिलता है।

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै

यजु० अ० २५, मं० ३६

रत्न -

सुवर्ण के अतिरिक्त उस समय रत्नों, मणियों और मोतियों के भी आभूषण बनते थे। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में ही रत्नों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। अग्नि से पराक्रम तथा पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना के साथ-साथ ‘महिरत्न’ प्राप्ति के लिए भी प्रार्थना की गई है।

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नम् यविष्ठ देवताति मिन्वसि ।

तत्त्वानु नव्यम् सहसो युवन्वयम् भंग न कारेमहिरत्न धीमहि ।

ऋक् १, १४१, १०

उस समय लोग रत्नों का व्यापार करके असंख्य रत्नों का संग्रह किया करते थे। केवल संग्रह में ही संतुष्ट नहीं होते थे, बल्कि वे रत्नों के गुण दोषों के भी अच्छे पारखी होते थे। यदि उन्हें समझने में कठिनाई होती तो वे प्रार्थना कर उसे प्राप्त करते थे।

सुभागाग्ने देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्स्तोवृन यरुतो वावृधानाः ।

अधि स्तोत्रस्य सरव्यस्य गात सानद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥

ऋक् १०, ७९, ८

(हे देवो, मरुतो ! हमें उत्तम धन, उत्तम रत्नों का स्वामी बनाओ। आप मुन्दर रत्नों के स्वामी हैं।)

मणि-

मणि शब्द का प्रयोग ऋक् और यजुर्वेद में मिलता है। हिरण्य के आभूषण तो सारे शरीर पर धारण किए जाते थे और मणि के आभूषण विशेषकर ग्रीवा और कानों के लिए बनाए जाते थे। ये मणियाँ कई प्रकार की होती थीं। चिलकती हुई मणियाँ और नीलमणियाँ विशेष रूप से पहनी जाती थीं।

असौ यो वसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।

यजु० अ० १६, मं० ७

हिरण्यकर्णाम् मणिग्रीवमर्णस्तिन्गो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।

ऋक् १, १२२, १४

मोती-

मणि के साथ-साथ मोती से बने आभूषण भी काफी मात्रा में पाए जाते थे। देवि देवता और मनुष्य तो इनका प्रयोग करते ही थे, वे जिस सवारी पर चढ़ते थे वे मोती-मंडित होती थीं रथों और घोड़ों को भी मोती के आभूषणों से सजाया जाता था। ये मोती रंग-बिरंगे

सं. २०२५]

वैदिक साहित्य में आभूषण

[२७

होते थे। सविता देव सोने के रथ पर सवार होकर आते थे। उस रथ पर तेजवान, चमकते हुए और विभिन्न रंगों के मोती लगे रहते थे। न केवल रथ बल्कि उसके घोड़ों को सजाने के लिए भी अनेक प्रकार के मोतियों का उपयोग किया जाता था।

चत्वारिंशद्वशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति ।

मदच्युतः कृणानावतो अत्यान् कक्षोवन्त उदमृक्षन्त पञ्चाः ।

ऋक् १, १२६, ४

उपरोक्त मंत्र से मालुम होता है कि दसों रथों में जुते हुए घोड़ों ने मोतियों के आभूषण पहने हुए हैं।

स्त्रियों की आभूषण प्रियता—

स्त्रियों की आभूषण प्रियता सर्वविदित है। उस समय की स्त्रियाँ नाना प्रकार के आभूषणों से अपने कोमल शरीर को सजाती थीं। 'कुरीर' तथा 'ओपश' नामक आभूषण उन्हें विशेष प्रिय थे। ये आभूषण मस्तक पर पहने जाते थे। विवाह के समय ये आभूषण विशेष रूप से पहने जाते थे। उनकी यह धारणा थी कि उन्हें पहनने से कुमारियों की मनोकामना पूर्ण होती थी।

स्तोमाआसन्प्रतिधयः कुरीरम् छन्द ओपशः ।

ऋक् १०, ८५, ८

कान के आभूषणों में 'कर्णशोभना' बहुत प्रचलित था। इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ सुनहरे गोल चक्रों के समान आभूषण कानों में पहनती थी। इसके साथ उन दिनों अंगूठी पहनने का भी रिवाज था। सविता देव अंगुलियों में आभूषण पहनते थे जिसे 'हिरण्यपाणि' कहा जाता था।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुद ह्वये । स चेता देवता पदम् ।

ऋक् १, २२, ५.

'हिरण्यवर्तिनी', नामक आभूषण स्त्रियाँ कमर में पहनती थीं। संभवतः यह 'तगड़ी' का ही पुरातन रूप रहा हो। उस समय पैरों में भी आभूषण पहने जाते थे। उनमें 'हिरण्यपावा' नामक आभूषण स्त्रियों को विशेष प्रिय था। यह वर्तमान पायजेव का ही प्राचीन रूप है।

अंजते व्यंजते समंजते क्रतुम् रिहन्ति मधुनाभ्यजते ।

सिन्धोरुच्छवासे पतयन्तमुक्षराम् हिरण्यपावाः पशुमासु गृम्हन्ते ।

ऋक् ६, ८६, ४३.

वैदिक साहित्य में रत्नों, मणियों और मोतियों का वर्णनों के देखकर यह सहज ही कहा जा सकता है कि भारत सोने की चिड़िया रहा होगा। ये आभूषण आधुनिक युग की देन नहीं हैं। आज हमारी प्राचीनतम पुस्तकों में इनके विभिन्न रूप पाए जाते हैं।

* विक्रमादित्य का ऐतिहासिक अस्तित्व *

(श्री वुन्दावन दास)

राम और कृष्ण के बाद भारतीय जनमानस में यदि कोई सबसे अधिक प्रचलित और विख्यात नाम है तो वह विक्रमादित्य है। विक्रमादित्य की न्यायप्रियता, भेष बलकर प्रजा में धूमना और उनके कष्टों का निवारण करना, परदुःख भंजनार्थ कितना भी कष्ट उठाना पड़े उसकी परवाह न करना, दूसरों की सहायता करने के निमित्त यदि प्राणोत्सर्ग भी करना पड़े तो वह भी सहर्ष करने को उद्यत रहना आदि विशेष गुणों पर आधारित हजारों कथाएँ जनमानस में प्रचलित हैं। जिस प्रकार राम और कृष्ण जन मानस में रमे हुए हैं उसी प्रकार अपने गुणों के कारण विक्रमादित्य भी। विक्रम से सम्बन्धित हजारों आख्यानों में उनके अनुपम शौर्य, नीतिज्ञता और चातुर्य के बड़े अनूठे दृष्टान्त भरे पड़े हैं। वुन्देलखण्ड में विक्रमादित्य पर लोक-कथाओं की बड़ी भरमार है। वहाँ तो विक्रमादित्य का नाम आते ही “चौदा विद्या के निधान, पर दुःख के मेटनहार राजा बीर विक्रमाजीत” शब्दों का प्रयोग हठात कर दिया जाता है। विक्रम से सम्बन्धित लोक-कथाएँ सम्मानप्रद और शुभ समझी जाती हैं। इन कथाओं की लोकप्रियता का एक कारण उनमें निहित साम्य योग है। ये कथाएँ राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी का ही केवल चित्रण प्रस्तुत नहीं करती, इनमें गड़रिया, धोबी, नाई, जोगी, सिपाही, चिमऊँ चोर, कलिमा भंगिन आदि का वर्णन भी उतने ही परिमाण में मिलेगा जितना कि किसी राजा-रानी का। इन कथाओं के पात्रों का पारस्परिक सम्पर्क विविध वर्गों की समता का बड़ा अद्भुत सन्देश प्रदान करता है। लोक कथाओं में विक्रम की परदुःख कातरता प्रजापालकता, उदारता, वैभव, पराक्रम और प्रभाव के बड़े ही सजीव चित्रण हैं। विक्रमादित्य जनश्रुति के एक परम आदर्शवान राजा थे जिनकी मिसाल मिलना कठिन है।

जिस राजा के सम्बन्ध में लोक-कथाओं का इतना अतुल भण्डार उपलब्ध है, जो राजा जन-जन में इतना प्रसिद्ध है पाश्चात्य ऐतिहासिक लोग उनके अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। वे उसे कल्पनाजगत का नायक ही मानते हैं। कदाचित् जनश्रुति के अतिरंजित वर्णनों के कारण उन्होंने अपनी धारणा इस प्रकार की बनाई हो।

विक्रमादित्य के अस्तित्व को सिद्ध करने का आधार विक्रम सम्बत् है। विक्रम संवत् का प्रयोग उनके अस्तित्व की प्रबल दलील है। प्रतिष्ठान के राजा हाल की सप्तशती में विक्रमादित्य का उल्लेख है। सप्तशती का रचनाकाल ईसा की पहली शताब्दी है। अतः उसमें विक्रमादित्य का उल्लेख होना इस बात का द्योतक है कि उनकी इससे भी पहले अर्थात् ईसा पूर्व पहली शताब्दी में उत्पत्ति सम्भव है। सप्तशती में उल्लेख इस प्रकार है, “विक्रमादित्य नामी उदार एवं प्रतापी राजा ने भृत्यों को लाखों का उपहार दिया।” विक्रम का अस्तित्व ईसा पूर्व पहली शताब्दी में ही सिद्ध होता है। विक्रम सम्बत् और ईसवी सन् में ५७ वर्ष का अन्तर है, विक्रम सम्बत् ईसवी सन् से

७ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था और यह निश्चय ही है कि यह विक्रमादित्य द्वारा किसी महान् राज्य के उपलक्ष में प्रवर्तित किया गया था। इस प्रकार विक्रम का ऐतिहासिक अस्तित्व ईसा पूर्व पहिली शताब्दी में सिद्ध होता है। खुदाई में सिक्के और शिलालेख आदि के केवल न निकलने से ही विक्रमादित्य के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अनुबन्धान के आधार पर नित्य नये तथ्यों का उद्घाटन होता रहता है। जिस महापुरुष के सम्बन्ध में इतनी अनुश्रुति विद्यमान है उसके विषय में अद्यतन मान्यता प्राप्त साक्ष्य भी शीघ्र ही प्रस्तुत होंगे।

विक्रमादित्य के विषय में एक उल्लेखनीय अनुश्रुति सोमदेव भट्ट रचित कथासरित् सागर में है। कथा सरित्सागर गुणाढ्य रचित बृहत्कथा पर आधारित है। गुणाढ्य सातवाहन सम्राट् हाल का समकालीन था जो ईसवी पहिली शताब्दी में हुआ था। कथासरित् सागर में लिखा है कि विक्रमादित्य उज्जैन के राजा थे। उनके पिता का नाम महेन्द्रादित्य और माता का नाम सौम्यदर्शना था। महेन्द्रादित्य के जब बहुत समय तक कोई पुत्र न हुआ तो उन्होंने शिव की आराधना की। उस काल में पृथ्वी पर धर्म का लोप हो रहा था और शकों के रूप में म्लेच्छों का आधिपत्य एवं अत्याचार बढ़ रहा था। धर्म की पुनर्स्थापना की दृष्टि से देवताओं ने भी शिव का आह्वान किया। शिव ने अपने गण माल्यवान को आदेश दिया, “तुम मेरे भक्त महेन्द्रादित्य के यहाँ पुत्ररूप से उत्पन्न हो जाओ और पृथ्वी का भार उतारो।” उधर शिवजी ने महेन्द्रादित्य को वरदान दिया, “तुम्हारे पुत्र होगा और तुम उसका नाम विक्रमादित्य रखना।” सोमदेव ने विक्रमादित्य का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वह पितृहीनों का पिता, बन्धुहीनों का बन्धु, अनाथों का नाथ और प्रजाजन का सर्वस्व था।

विक्रमादित्य सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण अनुश्रुतियाँ जैन ग्रन्थों में भी हैं। मेरुतुंगाचार्य रचित पदावली के अनुसार महावीर निर्वाण सम्वत् के ४७० वें वर्ष में विक्रमादित्य ने शकों का उन्मूलन कर सम्वत् का स्थापना की। इसका समर्थन प्रबन्धकोप एवं धनेश्वर सूरि रचित शत्रुंजय महात्म्य से भी होता है।

एक जैन अनुश्रुति इस प्रकार है। जैन साधु कालकाचार्य और उनकी बहिन साध्वी सरस्वती उज्जयिनी में रहते थे। उस समय वहाँ गर्दभिल्ल नाम का एक राजा राज्य करता था। साध्वी सरस्वती परिव्राजिका होते हुए भी अपूर्व सुन्दरी थी। गर्दभिल्ल उसके सौंदर्य पर आकर्षित हो गया। अन्य ग्रन्थों में भी गर्दभिल्ल के विषयी और विलासी होने के उल्लेख मिले हैं। गर्दभिल्ल ने अपनी वासना को तृप्त करने के लिए साध्वी सरस्वती को बलात् अपने अन्तःपुर में बुलवा लिया। कालकाचार्य ने गर्दभिल्ल को बहुत समझाया, अनुनय-विनय की परन्तु वह न माना। अतः कालकाचार्य ने उसका नाश करने के हेतु सिन्ध की राह ली जहाँ शाही वंश के राजा राज्य करते थे। कालकाचार्य की प्रेरणा से शकराजा ने गर्दभिल्ल से युद्ध ठाना जिसमें गर्दभिल्ल की पराजय हुई और वह भाग खड़ा हुआ। साध्वी सरस्वती मुक्त हुई। शकराजा का राज्य भी अधिक दिनों तक न चला। पट्टावली के अनुसार गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों का वंशोच्छेद कर दिया और प्रजाजनों को अनेक प्रकार के दानों द्वारा ऋण रहित कर दिया।

कुछ पुरातत्ववेत्ताओं ने गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को और कुछ ने गौतमी पुत्र सातकर्ण को विक्रमादित्य माना है परन्तु गुप्तवंशीय सम्राट् चतुर्थ शताब्दी में और सातवाहन

सम्राट दूसरी शताब्दी में हुए हैं। निस्संदेह इन दोनों सम्राटों ने अपना विरुद्ध विक्रमादित्य धारण किया था। उस काल में विक्रम के गुणों की इतनी चर्चा थी और जनता उनसे इतनी प्रभावित थी कि सम्राटों द्वारा इस विरुद्ध का धारण किया जाना महत्वपूर्ण समझा जाता था। यह विरुद्ध उस अपार यश और वैभव का द्योतक था जिसका श्रेय जनश्रुति में लोकप्रिय राजा विक्रमादित्य को था। इस विरुद्ध को धारण करने की परम्परा ई० पू० पहली शताब्दी के पहिले के सम्राटों में न थी। होती भी कहाँ से, विक्रमादित्य तो ई० पू० पहली शताब्दी में ही उत्पन्न हुए थे। उनके समय के बाद के अनेक सम्राटों ने इस विरुद्ध को धारण किया। विक्रमादित्य के नाम के साथ एक महत्व और आभा सज्जन थी और यही कारण था कि उनके अनेक परवर्ती भारतीय सम्राटों ने विक्रमादित्य नाम की उपाधि धारण की और अपने आपको गौरवान्वित किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय की राजधानी पाटलिपुत्र थी, वे मगध के सम्राट थे यद्यपि अवन्ति-प्रदेश जिसकी कि उज्जयिनी एक नगरी थी उनके अधीन था। इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि चन्द्रगुप्त ने कभी उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया हो। इससे यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य से भिन्न व्यक्ति हैं। इसी भाँति सात वाहन सम्राट सातर्काण महाराष्ट्र के थे, उज्जयिनी उनकी राजधानी कभी नहीं रही। उनके भी मूल विक्रमादित्य होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

कुछ विद्वान विक्रमादित्य को मालव गण नायक मानते हैं। सम्भव है कि वे मालवगणों के गणाध्यक्ष अथवा गणमुख्य हों। महाभारत काल में श्रीकृष्ण भी वृष्णियों के गणमुख्य थे।

विक्रमादित्य के प्रख्यात नवरत्नों के काल का तिथिक्रम निर्धारित करते हुए भी नवीनतम मान्यताएँ यही हैं कि विक्रमादित्य ई० पू० पहली शताब्दी में हुए थे और ये रत्न उन्हीं की राजसभा के थे। विक्रमादित्य के प्रख्यात नवरत्न इस प्रकार हैं— १. धनवन्तरि २. क्षपणक ३. अमरसिंह ४. शंकु ५. बेतालभट्ट ६. घटखर्पर ७. कालिदास ८. वराह मिहिर ९, वररुचि।

कालिदास और विक्रमादित्य समकालीन थे। कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ जोड़ना असंभव है। जयशंकर प्रसाद ने अनेक तर्कों से यह सिद्ध किया है कि कालिदास ईसापूर्व पहली शताब्दी में ही हुए थे। कालिदास की लिखी नाटकों की भाषा उसी काल की थी। कालिदास ने अपने नाटकों में चन्द्रगुप्त का कहीं उल्लेख नहीं किया है। अन्य नवरत्नों की तिथि सम्बन्धी गवेषणा से यह भली भाँति स्थिर हो जाता है कि ईसा पूर्व पहली शताब्दी में कोई प्रतापी राजा उज्जैन में अवश्य राज्य करता था। इन रत्नों का काल भी समीक्षा और विश्लेषण से उसी समय का ठहरता है जो एक दूसरे का पूरक है।

विक्रमादित्य के ही विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक होने का एक यह प्रमाण भी है कि इस सम्वत् से पूर्व अर्थात् ई० पू० पहली शताब्दी से पहिले किसी भारतीय सम्राट अथवा महाराजाधिराज ने विक्रमादित्य विरुद्ध को धारण नहीं किया जैसे आजतशत्रु, प्रद्योत, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, पुष्यमित्र आदि ने विक्रमादित्य की उपाधि को अपने नाम के साथ नहीं जोड़ा। ईस्वी सन् के पश्चात् भारत के महाराज और सम्राट जैसे चन्द्रगुप्त द्वितीय, स्कन्दगुप्त, शीलादित्य, यशोधर्मन, हर्षवर्द्धन आदि विक्रमादित्य की उपाधि को धारण करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यह परम्परा ई० पू० पहली शताब्दी के बाद ही विकसित हुई।

जिस प्रकार वैदिक काल में अश्वमेध यज्ञ महत्वपूर्ण विजयों के उपलक्ष में किया जाता था और उसका करना एक विशाल राज्य के अधिपति होने का सूचक होता था उसी प्रकार विक्रमादित्य के परवर्ती काल में महान सम्राट इस विरुद्ध को धारण कर उतने ही गौरवशाली समझे जाते थे जितने कि उनके पूर्ववर्ती अश्वमेध कर्त्ता वैदिक कालीन सम्राट । उदाहरण के लिए पुष्यमित्र शुंग ने अश्वमेध यज्ञ किया परन्तु विक्रमादित्य की उपाधि धारण नहीं की । गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अश्वमेध यज्ञ नहीं किया परन्तु उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की ।

ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में पंजाब में मालव नामक एक गणराज्य था जिसके लोग अपना वीरता के लिए प्रसिद्ध थे । सिकन्दर का मालवों के गणराज्य से युद्ध होना एक ऐतिहासिक घटना है । इस युद्ध में सिकन्दर ने मालवों की वीरता का लोहा मान लिया था । ऐसा प्रतीत होता है कि अपना अधिकार-क्षेत्र बढ़ाने के अभिप्राय से मालवगण पंजाब से चलकर राजपूताने में बस गये । जयपुर राज्य के करकोट नगर में ईसापूर्व दूसरी शताब्दी के मालव जाति के सिक्के मिले हैं । जिन पर मालवानांजय अंकित हो रहा है । इससे मालवों का पंजाब छोड़कर राजपूताना में बसना सिद्ध होता है । मालव लोग कालान्तर में राजपूताने से भी चलकर वर्तमान मालवा में आ बसे । इस प्रदेश का नाम उनके नाम पर ही मालवा पड़ा । मालवों के इस गणराज्य के अधिपति ही वे विक्रमादित्य थे जिन्होंने ईसा से ५७ वर्ष पूर्व अपना सम्वत् चलाया । जैसा ऊपर लिखा जा चुका है इस सम्वत् की स्थापना शकों के ऊपर हुई विजय के उपलक्ष में की गई थी ।

ख्यातों के अनुसार विक्रम उज्जयिनी के राजा गन्धर्वसेन के पुत्र थे । अपने बड़े भाई शंख को अपदस्थ कर वे राजा बने । कुछ काल बाद अपना राज्य छोटे भाई भर्तृहरि को देकर भ्रमण को चले गये । भर्तृहरि के सन्यासी होने पर उन्होंने पुनः राज्य काज सम्हाल लिया । उन्होंने ६० वर्ष पर्यन्त राज्य किया । उनके पुत्र विक्रमचरित्र उर्फ धर्मादित्य ने ४० वर्ष राज्य किया । उनकी बहिन का नाम मैनावति था और गौड़ देश के अधिपति गोपीचंद उनके भान्जे थे ।

विक्रम सम्बन्धी साहित्य देश की अनेक भाषाओं में प्रचुरता के साथ विद्यमान है । पेशाची, प्राकृत, अर्द्धमागधी, संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती बंगला आदि सभी भाषाओं में विक्रम सम्बन्धी अनेक कथाएँ, कहानियाँ आदि बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं । बेताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी नाम की दो पुस्तकें तो विक्रम के अतुलित शौर्य, औदार्य एवं अनेक मानवीय गुणों के चरमोत्कर्ष का वर्णन करती हैं । विक्रम सम्बन्धी आख्यायिकाएँ भारतीय लोकसाहित्य का एक विशिष्ट अङ्ग है ।



इन नेत्र- बिन्दुओं का निर्माता कौन ?

(श्री हरिश्चन्द्र सिंहल एम० ए०)

सुलोचनाओं का अभिनन्दन करते समय रसिक जन जिस दोहे का प्रायः स्मरण किया करते हैं, वह है—

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत म्याम रतनार ।

जियत, मरत, भुकि-भुकि परत, जेहि चितवत इक बार ॥

यद्यपि हिन्दी के अधिकांश विद्वान् स्वर्गीय सैयद गुलाम नबी 'रसलीन' बिलग्रामी को इसका रचयिता स्वीकार करते हैं, तथापि लोक-विश्वास ऐसा प्रचलित है कि इसका प्रणयन महा-कवि बिहारीलाल के परिश्रम का फल है । ऐसा प्रतीत होता है कि वामन छंद के लघु कलेवर में इतने विसृत भाव पटल को आवृत हुआ देखकर सर्व-साधारण के हृदय में इस धारणा ने स्थान ग्रहण किया हो, क्योंकि बिहारी के विषय में प्रसिद्ध ही है—

सतसैया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर ।

देखन के छोटे लगै, घाव करें गम्भीर ॥

किन्तु ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह विदित होता है कि उक्त मनोहर काव्य-पंक्तियाँ बिहारी की बनाई हुई नहीं हैं ।

प्रस्तुत दोहे की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है । एक तो यह कि सुनयना के नेत्रों को जिसमें अमृत की धवलता, गरल की कालिमा और सुरा की अरुणिमा विद्यमान है, देखकर, रसिक व्यक्ति जो उठता है, मर जाता है तथा मद्य की भाँति लड़खड़ाता है । और दूसरे यह कि सुधा, विष और मदिरा के तारल्य से सिंचित नायिका के हृगों का साक्षात्कार कर, सात्विक जन-जीवन के संचार का अनुभव करते हैं, राजसी महानुभाव मृतप्राय हो जाते हैं और तामसी व्यक्ति मत्त होकर भूमने लगते हैं । उक्त दोनों प्रकार के अर्थ कार्य-कारण के स्वाभाविक नियम के सर्वथा प्रतिकूल पड़ते हैं । दोहे में कार्य की जो अवस्थाएँ व्यक्त की गई हैं, वे हैं जीना, मरना और भुक् भुग पड़ना जो वास्तविकता से कहीं दूर है । निसर्ग सत्य तो यह है—भूमना मरना और जी उठाना या जीना, भूमना और मर जभा । इसी तरह सात्विकी लोग जियेंगे, राजसी भूमेंगे और तामसी मरेंगे । बिहारी के काव्य में कार्यावस्थाओं का स्वाभाविक समावेश एक प्रमुख विशेषता रही है जिसके दर्शन उसके प्रत्येक दोहे के शाब्दिक चयन में होते हैं । उदाहरणार्थ—

कहत, नटत, रीभत, खिभत, मिलत, खिलत, लजियात ।

भरे भोन में करत हैं, नैननु ही सब बात ॥

(कहते हैं, नाहीं करते हैं, रीभते है, मिलते हैं, खिलते हैं, और लजाते हैं—देखिए श्रीबों द्वारा बातचीत करने का कितना स्वाभाविक क्रम प्रस्तुत किया गया है ।)

बिहंसि बुलाइ बिलोकि उत, प्रोढ़ तिया रसधूमि ।

पुलकि पसीजत पूत कौ, पिय चूम्यौ मुहँ चूमि ॥

(हँसकर, बुलाकर (और) उधर (नायक की ओर) देखकर वह पूर्ण यौवना स्त्री रस में मत्त हो, पति द्वारा चूमे गए अपने पुत्र के मुख को चूमकर, रोमांचित तथा पसीने से तर होती है ।)

हग उरभूत दूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।

परति गाँठ दुर्जन हिऐ, दर्ई नई यह रीति ॥

उलभते हैं नेत्र, दूटता है कुटुम्ब, प्रीति जुड़ती है चतुर के चित्त में और गाँठ पड़ती है दुर्जन के हृदय में । उलभना, दूटना, जुड़ना और गाँठ पड़ना कैसे ठीक क्रम से नैसर्गिक कार्य-अवस्थायें वर्णित की हैं ।)

बाम तमासो करि रही, बिबस बरुनी सेइ ।

भुक्कति हँसति हँसि हँसि भुक्कति, भुकि भुकि हँसि हँसि देइ ॥

(नशे की भोंक में) भुक्कती है (लड़खड़ाकर गिरती है) हँसती है, (फिर) हँस-हँसकर भुक्कती और भुक्-भुक्कर हँस-हँस (खिलखिला) पड़ती है । शराबी का कैसा सजीव चित्रण किया है ।)

पलन प्रगटि बरुनो बड़ि, छिनु कपोल ठहरात ।

अँसुवा परि छतिया छिनकु, छनछनाइ छिपि जात ॥

(पलकों में प्रकट होते हैं—पलक ही उनकी जन्मभूमि है, बरुनियों में बढ़ते हैं—बरुनी ही उनकी क्रीड़ाभूमि है और वहाँ से बढ़कर क्षण भर के लिए चिकने गालों पर ठहरते हैं, यों गाल उनकी प्रवास भूमि या कर्मभूमि है । फिर आँसू छाती पर पड़कर एक ही पल में छनछनाकर लुप्त हो जाते हैं अतएव छाती ही उनकी श्मशान भूमि हुई । मनुष्य जीवन की साक्षात् तस्वीर रख दी है ।

लोक-व्यवहार की गति के इतने कुशल चित्रकार होकर बिहारी ने उक्त दोहे की कार्या-वस्थाओं के वर्णन में किसी प्रकार की त्रुटि की होगी, ऐसा सोचना नितान्त असंगत है । दोहे में जो भूल स्पष्ट रूप से झलक रही है, उसका कारण यही मालुम होता है कि उसकी आधारशिला बिहारी ने नहीं बरन् किसी अन्य कवि ने रखी है ।

इसी दोहे के अनुरूप बिहारी ने लिखा है—

सायक सम मायक नयन, रंगे त्रिविध रंग गात ।

भूखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥

नेत्रों की संध्याकाल की बेला के समान श्वेत, श्याम और रतिनार आभा से युक्त कहा गया है । ऐसा लगता है इसी दोहे में अंतर्निहित भाव को किसी सहृदय कवि ने 'अमिय हलाहल —...., का स्वरूप प्रदान कर दिया ।

बिहारी सतसई का पारायण करने से पता चलता है कि उसके रचयिता ने 'श्वेत' और 'जैहि' शब्दों का कहीं प्रयोग नहीं किया है बरन् उनके स्थानों पर प्रत्येक अवसर 'सेत' और 'जिहि' लिखे हैं—

लसत सेत सारी ढप्यो, तरल तर्यौना कान । पर्यौ मनौ सुरसरि सलिल, रवि प्रतिबिम्बु बिहान ॥
 सोहति धोती सेत मै, कनक बरन तन बाल । सारद बारद बीजुरी, भारद कीजति लाल ॥
 जोन्ह नही यह तमु वहै, किए जु जगत निकेतन । होत उदै ससि के भयौ, मानहु ससहरि सेत ॥

तथा —

तजि तीरथ हरि-राधिका तन-कुति करि अनुराग । जिहि ब्रजकेलि निकु ज मग, पग-पग होत प्रयाग
 जिहि भामनि भूषन रच्यो, चरन-महा उरभाल । उहीं मनौ अखियाँ रँगों, ओठनु कं रँग लाल ॥
 जगतु जनार्थो जिहि सकुल, सो हरि जान्यौ नाहि । ज्यों आँखिनु सबुदे खियै, आँखि न देखी जाहि ॥
 यह बिरियानाहि और की, तूँ करिया वह सोधि । पाहन नाव चढ़ाइ जिहि, कीन्हें पार पयोधि ॥

अतएव इसका उत्तर देना बड़ा कठिन होगा कि उसने केवल एक दोहे की रचना में 'सेत' के स्थान पर 'श्वेत' और 'जेहि' लिखा हो जबकि दोनों कोटि के वर्णों में भार की असमानता भी नहीं है । यह बात भी इसी विचार की ओर से चलने में सहायक होती है कि दोहा वास्तव में बिहारीलाल जी का बनाया हुआ नहीं है ।

यदि दोहा बिहारी का नहीं है, तो फिर किसका है ? इसका उत्तर वही दिया जा सकता है जो इस लेख के आरम्भ में कहा गया था, और प्रमाण के रूप में स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन प्रस्तुत किया जा सकता है कि उक्त दोहा रसलीन कवि की पुस्तक अंगदर्पण में उपलब्ध है ।

दोहे में जेहि का प्रयोग जिसे अवधी के प्रतिनिधि कवि जायसी और तुलसीदास ने उदारता पूर्वक इस्तेमाल किया है, इस बात की ओर संकेत करता है कि दोहे को रचने वाले कोई अवध प्रदेश के निवासी हैं । बिलग्राम नगर अवधी के क्षेत्र में पड़ने वाले हरदोई जिले में स्थित है । रसलीनजी वहीं की उपज थे । अपवाद के रूप में इसके सम्बन्ध में एक अन्य विचार से भी परिचित होना पड़ा है, वह है पं० रामनरेश त्रिपाठी का प्रयास । उनकी कविता कौमुदी के तृतीय संस्करण में इस दोहे को रहीम के काव्य के अंतर्गत प्रदर्शित किया गया है । रहीम ने इस प्रकार की कलात्मक रचनाओं में समय व्यतीत नहीं किया । अतएव उक्त दोहे को उनके मध्ये डालना उचित नहीं ।

सभी दृष्टिकोणों से प्रस्तुत दोहा रसलीन महोदय का बनाया हुआ ही ठहरता है और हमें इस बात पर गर्व होना चाहिए कि उसकी रचना का श्रेय एक अहिन्दू हिन्दी साहित्य-सेवी को जाता है ।

(सरस्वती से साभार)



पत्र-व्यवहार—

अंतर्जनपदीय परिषद् विषयक

पो० गरौठा (भांसी)

(१)

१३-४-६८

प्रिय श्री वृन्दावनदास जी,

मुझे बड़ा खेद है कि मैं नहीं आ सका। कुछेक गार्हस्थिक कारणों से मुझे यकायक ही रुक जाना पड़ा। श्रीगणेश चौवेजी से तो मैंने करीब-करीब आने का वायदा कर दिया था। लिख दिया था आऊँगा। वे अवश्य मुझसे बहुत अप्रसन्न होंगे। पर मुझे क्षमा करेंगे। उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे एक दिन के लिए गरौठा अवश्य आयें। सीधे न चले जायें।

आशा है पूज्य चौवेजी के सभापतित्व में सम्मेलन की कार्यवाही सानन्द सम्पन्न हुई होगी। मेरी हार्दिक शुभकामनायें। परिषद् की स्थापना का शुभ कार्य तो आज से कई वर्ष पूर्व ही सम्पन्न हो जाना चाहिए था। स्व० राहुल जी ने अग्रवाल-कार्यक्रम की चर्चा के बहुत पूर्व ही 'गंगा' के पुरातत्त्व अंक में हिन्दी स्थानीय भाषाओं के वृहत् संग्रह पर जोर दिया था और जन-पदीय भाषाओं के एक सर्वाङ्ग संपूर्ण कोश के निर्माण की आवश्यकता प्रकट की थी। वहाँ उन्होंने इस कार्य के लिए एक ऐसी समिति के बनाने की बात लिखी थी जो इस महत्वपूर्ण काम को कर सके। इस प्रकार इस काम के लिए पैंतीस वर्ष का विलम्ब तो हो ही गया है। किन्तु अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। श्री अग्रवालजी ने अपने कार्य-क्रम के अंतर्गत भाषा और साहित्य के साथ ही जन, भूमि तथा पशु-पक्षियों, वनस्पतियों आदि के सर्वेक्षण की बात लिखी। किन्तु मेरी समझ में वह एक अलग ही वैज्ञानिक कार्य है, जिसे उन कामों के लिए निर्मित विशेष समितियाँ ही कर सकती हैं। फिलहाल परिषद् जो काम कर सकती है वह जनपदीय भाषाओं का एक वृहत् कोश बनाना है। इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी में तो वहाँ की उपभाषाओं के कोश और व्याकरण आज से ७०-८० वर्ष पूर्व ही बन गए। इंग्लैंड में English Dialect Society की स्थापना हुई जिसने इस दिशा में बड़ा काम किया। उसके द्वारा सन् १८९६ में English Dialect Dictionary छपी उसके प्रकाशित होने पर एक आलोचक ने उसे एक मूर्खान्तर राष्ट्रीय महत्व का कार्य बताया और साथ ही यह भी लिखा कि यह काम तो आज से दो सौ वर्ष पूर्व ही पूरा हो जाना चाहिए था। विलम्ब के कारण बहुत से शब्द नष्ट हो गए।

हिन्दी में यह काम आज शुरू किया जाय वह भी बड़ी बात होगी और स्वागत योग्य होगी। किन्तु इसके लिए तो ऐसे विद्वानों की आवश्यकता पड़ेगी जो भाषा-शास्त्री होने के साथ ही त्याग और लगन की भावना भी रखते हों। केवल पैसे से कुछ नहीं हो सकता। और न किसी प्रकार की सरकारी आर्थिक सहायता से ही। वेबस्टर ने अपना प्रसिद्ध अंग्रेजी डिक्शनरी के निर्माण में जीवन के इक्कीस वर्ष होम दिए। शान्ति निकेतन शिक्षा-भवन के संस्कृत अध्यापक श्री हरिचरण वन्द्योपाध्याय ने रविबाबू के आदेश से बंगीय शब्दकोश के निर्माण का कार्य हाथ में लिया और २७ वर्ष तक अक्लान्त भाव से काम करते रहे। स्व० नगेन्द्रनाथ बसु के बंगला तथा हिन्दी विश्वकोश के सम्बन्ध में तो कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। बहुत थोड़ी पूँजी से अकेले ही उन्होंने इस भारी काम को उठाया। उनके कार्य की ख्याति सुनकर गाँधीजी उनके कलकत्ते के

निवास स्थान पर उन्हें देखने गये थे। दुःख है हिन्दी में ऐसे सच्चे और महान् कार्य कर्त्ताओं एवं विद्वानों की बड़ी कमी है। हम हिन्दी के प्रचार और उसकी उन्नति की चर्चा तो करते हैं पर स्वयं कोई काम नहीं करना चाहते। खैर !

परिपद जो भी काम कर लेगी उसके लिए मेरी पूरी सेवायें उसे अर्पित रहेंगी।

अपने न आ सकने के लिए मैं पुनः आपके निकट क्षमा प्रार्थी हूँ।

विशेष कृपा ! मुझे पू० चौवेजी के भाषण की एक प्रति कृपया भिजवायेंगे।

आपका :

कृष्णानन्द गुप्त

(२)

पो. गरौठा (भाँसा)

२७—४—६८

प्रिय श्री वृन्दावनदास जी,

आपका दिनांक २१—४—६८ का कृपापत्र तथा भाषण-सामग्री मिली। मैंने श्री गरौठा चौवे जी को भी लिखा है। समस्त जनपदीय भाषणों का एक इकट्ठा वृहत कोष बनाना तो दुष्कर कार्य होगा। यद्यपि दूसरे देशों में जो काम पचासों वर्ष पहिले हो गया वह यहाँ भी असाध्य नहीं होना चाहिए। किन्तु फिलहाल अलग-अलग बोलियों का कोष बनाना अधिक आसान होगा। इसके लिए भाषा की दृष्टि से प्रान्तों को—जहाँ हिन्दी बोली जाती है—छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया जाना चाहिए। अथवा भौगोलिक जिलों को हम ज्यों का त्यों ले सकते हैं। एक-एक जिले से शब्द इकट्ठे करवाये जायें और फिर उनका संपादन किया जाय। यद्यपि सब जगह ऐसा करना आवश्यक नहीं होगा। पर कुछ स्थानों पर जरूरी होगा। एक जिले से दूसरे जिले में ही बोल-चाल और अन्तर पाया जाता है। उदाहरण के लिए बुंदेलखंड को लीजिए। 'किधर जाते हो' के लिए कहीं 'किग्रायँ जात', कहीं 'किते जात', कहीं 'कितायँ जात', कहीं 'कहाँ जात हो' और कहीं 'कहाँ जात हौगे' बोलते हैं।

इसी प्रकार 'को' के लिए कहीं 'खौ' और कहीं 'की' का प्रयोग करते हैं। उच्चारण और प्रयोगों के इन सूक्ष्म भेदों का ध्यान रखते हुए ही शब्द इकट्ठे किये जाने चाहिए। फिर प्रत्येक जिले से प्राप्त संपादित सामग्री का भाषा के विस्तार क्षेत्र का ध्यान रखते हुए परी बोली का कोष तैयार किया जा सकता है। अथवा एक बोली से संबंधित सामग्री विभिन्न स्थानों से संगृहीत करवाई जाकर एक केन्द्रीय स्थान पर भेजी जा सकती है और फिर दक्षता-पूर्वक उसका संपादन किया जा सकता है।

संग्रह का काम सबसे कठिन और व्ययसाध्य होगा। इसके लिए प्रत्येक जिले में योग्य व्यक्ति नियुक्त किये जाने और उन्हें उनके कार्य के अनुसार उचित पारिश्रमिक भी दिये जाने की आवश्यकता पड़ेगी। उसके बिना कुछ नहीं होगा।

संग्रहकर्त्ताओं को शब्द-संग्रह की शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके लिये उन्हें एक स्थान पर इकट्ठा किया जा सकता है। शब्दों के साथ स्थानीय बोली की कहावतें, मुहावरे और ऐसे लोक

गीतों की कड़ियाँ भी इकट्ठी की जायें जिनसे शब्दों के प्रयोग और अर्थ को समझने में सहायता मिले। प्रत्येक शब्द का सही उच्चारण, अर्थ जहाँ वह बोला जाता है वह स्थान और उदाहरण द्वारा उसका प्रयोग बताया जाय। ऐसे शब्दों के संग्रह को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए जो स्थानीय जनता के रहन-सहन, आचार-विचार और खान-पान तथा उद्योग-धंधों से संबंध रखते हों। ऐसे सब शब्द दिये जाने चाहिए जो साहित्यिक भाषा और किसी एक बोलचाल की भाषा में समान रूप से प्रचलित मिलते हैं, किन्तु उस बोलचाल की भाषा में किसी एक विशेष भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु जिनमें केवल उच्चारण का ही भेद हो वे छोड़ दिये जाने चाहिए। उस भौगोलिक क्षेत्र का भी बहुत सही उल्लेख होना चाहिए जितने में वह शब्द बोला जाता है।

शब्दों के इतिहास और व्युत्पत्ति आदि के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। वह भाषा शास्त्र का एक अलग ही विषय है और उसे पूरी तौर से जानने वाले बहुत लोग नहीं मिलेंगे। किन्तु प्रत्येक शब्द का अर्थ बहुत स्पष्ट लिखा जाना चाहिए और ऐसे शब्दों पर संक्षिप्त पर विशद टिप्पणी की जानी चाहिए जो व्रत, त्यौहारों, रीति-रिवाजों या उद्योग धन्धे से संबंधित हों। उदाहरण के लिए 'कंकन' शब्द को लीजिए। कुछ इस प्रकार लिखा जाना चाहिए—लाल और पीले रंग का वह सुन जो विवाह के पहिले दूल्हा-दुलहिन के के हाथों में टोना-टोटका और नजर से बचाने के उद्देश्य से बाँधा जाता है। इसमें लोहे के छल्ले पड़े रहते हैं।

मुहा० कंकन दुराई - विवाह के बाद का एक नेग जिसमें दूल्हा-दुलहिन एक दूसरे के हाथ का कंकन छोरते हैं। "छोरो-छोरो सियाजू के कंकन महाराज बंद छोरो" कंकन-खिलाई वह नेग जिसमें कंकन छूट चुकने के बाद साली या सलहज कंकन ऊपर उछालती है और दूल्हा-दुलहिन उसे अपने-अपने हाथों में गुपकने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक शब्द को उदाहरण देकर समझाया जाना चाहिए। यह काम बड़ा मुश्किल है। पर किया जाना चाहिए। केवल शब्दों, कहावतों और गीतों आदि के संग्रह पर हमने बहुत जोर दिया है। पर प्रारंभिक स्थिति की उस दिशा को छोड़कर वैज्ञानिक ढंग से काम करने की जरूरत है। संग्रह कार्य बहुत आवश्यक हैं, कोई शक नहीं। उसके बिना कुछ हो ही नहीं सकता। पर संग्रह भी विधिवत् होना चाहिए। उद्योग-धंधों के शब्दों के संग्रह पर एक सज्जन को पी. एच. डी. मिला! किन्तु उनका वह सब काम ऐसा है जिसे आठवीं कक्षा का कोई भी ग्रामीण विद्यार्थी थोड़ा सा प्रशिक्षण पाने के बाद सहज में कर सकता है।

विदेशों में बल्कि स्वयं हमारे देश में भी भाषा और साहित्य सम्बंधी जो काम आज से सत्तर या अस्सी वर्ष पूर्व किया जा चुका उसे हम आज भी शुरू नहीं करसके हैं, यह सचमुच बड़े खेद की बात है। फैलन ने अपना प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोश बिल्कुल इस लक्ष्य को सामने रखकर तैयार किया कि उसमें संगृहीत शब्दों से भारतीय जनता के रहन-महन और धार्मिक विचारों की सही जानकारी मिल सके। इसके लिए उसने ठेठ बोलचाल के शब्दों और मुहावरों को खोज-खोज कर अपने कोश में स्थान दिया। यहाँ तक कि गालियों और तथाकथित अश्लील शब्दों को भी रक्खा। इसके लिए हिन्दी के उस समय के साहित्य-सेवियों ने उसकी कड़ी आलोचना की। किन्तु जिस वैज्ञानिक दृष्टि से उसने यह काम किया। और जिस लगन परिश्रम से किया उसका आज हम में से कितनों को पता है।

मैंने अपने पिछले पत्र में 'इंगलिश डायलेक्ट डिक्शनरी' का जिक्र किया था। उसके निर्माण का इतिहास साहित्य-जगत की एक अत्यंत अद्भुत, रोमान्चकारी, और प्रेरणाप्रद घटना है पूरे सत्तरह साल तक तो सामग्री का संकलन ही होता रहा। दश लाख से भी अधिक स्लिपें कार्यालय में पहुँची। छः सौ से भी अधिक कार्यकर्त्ताओं ने सहायता पहुँचाई। इंगलैंड, वेल्स और आयरलैण्ड के छोटे-छोटे भागों से शब्द और अन्य शब्द संबंधी सामग्री इकट्ठी की गई। पाण्डुलिपियों की भी शरण ली गई, दो-सौ वर्ष पूर्व के सभी लेखकों की रचनाएँ भी पढ़ी गईं। सात वर्ष के अथक परिश्रम के बाद पहिली जिल्द तैयार हुई। कोई प्रकाशक छापने को तैयार नहीं हुआ। तब उसके सम्पादक 'जोजेफ राइट' ने अपना सब घरवार बेचकर और कुछ मित्रों से पैसा संग्रह करके, उस पहिली जिल्द को छपवाया। उसके छपते ही साहित्य-जगत में धूम मच गई। सभी विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्तकंठ से उस कार्य की प्रशंसा की और उसे कोश जगत की एक महान् कृति घोषित किया। फिर तो सरकार ने भरपूर सहायता की। काम नियमित रूप से चल पड़ा। सन् १८६६ से लेकर १९०५ के बीच में पूरा कोश ६ खंडों में छपकर तैयार हुआ। निर्माण और छपाई में पच्चीस हजार पाउण्ड से भी कुछ अधिक उस समय खर्च हुए। छपने पर एक पत्र ने संपादक की प्रशंसा करते हुए लिखा—'a task of which not only he (यानी संपादक) but all English scholars may well be proud. No other nation possesses such a work.'

इस तरह का जो साहित्यिक कार्य अंग्रेजी में कभी का हो चुका वह आज हिन्दी में अवश्य किया जा सकता है।

इसके लिए उचित बातावरण तैयार करके हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों की सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार की सहानुभूति और आर्थिक सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की जानी चाहिए और प्रारंभ में दो या तीन जनपदीय भाषाओं को—ब्रज, बुंदेली और बिहारी या अवधी को लेकर कार्यारंभ कर दिया जाना चाहिए। सेठ जी (माननीय गोविन्ददास जी) को भी लिखा जाना चाहिए। परिपक्व कोशों की तैयारी की जिम्मेवारी ले और साहित्य सम्मेलन प्रकाशित करे। बुंदेली कोश तो मैंने तैयार भी किया। टीकमगढ़ रहते समय स्व. ओरछा नरेश की प्रेरणा और आर्थिक सहायता से उसकी प्रचुर सामग्री इकट्ठी हुई। आपने मधुकर में उस समय उसके निर्माण की चर्चा पढ़ी होगी। एकेडेमी ने उस समय कोश को छापने की स्वीकृति भी दे दी थी। किन्तु बाद में इन्कार कर दिया। बहुत लिखा-पढ़ी के बाद यद्यपि उसे उन लोगों ने प्रकाशित करना फिर स्वीकार कर लिया। किन्तु मेरा मन गिर गया था। बड़ा अद्भुत सा लगा। जो एकेडेमी उपन्यास छाप सकती है और उसके लिए प्रचुर निधि भी पेशगी दे सकती है वह इस प्रकार के काम को सहर्ष प्रकाशित करना पसन्द न करे इस विचार से हृदय को पीड़ा हुई। इस घटना को ६-७ साल हो गये। मेरी असावधानी से कोश के अधिकांश को दीमक खा गई। किन्तु इस तरह का कार्य तो—जब तक वह छप न जाय, कभी पूरा नहीं होता। और फिर इस बीच में और भी सामग्री का संग्रह करता रहा हूँ। कोश की एक बिल्कुल नई रूप-रेखा भी सामने आई है। उस पर फिर से ही काम करना होगा।

यह सब इसलिए लिख रहा हूँ कि चर्चा कुछ चल पड़े।

और सब ठीक। आशा है आप स्वस्थ और सानंद हैं।



आपका—कृष्णानन्द गुप्त

ब्रजकोकिल कविरत्न पं० सत्यनारायण अर्द्ध-शताब्दी समारोह के स्वागताध्यक्ष

बा० वृन्दावनदास का

स्वागत-भाषण

समादरणीय अध्यक्ष महोदय एवं उपस्थित वन्धुओं और देवियों !

ब्रज-कोकिल कविरत्न सत्यनारायण अर्द्ध-शताब्दी समारोह के अवसर पर मैं आगस्तुक सभी महानुभावों का स्वागत करता हूँ और हृदय से कामना करता हूँ कि आप महानुभावों के शुभागमन से यह सम्मेलन सफलता प्राप्त करे।

पं० सत्यनारायण कविरत्न का जीवन कवितामय था। उन्होंने बाल्यकाल से ही कविता करना आरम्भ कर दिया था। यद्यपि सत्यनारायण जी की कविताओं का एक बहुत बड़ा अंश आज लुप्त हो गया है तथापि जो कुछ भी उपलब्ध है वह इतना प्रचुर और उत्कृष्ट है कि उनको सहज ही महाकवि की उपाधि से विभूषित करने की क्षमता रखता है। सत्यनारायण जी ने आजन्म ब्रजभाषा में ही कविता की। उनकी कविताओं में इतना माधुर्य था और वे स्वरचित कविताओं को इतने मीठे स्वर से गाते थे कि श्रोताओं की बड़ी से बड़ी मण्डली भी मन्त्र-मुग्ध हो जाया करती थी। उन्होंने अपनी छोटी सी अवस्था में ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में जाना शुरू कर दिया। इन्दौर के अधिवेशन में तो जिसे महात्मा गाँधी की अध्यक्षता का सौभाग्य प्राप्त था इन्होंने अपनी इतनी सुन्दर रचनाएँ पढ़ कर सुनाई कि लोगों ने वाह-वाह के नारे लगा दिये। महात्मा जी की स्तुति में जो छन्द उन्होंने प्रस्तुत किए और जिस सरस ढङ्ग से उनका गायन किया, उसे श्रवण कर श्रोताओं के नेत्र आनन्दाश्रुओं से पूरित हो गये। सत्यनारायण जी अपने मित्रों के थोड़े आग्रह से ही अपनी रचनाएँ सुनाने को उद्यत हो जाते और फिर उनकी रचनाओं से जो रससिक्त वातावरण उत्पन्न हो जाता था उसके कारण उनके मित्र घण्टों तक उनका पीछा न छोड़ते थे।

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने बड़ी खोज और परिश्रम से कविरत्न की जीवनी लिखी है। उसमें दिये हुये अग्रणीत तथ्य इस बात को स्थिर करते हैं कि पं० सत्यनारायण महाकवि से भी अधिक महामानव थे। वे सरलता और निरभिमानता की प्रति-मूर्ति थे। वे कभी अपने शत्रुओं का दिल भी न दुःखाते थे मित्रों की तो बात ही क्या है। वे कभी किसी को यह प्रगट न होने देते थे कि वे उसके दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट अथवा दुःखी हैं। मित्र और स्वजनों के प्रति उनका प्रेम निश्छल और असीम होता था। वे करुणा की प्रति-मूर्ति थे और उनका करुणरस-काव्य अद्वितीय होता था। जीवन में उन्हें अनेक प्रकार के भटके लगे लेकिन उन्होंने अपने धैर्य और साहस को कभी न छोड़ा और विषम परिस्थितियों में भी प्रसन्न एवं शान्तचित्त रहे।

पं० सत्यनारायण ब्रजभाषा को ही काव्य के लिए सर्वोत्कृष्ट माध्यम मानते थे । ब्रजभाषा के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है :

सुरपद बरन सुभाव, विविध रसमय अति उत्तम
सुद्ध संस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम
देश काल अनुसार भाव निज व्यक्त करन में
मंजु मनोहर भाषा या सम कोउ न जग में ।
ईश्वर मानव प्रेम दोउ डक सङ्ग सिखावति
उज्ज्वल स्यामल धार जुगल यों जोरि मिलावति
भेद भाव तजिवे की प्रतिभा जब रस ऐनी
जोग गहत तिनसों तब सुन्दर बहति त्रिबेनी ॥
करी जाय जहि जासु परोच्छा सविधि जथारथ ।
याही में सब जग को स्वारथ और परमारथ ॥

ब्रजभाषा के माधुर्य रस का वर्णन करते हुए वे कह गए हैं :—

बरनन को करि सकत भला तिहि भाषा कोटी ।
मचल-मचल माँगी जामें हरि माखन-रोटी ॥

सत्यनारायण जी ने देश की तत्कालीन अन्यतम विभूतियों की स्तुति में जो छन्द ममय-समय पर बनाये और उन्हें अपने मधुर कण्ठ से अथाह जन-समूह के सम्मुख सुनाया उससे उनकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी । उन्होंने लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू, लाला लाजपतराय, लोकमान्य गोखले प्रभृति सभी देश के शिखरस्थ नेताओं की प्रशस्ति में छन्द बनाये । कवीन्द्र रवीन्द्र और स्वामी रामतीर्थ भी उनकी कविताओं को सुनकर बड़े प्रभावित हुए । स्वामी रामतीर्थ तो उन्हें अपने साथ विदेश यात्रा पर भी ले जाना चाहते थे परन्तु उन्होंने अपने आश्रयदाता गुरु बाबा रघुनाथ दास की रुग्णावस्था के कारण उन्हें छोड़कर बाहर जाना पसन्द नहीं किया । सत्यनारायण जी की काव्य-प्रतिभा बड़े उच्च-कोटि की थी । ईश्वर ने उन्हें कुछ आयु अधिक नहीं दी । वे कुल मिलाकर ३८ वर्ष पर्यन्त ही जीवित रहे । यदि वे और अधिक जीवित रहते तो उनके महान् गुणों के कारण साहित्यिक क्षेत्र के उच्चाति-उच्च विभूषणों और पदों में से कोई भी उनसे न बचता । परन्तु जो कुछ उन्होंने छोड़ा उसी से सत्यनारायण जी मृत्योपरान्त भी जीवित हैं और सदैव अमर रहेंगे ।

साहित्यिक क्षेत्र की तत्कालीन महान् विभूतियों का भी सत्यनारायण जी को उनकी प्रतिभा और गुणों के कारण आशीर्वाद प्राप्त था । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं० श्रीधर पाठक आदि का उनके प्रति आत्मीय व्यवहार था । स्वर्गीय कविरत्न हरिश्चन्द्रजी शर्मा और पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी उनके समकालीन थे परन्तु अवस्था में उनसे छोटे थे । इन दोनों विभूतियों को भी उनका महान् स्नेह प्राप्त था । सत्यनारायण जी की कवितायें तत्कालीन उच्च कोटि की पत्र-पत्रिकाओं में निकलती रहती थीं और बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं ।

ब्रजभाषा साहित्य

जिस भाषा को पण्डित सत्यनारायण ने उसके सौष्ठव और माधुर्य के कारण उपयुक्त समझा और जिसकी साधना उन्होंने जीवन पर्यन्त की हमें अब यह देखना है कि अद्यतन उसकी क्या दशा है। ब्रजभाषा साहित्य आजकल ह्रासोन्मुख है। इसका एक बहुत बड़ा कारण हम ब्रजभाषा के कार्यकर्त्ताओं की उदासीनता है। ब्रज साहित्य मण्डल से सम्बन्धित होने के कारण मेरे पास अनेक ब्रजभाषा विद्वानों के पत्र आते रहते हैं कि उत्कृष्ट ब्रजभाषा साहित्य के चिर प्रतीक्षित प्रकाशन कार्य को अब हाथ में लेना चाहिए अन्यथा आगामी सौ पचास वर्षों में उसके पूर्णतया लुप्त हो जाने का भय है। सूर और तुलसी के अतिरिक्त दर्जनों ऐसे चोटी के कवि हो गये हैं जिनका कृतियाँ यदि प्रकाशित हो जाँय तो हिन्दी साहित्य की महान् अभिवृद्धि हो। कुछ कवियों की ज्ञात रचनायें तो पूर्णतया अप्रकाशित हैं और कुछ प्रकाशित ग्रन्थ भी पुनरावृत्ति के अभाव से लुप्त प्राय हो रहे हैं। कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों को दीमक-राहु ग्रस रहा है। ऐसी दशा में उत्कृष्ट साहित्य के मुद्रण और प्रकाशन की व्यवस्था होनी चाहिए। दीमक ग्रस्तता का निवारण तो ग्रन्थ स्वामी की सहमति से ग्रंथों को पुनः लिपिबद्ध करा कर ही हो सकता है। इस कार्य को सार्वजनिक साहित्यिक संस्थायें जिनमें ब्रज साहित्य मण्डल भी एक है धनीमानियों और सरकार की उदारता के माध्यम से कर सकती है। विश्वविद्यालय भी इस कार्य को अपने हाथ में ले सकते हैं। सरकार विश्वविद्यालयों को तो साहित्यिक कार्यों के लिए अनुदान देती है परन्तु उसे अब उन सार्वजनिक साहित्यिक संस्थाओं को भी मुक्त हस्त से अनुदान देना चाहिए जो प्रकाशन के कार्यों में प्रवृत्त हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि सरकार यदि इन संस्थाओं के प्रति उदारता का वर्त्तव्य करेगी तो धनीमानी लोगों को भी इन संस्थाओं के प्रति आर्थिक सहयोग का हाथ बढ़ाने का आकर्षण प्राप्त होगा।

अन्तर्जनपदीय परिषद्

हिन्दी के भण्डार को समृद्ध करने का एक बड़ा शक्तिशाली साधन है उसे जनपदीय शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों आदि से समन्वित करना। इनके अतिरिक्त लोकवार्ता, लोकगीत आदि भी लोकसाहित्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'पृथ्वी-पुत्र' में लिखा है, "जनपदों की भाषाएँ तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुएँ हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्ति शास्त्र भरापूरा बनेगा। हिन्दी शब्द निरुक्ति जनपदों की बोलियों का सहारा लिये बिना चल ही नहीं सकती। जनपदों की बोलियाँ कहावतों और मुहावरों की खान हैं। हम चुस्त राष्ट्र भाषा बनाने के लिये तरस रहे हैं पर उनकी जो खानें हैं इनको खोज कर सामग्री प्राप्त करने की ओर हमने अभी तक ध्यान नहीं दिया।"

आन्दोलनात्मक प्रचार में भी अधिक महत्वपूर्ण काम है हिन्दी को सामर्थ्यवान बनाने का ठोस कार्य। हम जनपदीय भाषाओं से ऐसे शब्दों का चयन कर सकते हैं जिनमें से एक-एक शब्द का अर्थ पूरे वाक्य का प्रयोग करने से ही लगता है और जिनके समावेश से हमारी भाषा में पूर्णता आवेगी।

सर्वश्री पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी, डाक्टर सत्येन्द्र, गणेश चौबे, रामनारायण उपाध्याय, श्यामसुन्दर बादल शास्त्री, अनेक साहित्यिक बन्धुओं ने मुझे जनपदीय परिषद् की स्थापना करने का परामर्श दिया है। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं कुछ और भी सज्जनों जैसे डा० श्याम परमार, डा० प्रभाकर माचवे, डाक्टर नगेन्द्र, डाक्टर विजयेन्द्र स्नातक आदि से इस सम्बन्ध में परामर्श करूँ। मेरा विचार है कि सम्मेलन के इस अवसर पर अन्तर्जनपदीय

परिषद् को पुनर्जीवित और पुनर्गठित कर दिया जाय। यदि ऐसा हो गया और जनपदीय आन्दोलन की समुचित व्यवस्था हो गई, तो वास्तव में यह सम्मेलन ब्रज साहित्य के इतिहास में स्मरणीय होगा। एक त्रैमासिक पत्रिका निकाल कर तत्सम्बन्धी निबन्धों और यात्रा-विवरणों को मुद्रित और प्रकाशित करने से जनपदीय आन्दोलन की लोक प्रियता बढ़ेगी।

कविरत्न सत्यनारायण एक चरित्रवान् आदर्शवादी महान् कवि थे। उनकी कवितायें आदर्शों के प्रतिपादन और चरित्र बल के सम्पादन पर जोर देती थीं। इस दृष्टि से उनकी कविताओं की जन-साधारण के हित की दृष्टि से बड़ी उपयोगिता थी। सत्यनारायण जी की कविता आज से पचास वर्ष पूर्व भी इस युग की नवीनतम मान्यताओं के अनुकूल थी। उनकी बहुत-सी कविताओं में हिन्दू हिन्दी हिन्द के लिए एक टीस दिखाई देती है। उनकी कवितायें मधुर होते हुए भी जन मानस की हृत्तन्त्रियों को स्पन्दित करने में सक्षम थीं।

अपने चरित्र-नायक की स्मृति की सुरक्षा के लिए मैं इस अधिवेशन से माँग करता हूँ। उनके ग्रंथों का प्रकाशन ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। कम से कम ब्रज क्षेत्र की प्रत्येक साहित्यिक संस्था के भवन में कविरत्न का चित्र होना चाहिए और भी उनकी कीर्ति रक्षा के जितने साधन हो सकें अवश्य क्रियान्वित किये जाने चाहिए। ये साधन क्या होने चाहिए इसका निर्णय मैं आदरणीय सभापति महोदय तथा अधिवेशन में उपस्थित अन्य महानुभावों पर छोड़ता हूँ।

अन्त में सभी उपस्थित महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करता हुआ मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।



वर्मा जी की नाट्य-कृतियों में राष्ट्रीय-भावना

(डा० लक्ष्मीनारायण दुबे, एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्यरत्न)

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने विषय में कहा है : मेरा मन विहग की भांति साहित्य-विधाओं की विभिन्न शाखाओं पर बैठता रहता है—पर मेरे प्राण को विश्राम केवल एकांकी और कविता से मिलता है^१। डा० वर्मा ने अपनी कवित्व-शक्ति एवं मौलिक प्रतिभा को एकांकी-सृजन की दिशा में मोड़ दिया है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के मतानुसार, 'प्रसाद' के 'एकवृंट' के साथ, 'बादल की मृत्यु'^२ एकांकी का नाम आता है। इसकी रचना भी लगभग उसी समय हुई, किन्तु इसका प्रकाशन सन् १९३० में 'विश्वमित्र' में हुआ। 'बादल की मृत्यु' डा० नगेन्द्र के अनुसार एक 'फैंटेसी' है, जो एकांकी की ही एक शैली है। अधिकांश विचारकों ने 'बादल की मृत्यु' को ही 'हिन्दी का प्रथम एकांकी' माना है। इसमें एक ही दृश्य है^३।

एकांकी के क्षेत्र में, रामकुमार जी की प्रतिभा ने 'जन्म-दाता' का कार्य सम्पन्न किया। हमारी नाट्य-कृतियों का रङ्गमञ्च के साथ गठ-बन्धन कर दिया। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने रामकुमार जी के साहित्यिक व्यक्तित्व का अनुशीलन करते हुए लिखा है कि न कोई साहसीयत, न अहंकार, न कोई किसी से अपेक्षा जो कुछ है, अपने चारों ओर जैसा भी परिवेश है, सब ईश्वर की कृपा है। उससे न कोई संघर्ष, न कोई तीव्रता। न कोई प्रत्यक्ष दुःख या प्रतिक्रिया। लगता है

(१) 'धर्मयुग'—६ सितम्बर, १९६२। (२) 'पृथ्वीराज की आँखें—बादल की मृत्यु एकांकी।

(३) 'इन्द्रधनुष'—भूमिका, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य में एकांकी, पृ० ६।

जैसा किसी मानस हंस के गले में प्रारब्ध ने जबरदस्ती 'रेशमी टाई' बांध दी हो—और कह दिया हो—चलो हिन्दी एकांकी का सूना आंगन मोतियों से भरो ।^१

विपुल एकांकियों के स्रष्टा वर्मा जी की कृतियों में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना के प्रमुखतया दर्शन होते हैं। राष्ट्रीय-चेतना से अभिभूत होकर ही उनके साहित्यिक-जीवन ने अपनी पंखुडियाँ खोली थीं। उन्होंने स्वयं कहा है : 'सन् १९२१ से परिस्थिति परिवर्तित हुई। महात्मा गान्धी का असहयोग आन्दोलन अपने वेग पर था। डिप्टी कलक्टर का पुत्र होने के बावजूद मैंने स्कूल छोड़कर विदेशी शासन से संघर्ष करना आरम्भ किया। प्रभात-केरियों के गीत लिखने का आग्रह मेरे समक्ष था और इस प्रकार काव्य-जगत में मेरा प्रवेश हुआ^२। कहना नहीं होगा कि यह चेतना वर्मा जी के एकांकीकार के जीवन में आद्यन्त प्रवहमान रही।

वर्मा जी ने स्वतः अपनी इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि "यदि आप मेरे नाटकों पर दृष्टि डालें तो आपको ज्ञात होगा कि मैंने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे हैं। इसका कारण एक तो राष्ट्र की संस्कृति में मेरा विश्वास है। जिसका विकास करने में हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों का विशेष हाथ रहा है। दूसरे ऐतिहासिक तथ्य के निरूपण से हमारे वर्तमान जीवन को एक नैतिक धरातल मिलता है। यों विषय मुझे इतना प्रिय नहीं है जितनी पात्र की संवेदना। वही यथार्थ या आदर्श में उभरकर हमारे जीवन में तथ्य का निरूपण करती है^३।"

वर्मा जी के बाल्यावस्था के रङ्गमञ्च एवं अभिनय सम्बन्धी संस्कारों ने ही शक्तिशाली जड़ों का कार्य किया। बचपन में उन्होंने अपने संस्कारों को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'अंधेर नगरी' और 'भारत दुर्दशा' सहस्र कृतियों द्वारा अभिसिंचित किया^४ और राष्ट्रीयता के मार्ग को प्रशस्त किया। फिर 'चन्द्रगुप्त' तथा 'कृष्णार्जुन युद्ध' सरीखे नाटकों ने वीरत्व की अभिवृद्धि की^५।

डा० रामकुमार वर्मा के प्रायः समग्र एकांकियों में राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृति के प्रचुर उपादान बिखरे पड़े हैं। उनके नाटक अतीत का स्वर्णिम विहान उपस्थित करते हैं और वर्तमान की दुर्दशा को आलोकित करते हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास को ही नाटकों की आधार-भूमिका बनाया है। उनका 'कैनवास' काफी विस्तृत तथा व्यापक है जिसमें भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों के आख्यानों को राष्ट्रीयता के रङ्ग में डुबोकर, एकांकी की आकृति में बिछाया गया है। यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने प्रायः सभी युगों के इतिहास से अपने काव्य-विषय को परिपुष्ट किया है, उसी प्रकार वर्मा जी ने भी अपने एकांकियों को।

नाट्यकार वर्मा जी ने प्रत्येक युग के जीवन की चेतना को अपने एकांकियों में पिरोया है। प्रत्येक काल की भारतीय राष्ट्रीय-चेतना उनमें मूर्तिमान हो उठी है। उनका कथन है कि नाटककार जीवन का अभिन्न सखा है। वर्षों के साहचर्य से उसे जीवन की प्रत्येक मुसकान और प्रत्येक

(१) डा० लक्ष्मीनारायण लाल—'धर्मयुग', व्यक्ति विशेष, रेशमी टाई वाला मानसहंस, ९ सितम्बर, १९६२। (२) 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'—श्री राजकुमार शर्मा, डा० रामकुमार वर्मा के संस्मरण और विचार : उन्हीं के शब्दों में २२ सितम्बर, १९६३, पृष्ठ ५। (३) 'दीपवान'-नाटकों के सम्बन्ध में, पृष्ठ २७। (४) वही, पृष्ठ २१। (५) वही, पृष्ठ २२-२३।

उच्छ्वास की गहराई का ज्ञान है। प्रेम और घृणा में हृदय के स्पन्दन की गति से उसके कान परिचित हैं। वह जीवन की बहुत सी 'धूसर-भुंजग-सी' पगडंडियों पर चल चुका है। उसे शायद ठोहरें भी लगी हैं^१। उनकी नाट्य-कुशलता तथा प्रभावोत्पादकता को देखते हुए ही, किसी आलोचक ने ठीक ही लिखा है :—

नाटक रामकुमार के, ज्यों नावक के तीर।

देखत में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर ॥^२

'राजरानी सीता' रामायण-काल, 'रति का रहस्य' पूर्व-मौर्य-काल, 'मर्यादा की वेदी पर', 'चार मित्रा' मौर्य-काल, 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक', 'कृपाण की धार' गुप्त-काल, "राज्यश्री" हिन्दू-काल, 'पृथ्वीराज की आँखें', 'भाग्य-नक्षत्र', कलंक रेखा' 'दीपदान', 'उत्सर्ग' 'आदि राजपूत-युग एवं शौर्य', 'तैमूर की हार', 'औरङ्गजेब की आखिरी रात', 'शिवाजी', 'दुर्गावती' आदि मध्ययुगीन यवन-काल की राष्ट्रीय-चेतना को मुखर बनाते हैं। ऐतिहासिक घटना-क्रमों के अतिरिक्त, नाट्यकार का ध्यान हमारे वर्तमान युग की राष्ट्रीय-भावना की ओर भी गया है जिसकी अभिव्यक्ति 'रेशमी टाई' 'पृथ्वी का स्वर्ग' आदि एकांकियों में सफलता पूर्वक हुई है। एकांकीकार ने इतिहास की ऐसी घटनाओं को ही अपना विवेच्य-विषय बनाया है जो कि राष्ट्रीयता तथा संस्कृति को उज्ज्वलतम प्रतीक हों और जहाँ चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व एवं चिरन्तन सन्देश-वहन के लिये पर्याप्त अवसर हो।

'राजरानी सीता' में भूतकाल की मनोरम छटा विद्यमान है जिसमें आज की हमारी नारियों के लिए महत्वपूर्ण संदेश है। स्वयं रावण सीता की निष्ठा से प्रभावित होकर महादेवी मन्दोदरी से कह उठता है कि संसार की किसी नारी के पास ऐसी निष्ठा नहीं^३। निष्ठा का सन्देश ही इस कृति का प्राण है। 'रात के रहस्य' के नायक उदंड कुलीक को अपने पुत्र-प्राप्ति के पश्चात् स्वानुभव से ज्ञात होता है कि सच्चा राजमहल ईंट पत्थरों का नहीं अपितु वह तो पिता के चरणों में है^४। वह आत्म-प्रतारणा की अग्नि में तिल-तिलकर जलता दिखाई पड़ता है। 'मर्यादा की वेदी पर' में एनिसा क्रिटीज तक्षशिला के राजकुमार आम्भि को देश-द्रोही होने के नाते धिक्कारता है और स्त्री से भी गया बीता बताता है^५। सिकन्दर पौरव के वीरता पूर्ण युद्ध की भूरि-भूरि सराहना करता है^६। रण-वांकुरी नारी भैरवी पौरव से सिकन्दर के मिथ्या सम्मान पर कहती है : मैं मस्सगा की नारी हूँ। मैंने स्वतंत्रता के होमकुण्ड में हजारों वीरों और नारियों को आत्म समर्पण करते देखा है। शत्रु से मिलकर देश को कुचलना हमारे देश की मर्यादा नहीं है^७। वह आम्भि की भी भर्त्सना करती हुई कहती है कि अपनी जन्मभूमि को और कलंकित न कर^८। अन्त में वह देश की मर्यादा की वेदी पर अपने मस्तक की प्राहुति चढ़ा देती है। 'चारु-मित्रा' अपनी स्वामी-भक्ति के लिए आत्मोत्सर्ग करती है।

'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' जीवन में विश्वास उत्पन्न करने वाली कृति है। 'कृपाण की धार' विलासी रामगुप्त शकों के युद्ध की बेला में, मधु के स्वागत में लीन है^९। उसका महामात्य

(१) रेशमी टाई—मेरा अनुभव, पृष्ठ ५। (२) 'रिमझिम'—ये मेरे छोटे नाटक, पृष्ठ ७।

(३) 'इन्द्र धनुष'—राजरानी सीता, पृष्ठ १५७। (४) 'दीपदान' रात का रहस्य, पृष्ठ १५५।

(५) वही, मर्यादा की वेदी पर, पृष्ठ १६२। (६) वही, पृष्ठ १७६। (७) वही, पृष्ठ १८५।

(८) 'दीपदान'—मर्यादा की वेदी पर पृष्ठ १८५। (९) वही, कृपाण की धार, पृष्ठ १०२।

समयोचित वाणी कहता है कि राष्ट्र की रक्षा राजा का प्रथम कर्तव्य है। हम सब व्यक्तियों का बलिदान कर सकते हैं, किन्तु अपने महापुरुषों द्वारा अर्जित राज्य नहीं खो सकते। उन्होंने न जाने कितने युद्ध लड़े होंगे, न जाने कितनी रक्त की नदियाँ बहाई होंगी, तब कहीं जाकर इतना विशाल साम्राज्य उन्होंने सञ्चित किया^१। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य स्थिति को सम्हालता है और दोनों का ठीक मार्ग-दर्शन करता है। वह महामात्य को फटकारते हुए कहता है कि राज-नीति-गुप्त वंश के गौरव का अनुसरण करती रही है, गुप्त-वंश ने राजनीति का अनुसरण नहीं किया। आर्य समुद्रगुप्त पराक्रमाक के राज्य की सीमा कृपाण की धार पर बनी है, संधियों से नहीं। आज उसी कृपाण की धार पर महादेवी को ले जाऊँगा और शकराज से द्वन्द्व युद्ध करूँगा। उसे यमलोक भेज कर मैं तुम्हें और परम भट्टारक को रक्त की धार से नहलाऊँगा। मैं गुप्त वंश के सिंहासन पर उस व्यक्ति को नहीं बैठने दूँगा जो कृपाण की धार में डूबने के बदले मधुपाश में डूब गया^२। अन्त में चन्द्रगुप्त को सफलता प्राप्त होती है।

‘राजश्री’ कर्तव्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न करता है। पर-सेवा ही महान् धर्म है। आचार्य दिवाकर कहते हैं कि पुनीत रहकर अपना कर्तव्य पालन करना ही जीवन-यज्ञ है। इस जीवन-यज्ञ में संसार का कल्याण है^३।

वर्मा जी को राजस्थानी-इतिहास के शौर्य एवं गाथा से विशेष स्नेह रहा है। उनकी राष्ट्रीय-चेतना को जितना उपयुक्त नीड़ इस भूमि भाग की गरिमा ने प्रदान किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। ‘पृथ्वीराज की आँखें’ में पृथ्वीराज का गौरव निरूपित हुआ है। ‘भाग्य-नक्षत्र’ में स्वयं पृथ्वीराज कहते हैं कि परस्पर का विद्वेष ऐसी चिनगारी है जो वीरता के लाक्षागृह को एक क्षण में भस्मीभूत कर सकती है। राजपूतों में यदि विद्वेष न होता तो संसार की कोई भी शक्ति उन्हें पराजित न कर सकती, किन्तु जो फूल जितना शोभा-सम्पन्न और सुगन्धित होता है उसमें उतने ही तीक्ष्ण काँटे भी होते हैं^४। ‘कलङ्क रेखा’ में राजपूतों की पारस्परिक फूट तथा पतन के लक्षण प्रगट हुए हैं। ‘कलङ्क रेखा’ की कृष्णादेवी और ‘दीपदान’ की पन्ना धाय प्राणार्पण की महिमा मण्डिता वीर राजपूत रमणियाँ हैं। पन्ना कहती है कि चितोड़ का त्योहार आत्म-बलिदान है। यहाँ का गीत मातृभूमि की वंदना का गीत है^५। वह रणवीर के पङ्कज को विफल करने के लिए उदयसिंह के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन की बलि चढ़ाने के लिए तत्पर हो जाती है। वह कहती है कि यही राजपूतनी का व्रत है। यही राजपूतनी की मर्यादा है। यही राजपूतनी का धर्म है^६। वह मातृभूमि के लिये अपनी रक्तधारा चढ़ाती है। ऐसा दीप-दान करती है जिसका दृष्टांत विश्व में प्राप्य नहीं है^७।

डा० वर्मा का ‘शिवाजी’ नाटक खूब प्रसिद्ध हुआ। उसकी लाखों प्रतियाँ बिकीं। लेखक ने इसकी भूमिका में लिखा है कि आज हमारे साहित्य का सबसे प्रमुख दृष्टिकोण यह हो कि वह हमारे विद्यार्थियों के हृदय में अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आदर्शों के प्रति गौरव और अभिमान का भाव जाग्रत करे^८। इस नाटक के द्वारा हम अपने प्राचीन गौरव को एकबार फिर

- (१) वही, पृष्ठ १०४। (२) वही, पृष्ठ १२७। (३) इन्द्रधनुष—राजश्री पृष्ठ ५६। (४) ‘दीपदान’—भाग्य-नक्षत्र, पृष्ठ ८२। (५) वही, दीपदान, पृष्ठ ४०। (६) वही, पृष्ठ ५१। (७) वही, पृष्ठ ५६। (८) ‘शिवाजी’—भूमिका, पृष्ठ ५।

आंखों के सामने लाना चाहते हैं। महाराज शिवाजी के चरित्र में हमें अपने आदर्शों को समझने की क्षमता प्राप्त होती है। उनका चरित्र हमारे अनुकरण की वस्तु है। जिन विषम परिस्थितियों से उठकर वीर शिवाजी ने अपने बाहुबल से एक स्वतन्त्र राष्ट्र का निर्माण किया था, वैसी ही विषम परिस्थितियाँ जीवन में किसी न किसी रूप में हमारे नवयुवकों के सामने हैं। उन्हें शिवाजी के चरित्र से शक्ति और दृढ़ता प्राप्त होगी^१। शिवाजी गौहरवानू से कहते हैं कि जिस दिन हमारे मुल्क की औरतें डरना छोड़ देंगी उसी दिन हमारे मुल्क तरफ कोई देख भी नहीं सकेगा^२। वर्मा जी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रवृत्ति को किसी एक कृति में सर्वाधिक प्रसार प्राप्त हुआ है, तो वह है 'शिवाजी' नामक ऐतिहासिक नाटक।

नाटककार अपने युग की राष्ट्रीय-चेतना से भी वीतरागी नहीं रहा है। उसके विविध स्फुट सामाजिक एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान एकांकियों में इसकी सरस अभिव्यंजना हुई है। 'परीक्षा' में पुराने जमाने के योगियों की लम्बी आयु का रहस्य बताया गया है^३। '१८ जुलाई की शाम' का अशोक आधुनिक नारियों के विषय में यह फक्ती कसता है कि आजकल की स्त्रियों पर क्या एतवार। कभी मैनचेस्टर का सिल्क पहनती हैं, कभी प्रोसेशन में जाकर महात्मा गाँधी की जय बोलती हैं। इन्हें हवा का रुख समझ लो। चाहे जिधर वह जाय। फीमेल माइण्ड इज ए मिस्ट्री मिस्टर^४। 'रेशमी टाई' में गांधी वादी युग-चेतना को वाणी मिली है। रेशमी टाई पर खादी की विजय होती है। वर्मा जी के शैशव के संस्कार उभर कर आ गये हैं। वर्मा जी का एक पात्र अचल पृथ्वी का स्वर्ग बताता है मनुष्य के जीवन में। वह ठोस नहीं है, तरल है—जो मन्दा-किनी की तरह मानव के प्राणों में कल-कल ध्वनि करता है। वह प्रेम में है, दया में है, सहानुभूति में है जो आग के संसार में कल्पना की वस्तु बन गई है^५। केशव भी कहता है कि दौलत का नशा इतना जबरदस्त है आदमी पर कि वह इन्सान को कुर्सी समझकर उस पर बैठ जाता है। आज इन्सान इंसान पर बैठा हुआ है^६।

युग-चेतना के प्रति भी हमारा नाटककार विशेष सतर्क एवं सजग है। उसका एक पात्र मदन कहता है कि परिश्रम से बचकर मनुष्य का दिमाग अवकाश की उच्छ्वलता में दानव भी बन सकता है। जहाँ विज्ञान के सहारे वह अपनी सुविधाओं को बढ़ाने की चेष्टा करेगा, वहाँ वह अपने विनाश को भी निमन्त्रण देगा। सुख और संतोष के अनुपात में उसकी चिताएं भी बढ़ेंगी। मित्रता में वह एरोप्लेन पर चढ़कर किसी दूसरे देश में अपने मित्र से क्षण भर में मिल सकता है तो शत्रुता में वह उतने ही कम समय में आग भी बरसा सकता है या अपने ऊपर आग बरसाने का निमन्त्रण भी दे सकता है। हिरोशिमा और नागा-साकी पर एटमबम की घटना से आज भी इतिहास जल रहा है^७।

डा० रामकुमार वर्मा को नाट्य-कृतियों की शिराएं राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के रक्त को ही गतिशील बनाये हुए हैं। यह उनके नाटकों का सूत्रधार है। इसी सर्वांगीण तथा आद्योपान्त शक्ति से ही उनके नाटक चिर-काल तक भास्कर एवं प्रोज्ज्वल बने रहेंगे।



- (१) वही, पृष्ठ १०। (२) वही, पृष्ठ ८२-८३। (३) 'रेशमी टाई'—परीक्षा, पृष्ठ ४४।
 (४) 'रेशमी टाई'—१८ जुलाई की शाम, पृष्ठ १५३। (५) 'इन्द्रधनुष'—पृथ्वी का स्वर्ग, पृष्ठ १२६।
 (६) 'रिमझिम'—पृष्ठ ४। (७) इन्द्रधनुष—प्रेम की आंखें, पृष्ठ १०१।

अपनी सम्पूर्ण वचत आज ही उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साभेदारी तथा
बैंकिंग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा
निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिंग संस्था है

शाखाएँ — आगरा, अल्मोड़ा, बरेली, फेजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर,
गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी।

क्षेत्रीय कार्यालय आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली।

हमारी विशेषताएँ

- १—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना।
 - २—प्रत्येक प्रकार की बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना।
 - ३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना।
- आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी समृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०-६-६०	३०-६-६५
१—पूँजी	२५४.७६ लाख	५३८.७६ लाख
२—अमानतें	७४७.४६ लाख	२०६०.०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५.६५ लाख	३३३६.२५ लाख
४—लाभ	१६.०५ लाख	३७.०२ लाख

ए० पी० सिंह

आई० ए० एस०

अध्यक्ष

मथुरा सिंह

उपाध्यक्ष

धीर सिंह वर्मा

सामान्य प्रबन्धक

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।
 २-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार
 कामयाब न हो सके।

३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।
 ४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैंक में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैंकों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।



जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।



ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत वार्षिक
कौल डिपोजिट पर	३।।।	" "
६ माह की अमानत पर	५।।	" "
१ साल की अमानत पर	६।	" "
२ साल की अमानत पर	६।।	" "
३ साल की अमानत पर	६।।।	" "
४ साल की अमानत पर	७	" "
५ साल की अमानत पर	७।	" "
७ साल की अमानत पर	७।।	" "

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

कल्याण तैल

गठिया का दर्द
शरीर की जकड़न
जोड़ों में दर्द
पसली के दर्द
कमर में दर्द को
आराम पहुंचाता है



निर्माता:-

सहकारी औषधि निर्माणशाला
रानीखेत उ.प्र.

ब्रज साहित्य मंडल के कुछ प्रकाशन

द्रौपदी दुकूल—[लेखक—कविवर रामलला]

इस खण्ड-काव्य में महाभारत की द्रौपदी-चीरहरण-कथा का ब्रज-भाषा में मनो-ग्राही वर्णन है । मूल्य ५० पैसे

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ

सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार के सम्मान में ब्रज जनपद के बहुमुखी अङ्गों पर लग-भग ८० विद्वानों के लेखों का संग्रह । यह ग्रन्थ ब्रज-भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का विश्वकोश है । सुपर रायल साइज में ग्लेज कागज पर छपा हुआ अनेक रङ्गीन और सादे चित्रों सहित, पृष्ठ सं० ११५४ । मूल्य ३० रुपये

अष्टछाप के वाद्ययंत्र—[लेखक—श्री चुन्नीलाल 'शेष']

अष्टछाप के समय में प्रचलित विविध भारतीय वाद्ययंत्रों का विद्वत्तापूर्ण विवेचन, विविध वाद्यों के ५४ रेखाचित्रों सहित । मूल्य ३ रु०

ब्रज का इतिहास (दूसरा भाग)—[लेखक—श्री कृष्णदत्त बाजपेयी]

प्रस्तुत ग्रन्थ में ब्रजभाषा के समस्त उच्चकोटि के कवियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त उनकी उत्तम कृतियों सहित दिया गया है । ब्रजभाषा काव्य के इससे अधिक सुन्दर इतिहास की कल्पना नहीं की जा सकती । ब्रजभाषा के कवियों और उनकी उत्तम कृतियों का इसे विश्वकोष समझिये । पृष्ठ संख्या ८०० से ऊपर हैं । मूल्य ८ रु० मात्र

ब्रज-लोक-संस्कृति—[संपादक : डा० सत्येन्द्र]

ब्रज के लोक-जीवन, साहित्य, संगीत, नृत्य, इतिहास, शिलालेख तथा उसकी संस्कृति एवं विभिन्न कलाओं पर, मंडल द्वारा आयोजित शिक्षण शिविर में देश के गण्यमान्य विद्वानों के लेखों एवं भाषणों का अपूर्व संकलन । लोक-जीवन के प्रेमियों एवं अध्येताओं के अनेक चित्रों से सज्जित यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है । मूल्य ४ रु०

ब्रज की लोक-कहानियाँ—[संपादक : डा० सत्येन्द्र]

ब्रज में प्रचलित लोक-कहानियों का लोक-भाषा में ही किया गया हिन्दी का सर्व प्रथम कहानी संग्रह, जो विद्वानों व भाषाशास्त्रियों के अध्ययन और साधारण पाठकों के मनोरञ्जन की सुन्दर सामग्री से सज्जित है । इसमें बालकों, बूढ़ों, युवकों सभी के लिए कहानियाँ हैं । व्रत तथा त्यौहारों की कहानियों के कारण यह स्त्रियोपयोगी भी है । यह पुस्तक प्रत्येक घर में रखने योग्य है । सुस्निग्ध सुन्दर छपाई, रङ्गीन आवरण, पृष्ठ सं० १८७ । मूल्य ३.२५ रु०

ब्रजभारती—मण्डल की शोध सम्बन्धी त्रैमासिक मुख-पत्रिका

संपादक : बा० वृन्दावनदास

मूल्य ४ रु० वार्षिक

बाबू वृन्दावनदास अध्यक्ष ब्रज साहित्य मण्डल, के लिए राष्ट्रीय प्रेस, डेम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

ब्रज भारती

भाद्रपद सं० २०२५ वि०



सम्पादक :

श्री वृन्दावन दास

बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २२]

वार्षिक मूल्य ४)

[अंक २

* अनुक्रमणिका *



क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं०
१. सम्पादकीय	...	श्री वृन्दावनदास	१
२. हिन्दी तार सेवा की उपयोगिता	...	श्री हरिश्चन्द्र सिंहल एम. ए.	२
३. मण्डल के प्रधान मन्त्री की रिपोर्ट	...	श्री जगदीश नानायण चतुर्वेदी	४
४. गाजियाबाद केन्द्र के अध्यक्ष का भाषण		श्री हीरालाल गोयल	७
५. मण्डल के पत्रद्वे अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण		श्री वृन्दावनदास	६
६. ब्रज साहित्य का इतिहास (समीक्षा)	...	रमेशचन्द्र दुवे एम. ए.	१५
७. व्याकुल मधुवन (कविता)	...	श्री जगदीशचन्द्र गोयल	१६
८. नवनीतलाल के काव्य पर एक दृष्टि	...	श्री रामनारायण चतुर्वेदी एम. ए.	१७
९. वैष्णव भक्तों की दृष्टि में श्री राधा	...	श्री कान्तानाथ गर्ग एम. ए.	२३
१०. स्वर्गीय कविवर हरदयाल सिंह	...	श्री शिवदत्त चतुर्वेदी एम. ए.	२५
११. ऋग्वेद-कालीन भारतीय जीवन की एक झाँकी...	...	श्री वृन्दावनदास	३०
१२. अन्तर जनपदीय परिषद : कुछ अन्तरङ्ग भलकियाँ	...	श्री रामनारायण उपाध्याय	३४
१३. जनपदीय भाषाओं के कोश-निर्माण का प्रश्न	...	श्री गरेश चौबे	३७
१४. पत्र-व्यवहार	...	डा० अम्बा प्रसाद 'सुमन'	४१
"	...	वा० श्यामसुन्दर खत्री	४२
१५. ग्रन्थालोचन	...	श्री राजेन्द्र रञ्जन एम. ए.	४३



ब्रज भारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २२]

मथुरा भाद्रपद सं० २०२५

[अङ्क २]

सम्पादकीय —

पिछले अङ्क के प्रकाशन के बाद साहित्यिक क्षेत्र में ब्रज साहित्य मण्डल का पन्द्रहवाँ अधिवेशन एक महत्वपूर्ण घटना है। यह अधिवेशन गत २६ और ३० जून को गाजियाबाद में सम्पन्न हुआ था। सम्मेलन विषयक कुछ सामग्री इस अङ्क में प्रकाशित की जा रही है।

अन्तर्जनपदीय परिषद्

जनपदीय वाणियों में सुरक्षित अक्षय भण्डार से हमें राष्ट्रभाषा हिन्दी को समुन्नत बनाते हुए अपनी हिन्दी सम्बद्धिनी योजना को अग्रसारित करना है। ब्रजभारती में यह चर्चा निरन्तर चल रही है। पत्रिका में प्रकाशित अनेक पत्रों और लेखों से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि इस विषय के अधिकारी विद्वान् तज्जन्य समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन कर रहे हैं। भावी कार्य-क्रम की रूपरेखा क्या हो इस पर भी वे दत्तचित्त हैं।

सर्व श्री कृष्णानन्द जी गुप्त, गणेश जी चौवे आदि विद्वान् इस विषय पर एक मत है कि कार्य-क्रम में कोश-निर्माण के कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। ये दोनों ही महानुभाव क्रमशः बुन्देली और भोजपुरी के कोश-निर्माण कार्य को अपने हाथों में लेने को उद्यत हैं। श्री रामनारायण जी उपाध्याय निमाणी कोश न केवल बनाने अपितु छापने को भी तैयार हैं। हमारी समझ में हिन्दी साहित्य की प्रगति की दिशा में यह एक बड़ा शुभ चिह्न है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि इस शुभ कार्य के लिए उचित वातावरण बनाया जाय। यह एक महान् कार्य है जो हिन्दी जगत की सहानुभूति एवं सहयोग के बिना असम्भव है। सरकार और विश्वविद्यालयों से भी हमें आर्थिक एवं अन्य प्रकार के सहयोग की अपेक्षा है। हम इस सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों और सुझावों का स्वागत करेंगे।

श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में उस भेंट का उल्लेख किया था जो उनकी राजा बहादुर मधुकर शाह जी (टीकमगढ़ के वर्तमान महाराज के पुत्र) से हाल ही में हुई थी। रा० ब० मधुकर शाह जी दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में एम० ए० पास है तथा

आजकल एक अत्यन्त सफल कृषक के रूप में कृषि उत्पादन का कार्य कर रहे हैं। उन्होंने चतुर्वेदी जी से कहा था कि आजकल टीकमगढ़ में युवक बुन्देली के बजाय खड़ी बोली में बोलने लगे हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देली बीस वर्ष में खतम हो जायगी। चतुर्वेदी जी ने लिखा है कि यह बात सुन कर उनके हृदय को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने लिखा है कि इस अनाचार को रोकने का उपाय होना ही चाहिये। ब्रजभाषा के बोलने वाले भी कम होते जा रहे हैं। परिस्थिति के उपरोक्त संदर्भ में भी इन वाणियों के अटूट भण्डार को समय रहते कोशगत करने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

जनपदीय शब्द-भण्डार के विषय में एक बार स्व० डा० वासुदेवशरण जी ने लिखा था, “मूसलाधार रूप में सामग्री बरस रही है, साहित्यिक रस, शब्द, भाषा ध्वनि किसी का भी तो पारावार नहीं है। एक-एक जनपद कार्य-कर्त्ताओं के लिए एक-एक प्रजातन्त्र का रूप रखता है, जिसका नागरिक बनकर हिन्दी का कर्मठ साहित्यिक अपने विशाल उद्योग से उस जनराज्य का सभापति बन सकता है।”

डा० अम्बाप्रसाद जी ‘सुमन’ का एक अत्यन्त उपयोगी पत्र हमें अभी प्राप्त हुआ था, प्रस्तुत संदर्भ में उसकी उपयोगिता समझ हम उसे इस अङ्क में प्रकाशित कर रहे हैं। यह सर्वविदित है कि कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली को संग्रहीत और प्रकाशित करके डाक्टर सुमन हिन्दी की एक अनुपम सेवा कर चुके हैं।

—वृन्दावन दास

हिन्दी तार सेवा की उपयोगिता

(श्री हरिश्चन्द्र सिंघल एम० ए०, आफिसर्स कालोनी मथुरा)

यह खेद की बात है कि देवनागरी लिपि में तार देने की सुविधा उपलब्ध होने पर भी, हिन्दी में भेजे जाने वाले तारों की संख्या प्रायः नगण्य सी रहती है। चूँकि हिन्दी तार सेवा पर सरकार का अतिरिक्त व्यय होता है इसलिए इस बात की आशङ्का की जा सकती है कि यदि उसका पूरा लाभ न उठाया गया तो घाटे का सौदा समझकर निकट भविष्य में उसे बन्द करने की स्थिति उत्पन्न हो जाय।

उत्तर-प्रदेश के शासन ने हिन्दी में तार देने की आज्ञा जारी की परन्तु शायद ही कोई तार हिन्दी में तार भेजा जाता हो। इसी प्रकार व्यापारी और ग्राम लोग बहुत कम संख्या में हिन्दी में तार भेजते हैं, मैं यह मानने को तैयार नहीं कि हिन्दी तार सेवा का उपयोग इसलिए नहीं हो रहा है क्योंकि हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि से कोई द्वेष है, बल्कि मेरे विचार से हम सभी हिन्दी तार सेवा की प्रणाली से अच्छी तरह परिचित नहीं हो सके हैं। हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में हिन्दी तार सेवा की कुछ महत्वपूर्ण बातें प्रकाश में लाना चाहूंगा :—

१—हिन्दी में दिये जाने वाले तार अंग्रेजी तारों की अपेक्षा गन्तव्य पर जल्दी पहुँचते हैं। इसका कारण यह है कि अंग्रेजी में देने वाले तारों की इतनी मरमार रहती है कि तार की लाईन

जल्दी खाली नहीं मिल पाती। हिन्दी तारों के लिए प्रमुख नगरों के बीच एक अलग लाईन की व्यवस्था की जा चुकी है जो काम न होने की वजह से खाली सी रहती है।

२—हिन्दी का तार आकार में छोटा और प्रकार से मधुर और शिष्ट होता है। मान-लीजिए आप तार के जरिये कोई चीज बहुत जल्दी प्राप्त करना चाहते हैं तो उसके लिए अंग्रेजी में “विदआउट फरदर डिले” से अपना आशय व्यक्त करेंगे जिसके वास्ते तीन शब्दों का शुल्क चुकाना होगा, किन्तु हिन्दी में अकेले “अविलम्ब” लिखकर उद्देश्य पूर्ति सम्भव हो जायगी। इसी प्रकार ‘एटयोर कन्दीनिऐस’ की बजाय हिन्दी का “सुविधानुसार” कहीं अधिक मधुर शब्द रहेगा। शिष्टता के नाते हिन्दी के तार में “जी” को बिना अतिरिक्त शुल्क के सदैव जोड़ा जा सकता है। जहाँ अंग्रेजी में “पिलीज” अथवा “काईन्डली” लिखना पड़ता है वहाँ (आओ) के स्थान पर “आईए”, भेजो के स्थान पर “भेजिये” का प्रयोग कर कृपा करने की बात इन लघु शब्दों में प्रकारान्तर से निहित कर दी जाती है।

३—हिन्दी का तार कम खर्च वाला नशीन होता है। दस अक्षरों तक का शब्द केवल एक शब्द माना जाता है। मजा यह है कि मात्राएँ अलग से गिनी नहीं जातीं। विभक्तियों को जोड़ने की पूर्ण सुविधा है वशतें कि बीच में जगह न छोड़ी जाय। यह रियायत क्रियावाचक शब्दों पर भी पूरी तरह लागू होती है। हिन्दी में “विल बी डिस्पेन्ड” जैसे अंग्रेजी के तीन शब्दों का भाव। भिजवा दिया जायगा। जैसे एक शब्द से व्यक्त कर दिया जायगा।

४—संघि और समास युक्त शब्द दस अक्षरों की सीमा के भीतर एक शब्द गिने जाते हैं। अंग्रेजी के “डिप्टी मिनिस्टर” और “असिस्टेन्ट सेक्रेटरी” हिन्दी में दो-दो की बजाय एक-एक तार प्रभार वाले “उप-मन्त्री” और “सहायकसचिव” रह जाते हैं।

५—संयुक्ताक्षर के जितने अवयव होते हैं, उन्हें जोड़ लिया जाता है। ‘क्ष’ ‘त्र’ ‘ज्ञ’ दो-दो अक्षरों के बराबर माने जाते हैं।

६—व्यापारिक चिन्ह अथवा संख्याएँ गिनने के लिए पाँच अंको अथवा चिन्हों के समूह को एक शब्द गिना जाता है।

७—किसी भी भारतीय भाषा में देवनागरी लिपि के माध्यम से तार दिया जा सकता है।

८—हिन्दी तार सेवा में वे सारी सुविधायें उपलब्ध हैं जो अंग्रेजी की तार प्रणाली में मिलती हैं। बधाई तारों की सूची हमारे परम्परागत व्यवहार से अधिक मेल खाती हैं।

९—हिन्दी के तार देने और प्राप्त तारों का आशय जानने में सुविधा रहती है क्योंकि इस भाषा से परिचित लोगों की संख्या देश भर में सबसे अधिक है।

१०—राष्ट्रभाषा के प्रसार और देश के अन्य भाषा भाषियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए हिन्दी तार सेवा एक महत्वपूर्ण साधन है।

मुझे आशा है कि इस संक्षिप्त जानकारी से हमारे नागरिक हिन्दी तार सेवा के अधिकाधिक उपयोग की ओर अग्रसर होंगे।

प्रधान मन्त्री श्री जगदीश नारायण चतुर्वेदी की रिपोर्ट

गत् गाजियाबाद अधिवेशन में २ जुलाई १९६३ को ब्रज साहित्य मण्डल की स्थायी समिति ने मण्डल के प्रधान मंत्री पद का भार मेरे निर्वल कन्धों पर डाल दिया। उस समय मण्डल की एक विचित्र स्थिति थी। उसके चारों ओर संघर्ष के काले बादल मंडरा रहे थे। मण्डल की मुख पत्रिका ब्रज भारती वर्षों से बन्द पड़ी थी। भवन अग्रहण के कार्य में अनेकों बाधाएँ थीं। प्रकाशन सम्बन्धी समस्त कार्य रुके पड़े थे। कुछ कार्य कर्त्ताओं में पारस्परिक सहयोग की भावना लुप्त-सी थी। ऐसे समय में हम सब के सामने मण्डल के कार्य का दायित्व संभालना एक बड़ी चुनौती थी। किन्तु मण्डल के नवनिर्वाचित साथियों के साहस एवं सहयोग के भरोसे पर हम सबने उस चुनौती का सामना करना स्वीकार किया। यथार्थ में यह सब अपने साथियों के सहयोग के बल पर ही सम्भव था। हमने एक टीम की भाँति उसका सामना किया। इस कार्यकाल में निम्न उल्लेखनीय कार्य मण्डल के कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से किये गये।

गोष्ठियाँ एवं जयन्तियाँ

इस कार्यकाल में मण्डल द्वारा समय-समय पर सुविधानुसार अनेक स्थानों पर गोष्ठियों का आयोजन किया गया एवं जयन्तियाँ मनाई गईं जिनमें तुलसीदास, स्वामी हरिदास एवं सूरदास जयन्ती प्रमुख थी। सूरदास जयन्ती मण्डल द्वारा प्रति वर्ष मथुरा में धूमधाम से मनाई जाती रही। जिनमें देश के चोटी के विद्वानों ने भाग लेकर मण्डल के कार्य-कर्त्ताओं को अपना सहयोग प्रदान किया। इनमें सर्व श्री नरेन्द्र शर्मा, डा० माताप्रसाद जी, डा० सेठ गोविन्द दास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

नवीन स्मृति दिवस

८ दिसम्बर १९६३ को मण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की स्मृति से भारतीय विद्याभवन नई दिल्ली में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता में नवीन स्मृति दिवस मनाया गया। जिसमें सर्व श्री दिनकर, अशोक, अक्षयकुमार जैन, यशपाल जैन, नरेन्द्र शर्मा, डा० स्नातक तथा श्री के० एम० मुन्शी ने नवीन जी को अत्यन्त ही भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं।

इस अवसर पर नवीन जी की स्मृति में ब्रज-भारती का एक विशेषांक — नवीन स्मृति अंक — भी प्रकाशित किया गया।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी समारोह—विद्वानों का सम्मान करना मण्डल के उद्देश्यों की पूर्ति की ओर एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसी क्रम में इस कार्यकाल में मण्डल ने सर्व प्रथम २० जून १९६३ को हिन्दी के व्याकरणाचार्य आचार्य श्री किशोरीदास वाजपेयी के सम्मान का आयोजन दिल्ली में श्री बाबूराम सक्सेना की अध्यक्षता में किया। जिसमें देश विख्यात अनेक साहित्यकार एवं विद्वानों ने भाग लिया जिनमें सर्व श्री डा० नगेन्द्र, डा० ओझा, डा० स्नातक, जैनेन्द्रकुमार, नरेन्द्र शर्मा, बाँकेबिहारी भटनागर, भक्तदर्शन तथा स्वर्गीय डा० लोहिया का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस समारोह का आयोजन पं० प्रकाशवीर शास्त्री संसद सदस्य के निर्देशन में किया गया।

५ फरवरी १९६४ को भारत के हवेली संगीतज्ञ के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ लक्ष्मणप्रसाद चौबे के सम्मान में मथुरा में एक संगीत सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें देश के अनेक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों ने भाग लिया। इन कलाकारों में इमरत खाँ साहब का सितारवादन, प्रेमवल्लभ

का तबलावादन, फैयाज खाँ का सारंगीवादन तथा कहरा आवरोल का शास्त्रीय संगीत विशेष रूप से सराहनीय रहा ।

सूरसागर विमोचन समारोह

इसी क्रम में ब्रज साहित्य के विख्यात विद्वान् श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी जी द्वारा सम्पादित सूरसागर के प्रथम खंड का विमोचन समारोह १६ अप्रैल १९६६ को नई दिल्ली में दिल्ली विश्व-विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत डा० नगेन्द्र की अध्यक्षता में आयोजित किया गया । इस समारोह में राजधानी के एवं बाहर से पवारे हुए अनेक प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया । जिनमें सर्वश्री पं० वियोगीहरि, सेठ गोविन्ददास, डा. विजयेन्द्र स्नातक, भगवतीचरण वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा एवं हरिवंशराय वच्चन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इस समारोह का उद्घाटन भारत सरकार के खाद्यमन्त्री श्री जगजीवनराम जी ने किया । इस महान् साहित्यिक समारोह का आयोजन मण्डल के साहित्य मन्त्री श्री अशोक वाजपेयी के संयोजकत्व में किया गया । इसमें श्री श्यामसुन्दर गर्ग का सहयोग विशेष उल्लेखनीय था ।

ब्रजभारती

मण्डल की त्रैमासिक मुख-पत्रिका ब्रजभारती का प्रकाशन वर्षों से बन्द पड़ा था । इस कार्यकाल में उसे पुनः प्रारम्भ किया गया है । ब्रजभारती अब ३ वर्ष से श्री वृन्दावनदास के सम्पादकत्व में नियमित रूप से निकल रही है जिसका कि पूर्ण भार वे स्वयं ही सह रहे हैं । इस कार्य में श्री किशनप्रसाद जैन का सहयोग भी सराहनीय है । ब्रजभारती भविष्य में और भी अधिक अच्छे रूप में निकलती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है ।

भवन अधिग्रहण

ब्रज साहित्य मण्डल का कार्य अधिक व्यवस्थित एवं स्थायी रूप से चलता रहे इसके लिए मण्डल के अपने भवन की आवश्यकता सदैव से कार्य-कर्त्ताओं में रही है, इस प्रयत्न में मथुरा स्थित जयसिंहपुरा में राजा मुरसान की कोठी का अधिग्रहण करने का निश्चय सन् १९६० में तत्कालीन अध्यक्ष श्री राजबहादुर जी ने किया तथा कार्य प्रारम्भ कर दिया । इस दिशा में मण्डल के कार्य-कर्त्ता निरन्तर प्रयत्नशील रहे । यद्यपि इस कार्य में अनेक बाधाएँ समय-समय पर आती रहीं किन्तु मण्डल के कार्य कर्त्ता निराश नहीं हुए । अन्त में भवन के अधिग्रहण की विज्ञप्ति उत्तर-प्रदेश सरकार के गजट में मण्डल के पक्ष में ३० मार्च १९६८ को हुई । इस कार्य को मण्डल के वर्तमान कार्यकाल के कार्य-कर्त्ताओं की विशेष उपलब्धि कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी । भवन के मूल्यांकन का कार्य शेष है जो सम्भवतः शीघ्र ही पूरा हो जायगा । इस कार्य के लिए श्री वृन्दावन-दास जी के सतत् प्रयत्न विशेष सराहनीय हैं जिसमें उन्हें सर्वश्री रामप्रसाद कमल, जुगलकिशोर चतुर्वेदी, सुरेन्द्रप्रसाद तथा किशनप्रसाद जैन का समय-समय पर आवश्यक सहयोग सदैव प्राप्त होता रहा ।

प्रकाशन

वर्षों से मण्डल के प्रकाशन का कार्य बन्द ही पड़ा हुआ था। इस दिशा में भी कार्य-कर्त्ताओं ने यथा सम्भव सक्रिय कदम उठाया। सत्यनारायण कविरत्न द्वारा रचित देशभक्त होरेशस तथा ब्रज के विख्यात कवि श्री गोविन्द चतुर्वेदी द्वारा रचित स्वर्गीय नवनीत जी के सम्बन्ध में काव्य नवनीत नामक पुस्तकों का प्रकाशन भी किया गया। निकट भविष्य में मण्डल अन्य और भी प्रकाशन करेगा ऐसी आशा है।

लोक साहित्य सम्मेलन

भारतीय भाषाओं, हिन्दी की बोलियों तथा ब्रजभाषा के लोक-साहित्य के सम्बन्ध में विचार एवं विकास के लिए मण्डल ने सन् १९६२ में राजधानी में लोक साहित्य सम्मेलन करने का निश्चय किया था जिसे देश में आपद-कालीन स्थिति सरकार द्वारा घोषित करने के कारण स्थगित करना पड़ा था। उसे पुनः प्रारम्भ कर दिया गया है। तथा उस कार्य में पर्याप्त प्रगति हो चुकी है। लोक-साहित्य सम्मेलन राजधानी में शीघ्र ही निकट भविष्य में होगा। जिसमें समस्त भारतीय भाषायें, हिन्दी की बोलियों तथा ब्रजभाषा के लोक-साहित्य मर्मज्ञ भाग लेंगे। मण्डल द्वारा आयोजित यह सम्मेलन साहित्य जगत् में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होगा। इस कार्य में श्री रामेश्वर उपाध्याय, श्यामसुन्दर गर्ग डा० नरेन्द्र चौधरी तथा श्री हीरालाल गोयल के प्रयत्न विशेष सराहनीय हैं। हस्तलिखित ग्रन्थ संरक्षण—प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित रूप से विद्वानों के अवलोकनार्थ मंडल में रखे जाएं तथा उन्हें स्थान-स्थान से प्राप्त किया जाय जिससे साहित्य की यह अमूल्यनिधि नष्ट न हो जाय इस दिशा में भी प्रयत्नशील है तथा उसके लिए आवश्यक कदम उठाये जा रहे हैं। इस कार्य में भारत सरकार से भी मण्डल सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

यद्यपि मंडल ने कार्य-कर्त्ताओं के प्रयत्न से अपना कार्य ठीक ढङ्ग से अनेक वर्षों के उपरान्त आरम्भ कर दिया है तथा उसे पुनः प्राण प्रतिष्ठा प्रदान की गई है किन्तु यह संतोष का विषय नहीं हैं, मंडल के कार्य-कर्त्ताओं के सामने बहुत बड़ा दायित्व है। अनेक वृहद् एवं महत्वपूर्व योजनायें हैं। उन्हें आगामी पदाधिकारी गण पूरा करेंगे और मंडल के कार्य को अधिक गति प्रदान करेंगे ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। कुछ पुराने कार्य कर्त्ताओं से मंडल के वर्तमान पदाधिकारियों को (कारण कुछ भी रहे हों) अपेक्षित सहयोग नहीं मिल सका है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में वे मंडल के कार्य में अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

इस अवसर पर मैं स्थायी समिति के समस्त सदस्यों का आभार प्रकट करता हूँ जिनका सहयोग मुझे प्रत्येक कार्य में सदैव मिलता रहा। उनके सहयोग के बिना, कोई भी कार्य करना मुझे सम्भव नहीं था। मन्त्रिमंडल के साथियों का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मण्डल के प्रत्येक कार्य में मुझे अपना सक्रिय एवं पूर्ण सहयोग प्रदान किया। यथार्थ में जो कुछ भी इस कार्य काल में हुआ है उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम है।

जगदीशनारायण चतुर्वेदी
प्रधान मन्त्री

गाजियाबाद केन्द्रके अध्यक्ष श्री हीरालाल गोयल का स्वागत भाषण

माननीय डाक्टर रामसुभगसिंह जी, आदरणीय अध्यक्ष महोदय,
माननीय प्रतिनिधिगण एवं उपस्थित सज्जनवृन्द,

अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मण्डल के इस अधिवेशन के अवसर पर आप विद्वज्जनों का स्वागत करते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन । स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते ॥

मण्डल का गत अधिवेशन सन् १९६३ में गाजियाबाद में ही हुआ था तथा पुनः दूसरी बार आप महानुभावों का स्वागत करने का सौजन्य मुझे प्राप्त हुआ है, यह सब गाजियाबाद के साहित्यिक बन्धुओं के प्रति तथा मेरे प्रति आपके स्नेह तथा विशेष कृपा का ही परिचायक है।

आप महानुभावों के समक्ष, जो कि मण्डल के स्तम्भ हैं, मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मण्डल की स्थापना सन् १९४० में हुई थी और ना ही यह निवेदन करना मेरे लिए आवश्यक है कि मण्डल ने कितने महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। ब्रजभाषा साहित्य के संरक्षण, संवर्द्धन तथा उन्नयन के प्रति अपने उत्तरदायित्व को मण्डल ने सफलतापूर्वक निभाया है। प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों की खोज, प्राचीन एवं नवीन ग्रन्थों का प्रकाशन एवं अनेक ऐसे ग्रन्थों को मुद्रित करना, जो पुनरावृत्ति के अभाव में लुप्तप्राय होते जा रहे थे, मण्डल की गौरवपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। आकाशवाणी द्वारा ब्रज साहित्य एवं ब्रजभाषा के कार्यक्रमों का प्रसारण भी मण्डल के प्रयत्नों द्वारा संभव हुआ है। समय-समय पर मण्डल द्वारा ब्रजभाषा के कवियों एवं साहित्यकारों के सम्मान में विशेष आयोजन भी होते रहे हैं। अपनी उपलब्धियों पर मण्डल गर्व तो कर सकता है किन्तु जो विस्तृत क्षेत्र एवं महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए मण्डल के सामने हैं, उनको देखते हुये मण्डल के कार्यकर्त्ताओं को अधिक उत्साह एवं सज्जठन पूर्वक काम में जुटना पड़ेगा। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें जनता जनार्दन का अधिकतम सहयोग प्राप्त करके चलना होगा जिससे मण्डल की सर्वाङ्गीण उन्नति हो सके।

मेरा सम्पर्क तो मण्डल से बहुत थोड़े काल का रहा है, किन्तु आप महानुभावों में तो अनेक ऐसे सज्जन हैं जिन्होंने अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव देखे हैं तथा निरन्तर ब्रजभाषा की सेवा तथा साधना में निष्ठा पूर्वक लगे रहे हैं। ब्रजभाषा तो अत्यन्त ललित, मंजुल, सरस एवं कोमल भाषा है। महाकवि ग्वाल, राजरानी मीरा एवं स्वयं भगवान् कृष्ण ने इस भाषा को महानता प्रदान की है। ब्रजभाषा हमारी सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक धाती है और हमारे लिए निरन्तर प्रेरणा की स्रोत है। इसका संरक्षण एवं संवर्द्धन करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है तथा हमारे किन्हीं क्षुद्र स्वार्थों एवं दलगत राजनीति के कारण इस पुनीत भाषा के कार्य को हानि नहीं पहुंचनी चाहिए। भूतकाल में जो भी हुआ हो, किन्तु मण्डल के लिए भूमि अधिग्रहण हो जाने से एक बड़े अभाव की पूर्ति हो गई है। मण्डल के अध्यक्ष महोदय तथा

प्रधानमन्त्री महोदय इस सफलता के लिए बधाई के पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि मण्डल के भूमि एवं भवन उपलब्ध हो जाने से ब्रजभाषा का एक आदर्श पुस्तकालय एवं शोधकेन्द्र की स्थापना हो सकेगी तथा ब्रजभाषा के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए मुद्रणालय की सुचारु व्यवस्था हो सकेगी।

प्रधानमन्त्री जी द्वारा मुझे ज्ञात हुआ है कि मण्डल की ओर से राजधानी में एक लोक-साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है जिसकी सफलता के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में कुछ स्थायी साहित्य का निर्माण हो सकेगा। मण्डल के अधिकारियों का यह प्रयत्न निःसन्देह श्लाघनीय है।

आप महानुभावों द्वारा रचित कविताओं एवं साहित्य का कुछ रसास्वादन करने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। ब्रजभाषा में अभी तक शृङ्गार एवं वात्सल्य और भक्तिरस के साहित्य का प्राधान्य रहा।

शृङ्गारी चेतकवि काव्ये जाते रसमयं जगत्। स एव वीतरागश्चेत्तरीरसं निखिलं भवेत् ॥

और इसी प्रकार के शृङ्गारी एवं रसिक कवियों के सरस काव्यों ने ब्रजभाषा को रसमयी, कोमल एवं मधुरतम भाषा का प्रतिष्ठित पद प्रदान किया है। महाभारत के युद्ध के प्रणेता योगीराज भगवान् श्रीकृष्ण के शिशुकाल के वात्सल्यमय गीतों एवं युवाकाल के शृङ्गार रसमय काव्यों की तो ब्रज साहित्य में प्रचुरता से भरमार है किन्तु उनके वीरत्व, पौरुष एवं योग और साधना से तप्त और देदीप्यमान स्वरूप से सम्बन्धित साहित्य एवं काव्य का ब्रजभाषा में लगभग अभाव सा ही है। साहित्यकार एवं कवि ये दोनों ही युगदृष्टा कहे जाते हैं और इन्होंने अतीतकाल से ही सदैव समाज, जनता तथा राजाओं और सम्राटों का भी मार्गदर्शन किया है। इतिहास में ऐसी अनेकों घटनाएँ वर्णित हैं जिनमें कवि की एक कविता ने भविष्य के इतिहास को पलट कर रख दिया है। वह काल तो अभी वर्तमान युग ही है जब राष्ट्र को आतताइयों द्वारा पददलित होता देख-देश के कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी सारी शक्ति राष्ट्र को एकता के सूत्र में आबद्ध कर शत्रुओं से मोर्चा लेकर देश को दासता से मुक्त कराने वाली वीररसपूर्ण रचनाओं में लगा दी। साहित्यकारों एवं कवियों की लेखनी में वह शक्ति निहित है जो तोप, तलवार एवं परमाणु अस्त्रों तक को कुण्ठित कर सकती है।

गाजियाबाद ब्रज साहित्य मण्डल की ओर से मैं आपका पुनः हार्दिक स्वागत करता हूँ। यहाँ उन अपने बन्धुओं का मैं धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने बड़ी लगन और तत्परता से इस अधिवेशन का बीड़ा उठाया है। स्वागताध्यक्ष एवं समस्त स्वागतसमिति का मैं आभारी हूँ।

अन्त में विनीत भाव से अपनी त्रुटियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हूँ तथा आशा करता हूँ कि आप उदारमना महानुभाव हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

विनीत

हिरालाल गोयल

अध्यक्ष (गाजियाबाद केन्द्र)

अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल।

२६ जून १९६८

अ० भा० ब्रज साहित्य, मंडल के पन्द्रहवें अधिवेशन के अध्यक्ष

बाबू वृन्दावन दास का भाषण

परमादरणीय बन्धुओं और देवियों ।

ब्रजसाहित्य मण्डल के अधिवेशन में उपस्थित आप सब भाइयों और बहनों को सम्बोधित करने में मुझे परम हर्ष का अनुभव हो रहा है । पाँच वर्षों की लम्बी अवधि में हिन्दी और ब्रज भाषा के अनेक मूर्धन्य साहित्यकार दिवंगत हो चुके हैं । दिवंगत महानुभावों में श्रद्धेय गुलाबराय जी, डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल, पद्मश्री डा० हरिशङ्कर जी शर्मा और पं० श्री कृष्णदत्त जी पालीवाल तो ब्रजसाहित्य मण्डल के अध्यक्ष पद पर पर भी आसीन रह चुके थे । इन सब महान आत्माओं को मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ । इन विभूतियों की स्मृति के सम्मानार्थ मण्डल जो भी व्यवस्था करे उसमें इनके तैलचित्रों से मण्डल भवन को सुसज्जित करना न्यूनतम होगा ।

सर्वप्रथम मैं मण्डल के सदस्यों का अत्यधिक आभारी हूँ जिन्होंने इस गुह्यतर कार्यभार को उठाने के लिए सक्षम समझकर मुझे अध्यक्ष पद के लिए निर्वाचित किया । मैं श्रद्धेय कमलापति जी त्रिपाठी का भी बहुत कृतज्ञ हूँ जिन्होंने परोक्ष रूप से, अध्यक्ष पद के लिए मेरा ही समर्थन किया है । उन्होंने अपने पत्र में कुछ तथ्यों की ओर इंगित किया है । कदाचित् उन्होंने मण्डल के विगत इतिहास की जानकारी के आधार पर अध्यक्ष पद के लिए किसी उस उच्च व्यक्ति की अपेक्षा जो मण्डल कार्यालय से दूर रहते हैं और सार्वजनिक जीवन में अत्यन्त प्रतिष्ठित होने के कारण व्यस्तताग्रस्त हैं उस व्यक्ति को अधिक उपयुक्त समझा है जो स्थानीय हो और जो मण्डल के दिन-प्रतिदिन कार्य-कलापों में अधिक व्यक्तिगत योगदान दे सके । मैं नहीं समझता मैं त्रिपाठी जी की कल्पना को कहाँ तक साकार कर पाऊँगा और उस विश्वास के योग्य बन भी पाऊँगा या नहीं जो सदस्यों ने मुझ पर किया है । हाँ, एक बात मैं अवश्य दृढ़ता के साथ कहना हूँ कि यदि आपका अलम्य सहयोग एवं सौहार्द मुझे प्राप्त होता रहा तो कदाचित् आपको शिकायत का मौका न रहेगा ।

ब्रज-संस्कृति का उद्भव भगवान् श्रीकृष्ण के लीलामय व्यक्तित्व से हुआ था । श्री कृष्ण की समस्त लीलागाथाएँ और उनका महात्म्य ब्रज-भाषाकाव्य में संगृहीत है । श्री कृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व से सम्बन्धित होने के कारण ब्रजभाषा में एक विशिष्ट प्रकार की मनोहरता और सरसता का समावेश हो गया । कविरत्न सत्यनारायण ने इसे बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

बरन बरन में मोहन की प्रतिमूर्ति विराजत ।

अक्षर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत ॥

सुरपद बरन सुभाव विविध रसमय अति उत्तम ।

शुद्ध संस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम ॥

किसी समय में ब्रजभाषा समस्त उत्तर भारत की प्रचलित भाषा थी और वही शुद्ध, सुसंस्कृत, तथा विद्वानों की भाषा समझी जाती थी । इतर भाषा जिसका रूप एक बेढंगी खड़ी

बोली का सा था निम्न स्तर की भाषा समझी जाती थी। उस समय महत्वपूर्ण कागजात (पत्रादि) ब्रजभाषा में ही लिखे जाते थे। उस समय की ब्रजभाषा का वर्णन करते हुए कविरत्न सत्यनारायण ने ठीक ही लिखा था—

देश काल अनुसार भाव निज व्यक्त करन में ।
मंजु मनोहर भाषा या सम कोउ न जग में ॥
ईश्वर मानव प्रेम दोउ इक संगसिखावति ।
उज्ज्वल श्यामल धार जुगल यों जोरि मिलावति ॥

परन्तु काल के प्रभाव से अब ब्रजभाषा की वह स्थिति नहीं है। राष्ट्रभाषा के रूप में उसका स्थान हिन्दी ने ले लिया है। इस पर भी ब्रज भाषा और हिन्दी का ऐसा अविच्छिन्न सम्बन्ध है कि हिन्दी के हित के ही लिये ब्रजभाषा के संरक्षण, संवर्द्धन और उन्नयन की आज उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि पहले किसी काल में थी। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति राम और कृष्ण के बिना निष्प्राण है उसी प्रकार ब्रजभाषा साहित्य के बिना हिन्दी। चूँकि राम और कृष्ण का प्राकट्य भारतीय महाकवियों द्वारा ब्रजभाषा के माध्यम से ही किया गया है ब्रजभाषा की अनिवार्यता स्पष्ट है। इसलिये ब्रजभाषा और हिन्दी का सम्बन्ध माँ बेटी का सा है। ब्रजभाषा और हिन्दी में किसी प्रतिस्पर्धा अथवा प्रतिद्वन्दिता का कोई प्रश्न ही नहीं है। ब्रजभाषा का उन्नयन हिन्दी के हित की बात है अहित की नहीं। ब्रजभाषा हिन्दी के साहित्य की भाषा है। यदि हिन्दी से ब्रजभाषा साहित्य निकाल दिया जाय तो रह ही क्या जाता है।

ब्रजभाषा साहित्य के प्रकाशन की ओर मण्डल को विशेष ध्यान देना है। बहुत सा उत्कृष्ट साहित्य अप्रकाशित पड़ा है। कुछ पुनरावृत्ति के अभाव में लुप्त होता जा रहा है। कुछ ब्रजभाषा काव्य ऐसा है जिसको यदि अर्थ सहित छापा जाय तो उसकी उपयोगिता और लोक प्रियता बढ़ेगी। विगत सौ डेढ़ सौ वर्षों में ब्रजभाषा के कई महान कवि हो गये हैं जैसे ग्वाल, नवनीत, सत्यनारायण, लालबलवीर, श्रीधर पाठक और जगन्नाथ दास रत्नाकर आदि। इन कवियों की रचनाएँ बड़ी उत्कृष्ट हैं। इनके ग्रन्थों का प्रकाशन होना ही चाहिये। एक-एक कवि की अलग-अलग ग्रन्थावली प्रकाशित होनी चाहिये। रचनाओं का जहाँ आवश्यक हो अर्थ भी देना चाहिये अन्यथा पादटिप्पणी तो होनी ही चाहिये जिससे कठिन और अप्रचलित शब्दों का अर्थ भी पाठकों को बुद्धिगम्य हो जाय।

अन्तर्जनपदीय परिषद—

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में “जनपदों की भाषाएँ तो साहित्य की साक्षात् कामधेनुएँ हैं। उनके शब्दों से हमारा निरुक्ति शास्त्र भरा पूरा बनेगा। हिन्दी शब्द निरुक्ति जनपदों की बोलियों का सहारा लिये बिना चल नहीं सकती। जनपदों की बोलियाँ कहावतों और मुहावरों की खान हैं।” वास्तव में जनपदीय कार्य हिन्दी के भंडार को समृद्ध करने का एक बड़ा शक्तिशाली साधन है। कुछ समय पूर्व एक अन्तर्जनपदीय परिषद की स्थापना हुई थी। परन्तु कुछ कारणों से उसका कार्य अग्रसर न हो सका। जनपद नामी पत्रिका के दो तीन अङ्क निकल कर रह गये और वह संस्था समाप्त हो गई। मण्डल का ध्येय जनपदीय परिषद के कार्य को पुनर्जीवित करने का है। उसके भावी कार्य-क्रम की रूपरेखा क्या हो इस पर ब्रजभारती के स्तम्भों में काफी चर्चा हो रही,

है। श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदी का आशीर्वाद तो हमें प्राप्त है ही। सर्व श्री कृष्णानन्द गुप्त डा० श्याम परमार, डा० सत्येन्द्र, श्यामसुन्दर वादल शास्त्री, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, डा० अम्बा-प्रसाद सुमन, रामनारायण उपाध्याय, गणेश चौबे आदि महानुभावों ने सक्रिय सहयोग प्रदान करने के अश्वासन भी दिये हैं। श्री कृष्णानन्द जी गुप्त का मत है कि इस कार्य का समारम्भ हिन्दी की स्थानीय भाषाओं (dialects) के कोशनिर्माण से किया जाय। एक पत्रिका निकालने की योजना बनना भी इसकी समस्या का दूसरा अंग है। मण्डल एक लोकसाहित्य सम्मेलन बुलाने की रूपरेखा बना चुका है। आशा है यह सम्मेलन बहुत ही शीघ्र दिल्ली में आयोजित होगा। हमारे प्रधानमन्त्री श्री जगदीशनारायण चतुर्वेदी उसका प्रारम्भिक कार्य लगभग पूरा कर चुके हैं।

हिन्द प्रचार-प्रसार :—

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भी मण्डल का सदैव से महान् योगदान रहा है और भविष्य में भी रहेगा। यह सर्वसम्मत सत्य है कि हिन्दी ही समस्त देश की राष्ट्रभाषा है। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उसकी निजी भाषा ही हो सकती है विदेशी भाषा कदापि नहीं। देश के दो तिहाई भाग में बोली जाने के कारण हिन्दी ही इस देश की राष्ट्रभाषा है और सदा रहेगी। देश के शेष एक तिहाई भाग में भी अधिकांश लोग टूटी-फूटी भाषा में इसे समझ बोल लेते हैं। इस विशाल देश में हिन्दी के प्रति केवल तमिलनाड में ही कुछ दुर्भावना परिलक्षित होती है। ऐसा मालुम होता है कि तमिलनाड की आत्मा को राजनीति ने दबोच रक्खा है। वहाँ के लोग हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी को चालू रखने का आग्रह करते हैं। उनको हिन्दी सीखना बोझ मालुम पड़ता है अंग्रेजी सीखना नहीं। यदि वे अपना दुराग्रह छोड़कर हिन्दी सीखना आरम्भ कर दें तो उनको शीघ्र ही विदित हो जायगा कि वे हिन्दी में अंग्रेजी से भी अधिक दक्षता प्राप्त कर सकते हैं और हिन्दी सीखना अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक आसान है। हिन्दी सरल है, सुबोध है उसमें वे सब गुण विद्यमान हैं जो अंग्रेजी में हैं। फिर कोई कारण नहीं कि उसको सीखने में इस देश के किसी भाग के निवासियों को कोई असुविधा हो। तथापि अहिन्दी भाषी लोगों की बात सदाशयता और सहानुभूति से सुनी जानी चाहिये और हमें चाहिये कि हम उनकी समस्त शकाओं का समाधान कर उन्हें हिन्दी के प्रति आकर्षित करें।

हमें रचनात्मक कार्य करके हिन्दी को इतना समर्थ और लोकप्रिय बना देना है कि उसके बिना देश के किसी भाग के निवासी का गुजारा ही न हो सके। यदि हिन्दी भाषी राज्यों के लोग निष्ठा पूर्वक हिन्दी का व्यवहार करने लगेंगे और हिन्दी के प्रति अपने पूर्ण औचित्य का पालन करेंगे तो देश के शेष भाग की जनता भी पीछे न रहेगी और हिन्दी को उसके अधिकारपूर्ण स्थान की प्राप्ति में कोई बाधा न होगी।

साहित्यकारों की समस्याएँ :—

पूर्वकाल में उच्चकोटि के कवि एवं साहित्यकार राज्याश्रित हुप्रा करते थे। वे अपने स्वामी के इच्छाओं की पूर्ति करते हुए साहित्य-सृजन किया करते थे। परन्तु आज स्थिति बदली हुई है। आज साहित्यकार दो प्रकार के हैं, प्रथम तो वे जो साधन सम्पन्न हैं और जिनकी कोई समस्या नहीं है और दूसरे वे जिनको अनेक समस्याओं ने घेर रक्खा है। सरकारी संस्थानों में काम करने वाले अथवा विश्वविद्यालयों में उच्च पदों पर आसीन कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जिनको

अपनी कृतियों के प्रकाशन में बाधाएँ उपस्थित नहीं होतीं और इनकी गणना प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में की जानी चाहिये । उनकी यह स्थिति उन्होंने अपनी विद्वत्ता के कारण ही बना पाई है इसमें कोई सन्देह नहीं है । दूसरी श्रेणी के साहित्यकार वे हैं जिनकी रचनायें उत्कृष्ट होते हुए भी धनाभाव के कारण नहीं छप पाती हैं । ऐसे लोग यदि सरकारी सहायता की बाट जोहते रहेंगे तो उनको सफलता प्राप्त करने के आसार बहुत ही न्यून हैं । हमारी राय में उन्हें स्वावलम्बन का मार्ग टटोलना पड़ेगा । कुछ समय की बात है केरल राज्य में लेखकों ने सहकारी समिति बनाकर आशातीत सफलता प्राप्त की थी । वह समिति अपने सदस्य लेखकों को चालीस प्रतिशत तक रायल्टी देती थी । इतनी रायल्टी विश्व की किसी प्रकाशन संस्था ने लेखकों को नहीं दी ।

आज के संघर्षमय युग में कोई कार्य यदि वह एक व्यक्ति के द्वारा किये जाने के बजाय १०, २० समानशील व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप से सम्पन्न हो तो उसमें सफलता की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं । यदि बीस या इससे अधिक समानकर्मी और समानधर्मी लेखक सहकारिता के आधार पर सुसाइटियाँ बनावें तो उनकी आर्थिक क्षमता इतनी हो सकती है कि वे न केवल प्रेस खोल सकते हैं अपितु पत्रिका एवं पुस्तकें भी निकाल सकते हैं । यदि सभी सदस्य मिलजुल कर काम करते हैं और अपने निजी स्वार्थों की अपेक्षा समिति के हितों का ध्यान रखकर प्रयत्नशील होते हैं तो कोई कारण नहीं कि सफलता प्राप्त न हो । विदेशों में इस प्रकार की सहकारी समितियाँ बड़ी संख्या में बन चुकी हैं और उन्होंने संख्यातीत पुस्तकें प्रकाशित कर न केवल अपने सदस्यों को लाभान्वित किया है वरन् साहित्य के भंडार की भी वृद्धि की है । परन्तु इसके साथ ही यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि सहकारिता कोई जादू की छड़ी नहीं है, कार्यों की सफलता आवश्यक निष्ठा और श्रम के बिना असम्भव है । सहकारिता तो एक पद्धति है जिसके द्वारा विखरी हुई शक्ति का संचय किया जाता है तथा व्यवसाय की सफलता के लिए आर्थिक व्यवस्था, दक्षता और श्रमशीलता को समन्वित किया जाता है ।

ब्रज की सर्वाङ्गीण उन्नति :—

ब्रजसाहित्यमण्डल का ध्येय केवल ब्रज की साहित्यिक उन्नति ही न होना चाहिये, प्रत्युत उसका ध्येय तो ब्रज की सर्वाङ्गीण अर्थात् साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और औद्योगिक उन्नति होनी चाहिये । प्रत्यक्षतः ब्रजभूमि उपेक्षित रही है । श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने जो अद्यतन ब्रजभूमि के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्त्ता हैं अपने अग्रणी लेखों और भाषणों में ब्रजभूमि की सर्वाङ्गीण उन्नति की आवश्यकता की ओर जनता और सरकार का ध्यान आकर्षित किया है । किस प्रकार यहाँ के वन उपवनों का ह्रास हुआ तथा अनेक वृक्ष काटे गये, किस प्रकार हम यहाँ के साहित्यिक और देशभक्त कार्यकर्त्ताओं को भूल गये, उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने और उनकी कीर्तिरक्षा की कितनी महती आवश्यकता है इस पर तो वे सदैव जोर देते रहे हैं । ब्रज प्रान्त निर्माण से यदि ब्रज की सर्वाङ्गीण उन्नति हो सके तो हमें उसके लिये भी प्रयत्नशील होना पड़ेगा ।

एक बात और विचारणीय है । विशाल हरियाणा अथवा दिल्ली प्रदेश के निर्माण की चर्चाएँ राजनीतिक क्षेत्रों में चलती हैं । उनमें ब्रज के ही भागों को काट छाँट कर उनमें सम्मिलित करने की बात सामने आती है । ब्रजसाहित्य मण्डल इस प्रकार के विभाजन अथवा पुनर्गठन के

विरुद्ध है । यदि वर्तमान उत्तरप्रदेश राज्य के पुनर्गठन की बात चलती है और यह एक निश्चित तथ्य के रूप में सामने आता है तो इसका परिणाम ब्रजप्रदेश के नाम से एक नये राज्य के निर्माण के रूप में होगा अन्यथा कुछ नहीं । हम नहीं चाहते कि हमारे खण्ड-खण्ड करके उनको इस या उस प्रान्त में शामिल करके हमारे अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया जाय ।

सार्वजनिक संस्थाएँ :-

सार्वजनिक संस्थाओं को अधिक सफलतापूर्वक चलाये जाने के विषय में मेरे कुछ सुझाव हैं जिनको यहाँ मैं मूलरूप से बिना भूमिका बांधे प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता । बहुत सी उपयोगी सार्वजनिक संस्थाएँ विशेष रूप से साहित्य संस्थाएँ घनाभाव के कारण बिना पनपे रह जाती हैं । यह दोष तभी दूर हो सकता है जब हमारे धनी मानी बन्धु अपनी दान शीलता को एक नया मोड़ दें । मन्दिर देवालय और धर्मशालाएँ तो बहुत बन चुकीं अब हमें कुछ अपनी उन संस्थाओं को आर्थिक सहायता पहुँचाना है जिनका ध्येय हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नति करना है । हमें अपने साहित्य और संस्कृति को जीवित और प्रवहमान रखने के लिये कुछ योगदान तो करना ही है । शुचिता और पुण्य की भावना से भी यह कार्य किसी अन्य कार्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

दूसरा दोष जो मुझे सार्वजनिक संस्थाओं की उन्नति में बाधक प्रतीत होता है वह है कार्यकर्त्ताओं में सोहार्द की कमी तथा कहीं-कहीं आपसी वैमनस्य । हमने पश्चिमी सभ्यता की जिन बातों का अन्धानुकरण किया है उनमें पश्चिमी विचार-स्वातन्त्र्य की भावना का सबसे ज्यादा दुरुपयोग किया है । हम अपने विचार स्वातन्त्र्य की भावना के आवेश में सभा सुसाइटियों में खुलकर वाक्युद्ध करते हैं और संस्थाओं के हित को बालाएताक रख ऐसी कटुता उत्पन्न कर देते हैं कि संस्था की उन्नति तो दूर वे अकाल ही काल कवलित हो जाती हैं । मेरे नम्र विचार से सामाजिक, नागरिक और साहित्यिक हितों का संबद्धन करने वाली संस्थाओं में विघटनकारी अनन्त मतभेदों की गुंजायश है ही नहीं । इन संस्थाओं में तो प्रेम और सोहार्द के आधार पर जनहित में ठोस काम करने का एक अवसर प्रस्तुत होता है जिसका कि मुख्य लक्ष्य को दृष्टि में रख कर हमें भरपूर उपयोग करना चाहिये ।

ब्रज साहित्य मण्डल

डा० सत्येन्द्र के शब्दों में ब्रजसाहित्य मण्डल का आह्वान पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी द्वारा किया गया माना जाता है । इस मण्डल की स्थापना के पूर्व वे विविध क्षेत्रों में साहित्य मण्डलों की स्थापना का आन्दोलन चला रहे थे और उसी प्रसंग में उन्होंने ही सर्वप्रथम इस क्षेत्र में ब्रजसाहित्य मण्डल की स्थापना की माँग की थी । मण्डल सन् १९४० में स्थापित हो गया और कुछ समय बाद उसे अखिल भारतीय स्तर की संस्था होने का गौरव भी प्राप्त होने लगा । आप मुझे क्षमा करेंगे जिन आशाओं को लेकर मण्डल की स्थापना की गई होगी वे आशाएँ अधिक फलवती नहीं हुईं । मण्डल का इतिहास एक नियमित, सुसंगठित और निश्चित कार्यक्रम वाली प्रगतिशील संस्था का सा न हो पाया । विशेष व्यक्तियों के सान्निध्य और सहयोग से इसमें कभी-कभी अच्छे काम हुए किन्तु वह एक नियमित और शृङ्खला बद्ध प्रगति के सूचक न थे । जिन व्यापक और पुनीत उद्देश्यों को लेकर इस साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था का निर्माण किया गया

था उनको दृष्टि में रखकर इसका विकास हिन्दी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारणी सभा जैसी संस्थाओं की कोटि और सीमाओं तक पहुँच जाना चाहिये था। इसके कारण कुछ भी रहे हों परन्तु यह तो स्पष्ट है कि हम जनता और सरकार का इस संस्था के प्रति सौहार्द अथवा आर्थिक सहयोग उस मात्रा में प्राप्त करने में विफल रहे जिसमें कि वह इस संस्था की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर अपेक्षित था। ब्रज, ब्रजसंस्कृति और ब्रजसाहित्य की प्रतिनिधि संस्था होने के कारण इस संस्था का महत्व उपरोक्त दोनों संस्थाओं से कदापि कम न था।

परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हो गई कि मण्डल का पूरा विकास भी न हो पाया था कि उसमें भँवर गतिरोध उत्पन्न हो गया। भूमि का अधिग्रहण भी न हो पाया था कि उसमें राष्ट्रपति द्वारा उद्घाटन समारोह भी मना लिया गया। कार्यालय की व्यवस्था ठीक न थी। आर्थिक प्रबन्ध का हर दिशा में अभाव था सदस्यों में भी पारस्परिक सौहार्द न था। ऐसी अस्त व्यस्त दशा में जो होना था वही हुआ। परन्तु मण्डल के इस संकट काल में गाजियाबाद के साहित्यिक बन्धु ही काम आये। उन्होंने सन् १९६३ में गाजियाबाद में अधिवेशन बुलवाया। उस अधिवेशन में श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा अध्यक्ष तथा मैं उपाध्यक्ष चुने गये। इन पाँच वर्षों में मैं वह तो नहीं कहता कि मण्डल के स्थायित्व की दिशा में हमने कोई विशेष प्रगति की है परन्तु आत्मप्रशंसा का दोषी समझे जाने की जोखिम उठाकर भी मुझे आपको यह सूचित करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि ५ वर्ष के अनवरत परिश्रम और दौड़धूप के बाद गत ३० मार्च को भूमि अधिग्रहण के सिलसिले में आवश्यक राजकीय विज्ञप्ति हो चुकी है और अब भूमि पर मण्डल का स्वामित्व निश्चित है। ब्रजभारती भी पूरे तीन वर्ष से नियमित रूप से निकल रही है। छोटे-छोटे प्रकाशन भी शुरू किये गये हैं। साहित्यिक गोष्ठियाँ भी महत्वपूर्ण अवसरों पर होती रहती हैं। परन्तु विकास के मुख्य कार्य जैसे ब्रजसाहित्य की खोज और उसकी रिपोर्ट, ब्रजसाहित्य का प्रकाशन, कार्यालय की स्थापना, एक सुन्दर पुस्तकालय का निर्माण, शोधार्थियों के लिए व्यवस्था और उनके आवास के लिए अतिथिगृह आदि तो अभी करने शेष हैं ही। वर्तमान भूमि और उस पर बना भवन भी बड़ी शोचनीय दशा में है। वर्तमान भवन का पूर्णरूप से स्वामित्व ग्रहण कर लेने के बाद मण्डल को उसका जीर्णोद्धार भी कराना होगा, खाली भूमि पर निर्माण कार्य की अपेक्षा तो है ही।

बन्धुओं। हमारे आगे काप बहुत है, उसका आकार और महत्व भी बड़ा गम्भीर है। आइये, प्रेम की भावना से कुछ करते हुए आगे बढ़ें जिससे हमें अपने किये पर कुछ सन्तोष हो और जनता का हो हित साधन।

इस अधिवेशन को इतने अत्यल्प नोटिस से जून में ही सम्पन्न कराने का मुख्य श्रेय मण्डल के प्रधानमन्त्री श्री जगदीश नारायण चतुर्वेदी को है। गाजियाबाद के साहित्यिक बन्धुओं की तो हम कहाँ तक प्रशंसा करें, उनका सहज स्नेह और सौहार्द तो हमें सदा से ही सुलभ है। पाँच वर्ष बाद अधिवेशन को पुनः यहाँ ही आमन्त्रित करना उनके प्रबल प्रेम और उत्साह का परिचायक है। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ तथा अपने मन्त्रिमण्डलीय समस्त सदस्यों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जो अपने निरन्तर सहयोग से मण्डल की प्रगति में सहायक हुए। धन्यवाद।

ब्रज साहित्य का इतिहास (समीक्षा)

(श्री रमेशचन्द्र दुबे एम. ए. आगरा)

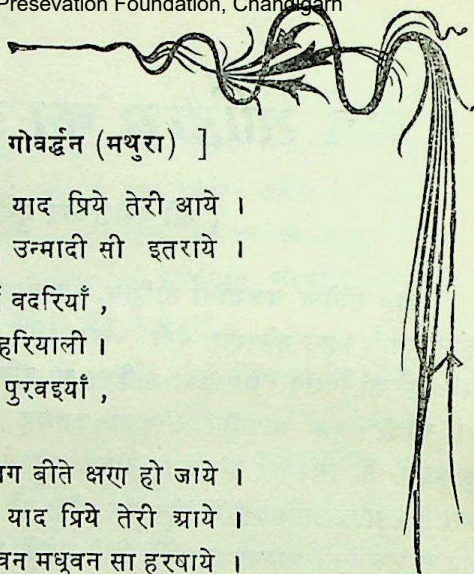
डा० सत्येन्द्र ब्रजभाषा साहित्य, ब्रज-संस्कृति एवं लोक-साहित्य के जाने माने विद्वान् हैं। उन्होंने अपनी गहन गवेषणा, पैनी परख और विशद् अध्ययन एवं चिन्तन-मनन के फलस्वरूप ७८१ पृष्ठ का विशद् “ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास” प्रस्तुत करके हिन्दी-जगत् की अतुलनीय सेवा की है। ब्रज भारतीय संस्कृति का वह उद्गम स्थल है, जहाँ से कृष्ण-भक्ति की अजस्र अमृतधारा ने निरन्तर प्रवाहित होकर पूरे भारतीय मानस और वाङ्मय को सतत् प्रभावित किया है। अतः उस प्रदेश में और उस प्रदेश की साहित्यिक भाषा में रचित साहित्य का रूत्रबद्ध इतिहास एक ऐसी आवश्यकता थी, जिसे अकेले सत्येन्द्र जी ने पूरा करके, एक बहुत महान् एवं वांछनीय कार्य किया है। उनकी यह शंका कि ब्रज-साहित्य को हिन्दी-साहित्य से अलग आँकने में वे कोई प्रान्तीय विवाद तो नहीं खड़ा कर रहे, निर्मूल है। ब्रजभाषा और उसका साहित्य समस्त हिन्दी जगत् का ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं का अपना साहित्य है और उसके प्रभाव को भारतीय वाङ्मय की आत्मा में प्रतिफलित देखने के लिये ब्रजभाषा-साहित्य के इस विशद् इतिहास की उपयोगिता विवाद से परे है।

राजस्थान के लोग गीतों में, जैन-साहित्य, बिहार, बंगाल, गुजरात आदि दूरस्थ प्रदेशों में प्राप्य ब्रज-साहित्य की जिन दिशाओं का इङ्गित इस इतिहास में सत्येन्द्र जी ने किया है उससे ब्रज-साहित्य के विशाल परिवेष्ट की एक नई भाँकी मिलती है। “ब्रजबुली” साहित्य का भी क्रमिक इतिहास एक आवश्यकता है जिसकी ओर सत्येन्द्र जी ने सटीक इङ्गित किया है। इससे ब्रज-साहित्य की सीमाएं बंगाल से आगे नेपाल और असम तक फैली दिखाई देंगी। मिश्रित ब्रज का का यह कृष्ण भक्ति साहित्य भी हमारी अपनी ही चीज है जिसका सङ्कलन और मूल्याङ्कन हिन्दी की नई पीढ़ी को करना चाहिए।

राजस्थान के ब्रजभाषा साहित्य के ग्रन्थों में कितने रीति ग्रन्थ हैं और कितने रीतिमुक्त, इनका सांख्यिक विवेचन प्रस्तुत करके सत्येन्द्र जी ने एक पुरानी मान्यता को जो चुनौती दी है, वह भी उस काल के साहित्य को सही अर्थों में निरखने परखने की दिशा में एक सही दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

इस इतिहास में सामग्री की भर्रिता यह सिद्ध करती है कि ब्रजभाषा-साहित्य के विस्तार का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए अभी बहुत क्षेत्र खुला पड़ा है जिसमें काम करके हमारे विश्वविद्यालयों के स्नातक हिन्दी की सीमाओं और उजकी प्रभूत साहित्यिक सम्पदा को पाठकों के समक्ष लाकर, हिन्दी का महान् उपकार कर सकते हैं। सत्येन्द्र जी की जीवन भर की शोध से संचित ज्ञानराशि से जो यह सन्दर्भ ग्रन्थ हमें उपलब्ध हुआ है वह निश्चितरूप से शुक्ल जी के इतिहास की तरह आने वाली पीढ़ियों के लिए शास्त्र ग्रन्थ सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

व्याकुल मधुवन



[श्री जगदीशचन्द्र गोयल, गोवर्द्धन (मथुरा)]

जब रिम भिम वरसे बदरा, याद प्रिये तेरी आये ।
कल-कल करती जब नदियाँ, उन्मादी सी इतराये ।

उमड़ घुमड़ घिरें वदरियाँ ,

धरा पर भूमे हरियाली ।

पवन चले जब पुरवइयाँ ,

बोले कूह, कोयल काली ।

लता लिपटें तरुवर से, सजग बीते क्षण हो जाये ।

रिम भिम जब वरसे बदरा, याद प्रिये तेरी आये ।

खिलते देख रंग विरंगी कली, वन मधुवन सा हरपाये ।

गुंजन करता उड़े भंवरा, मद तपोवन में छा जाये ।

इत उड़े लोलुप चंचरीक ,

उत कलियों पर तितलियाँ ।

विहस विहस जलसुत भूमें ,

पा अलि, समेट ले पंखुरियाँ ।

पीह पी पपीहा बोले, सावन से घन मडराये ।

रिम भिम जब वरसे बदरा, याद प्रिये तेरी आये ।

कुंज निकुंज वन उपवन की, डाली डाले गलबाहें ।

उमड़े जब पोखरिया नाले, मिलने नदियों से जाये ।

भर भर करते भरने भरें ,

मृगछोना भरे चोकड़िया ।

पुलकित होकर मृग देखें ,

हरी भरी फुलवारियाँ ।

मन मयूर नाच उठे जब, पाँख सारंग सी फड़ फड़ाये ।

रिम भिम जब वरसे बदरा, याद प्रिये तेरी आये ।

बूंदें नन्हीं - नन्हीं गिरें, झकोरे पवन के आये ।

मन्द-मन्द शीतल हवा में, पंछी गगन में उड़े जाये ।

दामनी तड़के, बदरा ,

गरजे, अन्धियारी घिर आये ।

उमड़ घुमड़ मेघा वरसे ,

घायल पंछी कित जाये ।

हरी घी देख गिरवर पर, व्याकुल मधुवन हो जाये ।

रिम भिम जब वरसे बदरा, याद प्रिये तेरी आये ।

नवनीतलाल के काव्य पर एक दृष्टि

(श्री रामनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०)

बीसवीं शताब्दी विज्ञापन का युग है। आजकल कृतियों का मूल्य कनवैसिंग की कसौटी पर आँका जा रहा है। कवि या लेखक की कृतियों की श्रेष्ठता और उपादेयता की कीमत भड़काने वाले चित्रों और ऐंटिक कागज पर छपी हुई थर्डक्लास वस्तुओं से कम लगाई जा रही है। आत्मिक प्रशंसा का बाजार गर्म है। इस 'टका सेर भाजी टका सेर खाजा' के जमाने में यदि 'विशाल भारत' के कितने ही पाठकों ने अखवारी दुनियाँ से दूर रहने वाले स्वर्गीय कविवर नवनीत लाल जी का नाम न सुना हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। नवनीत जी ब्रजभाषा उपवन के एक सुविकसित पुष्प थे, जो लोगों की नजरों से दूर-एकान्त में खिले और खिलकर आसपास की क्यारियों को सुवासित करके मुर्झा गए; पर इस पुष्प में वह सुगन्धि थी और है, जो किसी भी साहित्य प्रेमी सहृदय को आज भी मतवाला बना सकती है। ब्रजभाषा के इस 'उजड़े दयार' में उनका दम गनीमत था। वे इस उठती महफिल की रौनक थे। और उन सुकवियों और आचार्यों की, जिनकी वंदीलत हिन्दी-जगत आज भी गौरवान्वित है, बची-खुची यादगार थे। दुर्दैव काल ने उनको भी हमारे बीच में न रहने दिया—

“ता सहर वह भी न छोड़ी तू ने ऐ वादे-सवा;
यादगारे रौनके महफिल थी परवाने की खाक।”

नवनीत लाल जी की जीवनी-सम्बन्धी घटनाओं पर यहाँ प्रकाश डालने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रथम तो वे अपनी कविता में स्वयं उपस्थित हैं, और दूसरे ब्रजभाषा के अनौखे पारखी और अनेक लुप्त और छिपे हुए रत्नों को प्रकाश में लाने वाले विद्वद्वर स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी शर्मा अपने एक लेख में उनका जिक्र भी कर चुके हैं। उनके लिखे हुए विषय पर मजमून बाँधना, कलम उठाना, मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए हिमाकत होगी। कविवर नवनीत लाल जी का जन्म मथुरा में एक प्रतिष्ठित चतुर्वेदी-कुल में हुआ और उनके जीवन का अधिकाँश भाग वहीं बीता। एक तो ब्रजभाषा के केन्द्र में लगातार रहने के कारण और दूसरे चतुर्वेदी होने के नाते नवनीत जी विशुद्ध ब्रजभाषा लिखने में सफल हुए। अपने गुरु श्री गंगादत्त जी से संस्कृत छन्द शास्त्र और काव्य सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ लेने के कारण उनकी कविता में उनके विशाल अध्ययन की छाप लगी हुई है। एक समय सोरों में गंगास्तान करते समय स्व० गंगादत्त जी ने अपने शिष्य को कविता का मन्त्र प्रदान किया, जिसके जप के प्रभाव से आप में सच्चा कवित्व उत्पन्न हुआ। आपकी कविता का श्रीगणेश श्री गणेश जी की वंदना से हुआ—

“वन्दत श्री शिवसुवन प्रथम मंगल-स्वरूप कर,
लम्बोदर गजवदन सदन बुधि विमल वेष धर;
भालचन्द्र भुज चार पास अंकुश विचित्र कर,
रक्त मलय सिन्दूर अंग सोभित सु आखु पर;
मंजु मुकुत कुंडल प्रभा सुभग सुंद मोदक लिए,
प्रणत दीन 'नवनीत' उर सो प्रकाश कीजै हिये।”

नवनीत जी की कविता के विकास में गोस्वामी श्रीमान् बालकृष्ण कांकरौली वाले का आश्रय भी बहुत कुछ सहायक हुआ। प्रथम तो उपर्युक्त गोस्वामी जी स्वयं ही बड़े साहित्य-प्रेमी थे, और दूसरे उनकी विनम्रता, उदारता और कद्रदानी के कारण उस समय के कितने ही सुकवियों और विद्वानों का—जैसे श्रीमान् गट्टूलाल जी 'भारत-मातण्ड'—कांकरौली में जमाव रहता था। आये दिन कवि-सम्मेलन हुआ करते थे और कविता की चर्चा के बिना कोई दिन खाली न जाता था। इस कवितामय वायुमंडल में और इस वेफिक्री की जिन्दगी में नवनीत जी की प्रतिभा को विकसित होने का अच्छा अवसर मिला।

आपके बनाये हुए छोटे-मोटे कई ग्रन्थ हैं; पर अभाग्य से कितने ही या तो प्रकाशित ही नहीं हुए, या प्रकाशित भी होगये, तो आजकल प्रायः अप्राप्य हैं। सिवा इन ग्रन्थों के लगभग एक हजार स्फुट कवित्त, सबैया समस्या पूर्ति आदि होंगे, जिनमें से अधिकांश अप्रकाशित हैं। इन प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओं में नवनीत जी की विद्वत्ता, काव्य, कुशलता और साहित्यिक रसिकता भरी पड़ी है। इन कविताओं को पढ़ते-पढ़ते पाठक के हृदय में ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों का नक्शा खिंच जाता है; ब्रजभाषा के आचार्यों के काव्य के विषय में जैसी कुछ धारणा थी, उसका दिग्दर्शन हो जाता है। स्वयं नवनीत जी के शब्दों में—

“काव्य—कला—कुशल कवीश्वर कहावै वही,
युक्ति को विचार जुक्ति लावत नई-नई।”

का भली प्रकार समर्थन हो जाता है।

नवनीत जी की दृष्टि बड़ी व्यापक और पैनी थी प्राचीनता के पुजारी और अतीत के प्रशंसक होते हुए भी वे ब्रजभाषा को शृंगार के संकीर्ण दायरे में बन्द रखने के पक्षपाती न थे। किसी भी सहृदय सुकवि के लिए समय की गति और प्रवृत्तियों के प्रतिकूल चलना असम्भव है। नवनीत जी भी आधुनिक विचार-धारा से बिना प्रभावित हुए न रह सके। फलस्वरूप कवि का हृदय-समुद्र जो किसी नख से शिख तक अभूषित नायिका के मुखचन्द्र को देखकर उमड़ पड़ता है, वह एक दीन-हीन किसान की कष्ट दशा को देखकर अश्रु बहाता है—

“आशा करि पैलें पृथिवी को शुद्ध शोध कियो, पीछें बैल लाइकें सम्हारि हर जोते खेत;
'नवनीत' प्यारे बीज बोइकें पिआयो नीर, होति हरि आई आइ कीन्हीं चहुँघा सचेत।
कभू धूप कभू छाँह वादरि उमड़ि आवैं, कभू-कभू मन्द-मन्द पवन भूकोरें लेत;
आयो जब जीवन के जीवन को जोग तापै, बरसि-बरसि हाय वारिधर बोरें देत।”

पुनः वही कवि-हृदय देश की दीन दशा देखकर पराधीनता से मुक्त होने की आकांक्षा भी कर सकता है—

“रहेंगे न भैया पराधीन परदेसिन के, देसिन के हौसला तबै ही सरसायंगे।
'नवनीत' प्यारे जनता में प्रीत-नीति हुइहै, आपस में एकता के ब्याँत बन जायंगे।
पायंगे परम सुख सहज सुराज संध, विद्या वपु वारिध के घन बरसायंगे।
होंहिगे मनोरथ सुफल सब जीवन के, भारत की भूमि पै सबै ही बलि जायंगे।”

सं० २०२५]

नवनीतलाल जी के काव्य पर एक दृष्टि

[१६]

अवश्य ही उपर्युक्त रचनाओं में स्वर्गीय सत्यनारायण जी की अविचल देश भक्ति की छटा नहीं दिखाई पड़ती; पर साथ ही सुकवि 'रत्नाकर' की तद्विषयक रचनाओं की शिथिलता भी दृष्टिगोचर नहीं होती। भाव स्पष्ट हैं, सीधे ढंग पर; पर अनुप्रास और प्रवाह के साथ मतलब अदा किया गया है। फिर हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि ब्रजभाषा के काव्य में युग-परिवर्तन का कार्य कुछ सरल नहीं है और नवह हर एक ऐसे-गैरे नत्थू-खैरे का ही काम है।

नवनीत जी ने प्रेम पर काफी लिखा है और खूब लिखा है, पर आभास्यवश 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-रत्न' और 'स्नेह शतक' तीनों ही अप्रकाशित हैं। हमें दृढ़ विश्वास है कि इनके प्रकाशित होने पर ब्रजभाषा के विरोधियों का पुराना भ्रम—अश्लीलता का दोषारोपण—दूर हो जायगा। इस दिशा में नवनीत जी का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है। इस दृष्टि से हमारी तुच्छ सम्मति में 'स्नेह शतक' का एक विशेष स्थान होना चाहिए। विशुद्ध प्रेम का विश्लेषण जैसा कुछ यहां बन पड़ा है, वैसा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। इसमें कुल मिलाकर १०८ कवित्त हैं जो कल्पना की उड़ान और अर्थ-चमत्कार में एक दूसरे से बढ़कर हैं। सच तो यह है कि ब्रजभाषा के इतिहास में इन रचनाओं के ही आधार पर नवनीत जी का स्थान निर्धारित होगा। यहाँ 'स्नेह शतक' से दो-एक उदाहरण दिये बिना कलम आगे नहीं चलती—

“सुरस भिजोइ कुल कानि रेख खार देकें, आतम लगन जोग करिकें सफाई को;
'नवनीत' प्यारे अपवाद देगचा में भरि, विरहागि भट्टी पै चढ़ाई सुरसाई को।
आसा सिर छांति सुख-साबुन किनारें धोइ, करमनि की कुन्दी काम कलफ बुराई को;
ढूँढ़त उपाय हाय मन कपरा में लग्यौ, छूँटत न दाग ये सनेह-चिकनाई को।”

सनेह — (१) तेल, (२) प्रेम। सनेह चिकनाई का जैसा उत्तम निर्वाह यहाँ हुआ है, वह सहृदय काव्य मर्मज्ञ स्वयं अनुभव कर सकते हैं। और भी देखिये पतंग का रूपक दर्शनीय है—

“कागज महीन त्वच काम की कमानी जोर,
लगन पुछारो जाकी अजब मरोर है;
'नवनीत' अति ही मनोरथ उछाहन तें
अधिक बढ़ाई कीन्हों खलकत सोर है।
एतेपर बिपति वियोगनि को गोत खाय,
वचहूँ गये पै पेच परत सजोर; है
लीजिये उतारि करघन ते पियारी यह,
मो मन-पतंग की तिहारे। हाथ डोर है।”

'स्नेह—शतक' तो खाँड़ की रोटी है, जिधर से तोड़िये, उधर से मीठी। जरा शतरंज के रूप का भी मुलाहिजा हो—

“पल-पल प्यादिन के जोर डूँह ओरन तें, चोट हिय हाथिन की ओट बहनेपरे;
नैन तुरकीन की दिसान में डकैती देखि, सुरति सुतर भाग कौन गहने परे।
मन फरजीन की वकालती दगा दी किस्त, तख्त वादशाह छोड़ि मोन गहने परे;
हाय अब कौन तें फिराद करवेको 'नीत' प्यारी के वियोग शतरंज सहने परे।”

नवनीत जी के प्रेम में एक अपूर्व विदग्धता है— एक प्रकार का नैराश्य है, जिसका अनुभव प्रत्येक प्रेमी ने किया है। प्रेम की हार से खीजकर कवि दूसरों से सहानुभूति चाहता है; पर प्रेम का वह मंगलमय स्वरूप जहाँ सुख-दुःख, निराशा या सफलता का भेद-भाव नहीं रहता जहाँ प्रेमी अपने इष्ट से भिन्न अस्तित्व नहीं मानता—वह दिव्य—प्रेम प्रत्यक्षवादी (Realist) नवनीत जी के काव्य में स्थान नहीं पा सका। यहाँ प्रत्यक्ष ने आदर्श को दवा दिया है। परिणामस्वरूप यहाँ, शिकायत है, दुःख है और सनेह को धो डालने की इच्छा है—प्रेम के फदे में 'उलझकर सुलभ जाने' की आकांक्षा है।— कवि को खेद है कि 'सुरभि न जाने हाथ उरभनि नेह की'।

ब्रज में वंशीधर की वंशी ने बड़ा गजब ढाया है और विशेषकर विचारी गोपिकाओं पर। 'या ब्रजमंडल में रसखानि सो को भट्ट सुलट्ट नहि कीनी'। इससे ब्रजभाषा के कवियों ने बाँसुरी के प्रति बड़ा रोष प्रकट किया है; पर नवनीतजी ने बाँसुरी को चुप रहने के लिए बड़ी मीठी फटकार दी है—

ब्रज-जीवन-ओठन के तकिया कर फूलन सेज बिछावत है;
अति कोमल सुन्दर 'नीत' मनो अलकावलि पौन ढुरावत है।
अंगुरीन सों चांपत पाँइ जई तू तऊ मन माद ना लावत है;
इतने सुख सों मतवारी अरी बंसुरी तोहि नींद न आवत है।”

यद्यपि जमीन पुरानी है; पर नवनीतजी ने अपने काव्य चातुर्य से मौलिकता और नवीनता उत्पन्न करदी है। 'सेज अधरान पै सुआय कँ सनेह लाय नित ही पलोटेँ पाँब जाके यदुराइ री'— आदि में भाव का वर्णन मात्र और सो भी अधूरा ही हो सका है। कोई चमत्कार नहीं आ पाया; पर नवनीत जी के सबैये में जो शिकायत है, रसक है वह यहाँ कहाँ !

एक समय काव्य-चर्चा में श्रीमान् गट्टलाल जी भारत मार्तंड ने सुकवि सोमनाथ का प्रसिद्ध सबैया सुनाया और नवनीत जी से रूपक को पूरी तरह बाँवने का आग्रह किया। पाठकों के अव-लोकनार्थ दोनों सुकवियों के रूपक नीचे लिखे जाते हैं।

“चार निहारि तरैयनि की दुति लाग्यौ महा विरहा तन तावन;
ऐ 'ससिनाथ' सुजान सुनौ उन सूल गिनै नहि कंज से पावन।
पीत दुक्कल में फूलन लै अलवेली के प्रेम की सिद्धि बढ़ावन
कान्हू दिवारी की रैन चले बरसाने मनोज को मंत्र जगावन।” (सोमनाथ)

“अच्छत आनन्द फूल के फूल, सुचाह कौ चन्दन चौप चढ़ावन;
त्यों नवनीत जू लाग की लोंग उमंग सिन्दूर को रंग रचावन।
धावन धूप साँयोग सुगन्ध लै केगि-कपूर की जोति जुरावन;
कान्हू दिवारी की रैन चले बरसाने मनोज को मंत्र जगावन।” (नवनीत)

सोमनाथ जी के सुन्दर रूपक में उपचार का आभास मात्र ही दिया जा सका। सबैये के पूर्वाङ्क में वर्णित विरह ने सिद्धि की सामग्री के लिये गुंजाइश नहीं छोड़ी; पर प्रेम के ये पचड़े किस प्रेमी से छिपे हैं? नवनीत जी के यहाँ इस भर्ती की सामग्री के लिए स्थान कहाँ? पर मत-लब की-सिद्धि के लिये-सब आवश्यक वस्तुएँ हैं अच्छत, लोंग, धूप, सुगन्धि आदि। फिर 'केलि कपूर

की जोति जुरावन' की ज्योति के सम्मुख सोमनाथ जी का रंग फीका पड़ गया, बकौल पं० पद्मसिंह शर्मा, 'केलि-कपूर की जोति जुरावन' ने रूपक के रूप को चमका दिया। चार चाँद लगा दिए। गट्टूलाल जी इस उक्ति पर लट्टू हो गये.....

यहाँ नवनीतजी की अन्य रचनाओं के विषय में भी कुछ विचार करना उचित प्रतीत होता है। 'श्यामांगावयव भूषण' और 'कुब्जा पचीसी' ब्रजभाषा की प्राचीन प्रणाली पर लिखे गये हैं। पहली कृति में राधिकाजी के नख-शिव का वर्णन है, और दूसरी कुब्जा की ओर से गोपियों को करारा तुर्की-व-तुर्की जवाब है। 'गोरी-प्रेम-पियूष-प्रभाव' उत्तम कविताओं का एक संग्रह है। 'नवनीतोत्सव संग्रह' में ठाकुरजी के होलिकोत्सव का वर्णन है, और 'वैष्णवधर्म जो गद्य में लिखा गया है, मधुसूदनाचार्य के स्मार्त-धर्म का खंडन है। इनके इनके सिवा रहीम के लगभग एक सौ पच्चीस दोहों पर आपने कुंडलियाँ बनाई हैं, जो 'रहिमन शतक' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। इसी प्रकार 'मूर्खशतक' में दोहा छन्द में समाज की कुरीतियों और मूर्ख मनुष्यों की खिल्ली उड़ाई गई है। 'काव्य-प्रकाश' के कुछ अंशों का अनुवाद भी आपने किया था और अपने अन्तिम दिनों में पिंगल पर एक छोटा सा उत्तम ग्रन्थ भी लिखा। फुटकर छन्दों में आपने ऋतुओं पर खूब लिखा है, वसंत और पावस पर तो पच्चीस-पच्चीस से अधिक कवितें लिखे होंगे। उपर्युक्त ग्रन्थों के परिचय के लिए कुछ रचनाएं नीचे लिखी जाती हैं—

(१)

प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय;
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिर जाय।
आप पथिक फिर जाय जहाँ पै जगै न होई;
त्यों ही चखन चकोर चन्द तजि तकै न कोई।
कहि नवनीत पुनीत नीति की रासि रही फबि;
इन नैनन में बसी लसी वह प्रीतम छवि ।" (रहिमन शतक)

(२)

: 'अम्बर सिमाने तनै घटनि की फौज आई, पवन सवार धाये उतसाह भरि कै;
पचरंग चाप तें निसान फहरान लागे, धुरबा धुकार धौंसा बजै धरा धरिकै।
तुरही बजावै पिक चातक सुहावै नीति, गावत विरद भेखी उछरि-उछरि कै;
पावस नरेस को पयो है पसरवानौ आय, गौहरे ते ग्रीषम गयो है कूँच करि कै।"
(पावस पचीसी)

(३)

(केश वर्णन)

"रेसम के धारे हैं कि मनमथ जारे चारु; चतुर रिझारे हैं कि पन्नगी कुमारे हैं;
प्रीतम संभारे हैं कि प्रीति अधिकारे हैं कि घूम घुंघरारे हैं कसे सुरंग नारे हैं।
चित्त चाह दारे हैं सुगन्ध सींचि पारे हैं कि बेधा बुधिवान रचि पचि के सुधारे हैं।
नीत मृदुवारे हैं वियोग-ताप झारे हैं कि, तेरे केस बेस राधे श्याम सटकारे हैं।"
(श्यामांगावयव भूषण)

(४)

(तिल वर्णन)

“सोहत चिबुद चारु तरुनी तिहारें तिल, दिपत अलोल औ अनूप उपमा जाकी;
‘नवनीत’ प्यारे रूपसिन्धु के सुधाकर में, पियमन डूबि गयौ रंचक सिखा बाकी ।
कैधौ काम-कन्ज पै पर्यौ है अलि छौना एक, कीलि दियौ जोवन हनोज हृद है ताकी;
कैधौ प्रानप्यारी को बनाइकैं विलोक्यौ विधि, टपकि परी है कैधौ कलम विधाता की ।”

विस्तार-भय से अधिक रचनाएं देते हुए संकोच मालूम होता है । नवनीत जी की रचनाओं का पूरा आस्वादन तो तभी किया जा सकता है, जब उनकी प्रकाशित (पर अग्रप्य) तथा अप्रकाशित रचनाओं का एक सुसम्पादित संस्करण जनता के हाथ में पहुँच सके । अभी नवनीत जी को स्वर्गवासी हुए बहुत समय नहीं गुजरा । नवनीत जी के सुपुत्र श्री गोविन्ददत्त जी मारुगली मथुरा में निवास करते हैं । वे स्वयं सुकवि हैं— सज्जन और मिलनसार व्यक्ति हैं । उनसे सग्रह और सम्पादन कार्य में काफी साह्यता मिल सकती है । हमें आशा ही नहीं, विश्वास है कि नवनीत जी के अग्रणीत भक्तों, शिष्यों और मित्रों में कोई न कोई माई का लाल अवश्य निकल आवेगा, जो कविरत्नजी की कीर्ति रक्षा में सहायक हो, अपने कर्त्तव्य का पानन करे । यहाँ एक बात उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा कि स्वर्गीय रत्नाकर जी जैसे प्रतिष्ठित सुकवि नवनीत जी को गुरु मानने में अपना गौरव मानते थे । खेद का विषय है कि अपने अन्तिम दिनों में शय्याग्रस्त वृद्ध नवनीत जी को अपने प्रिय शिष्य रत्नाकर जी की दुःखद मृत्यु का शोक—समाचार भी सुनना पड़ा । जो शोकमय उद्गार उस समय निकले, वे ही उनकी अन्तिम रचना हैं । उसे उद्धृत कर इस लेख को बस करता हूँ—

“उत्तम अनन्य पुरुषोत्तम दुलारो और, अग्रवाल-वंस बीच हंस-तन धारो हो;
कहि नवनीत नवनीत से हृदय वारो, कविता उजारो कवि-ग्रन्थ रखवारो हो ।
चातुरी को चूरन सु सूर रस-माधुरी को, अवला बिचारी ब्रजभाषा को सहारा हो;
ओज कर मुदित मनोज सों सम्हारो भारो, वारो रत्नाकर हमारो प्रानप्यारो हो ।”*

विशाल भारत के फरवरी १९३५ के अंक से उद्धृत



* इस लेख की सामग्री के लिए मैं निम्नलिखित : सज्जनों का ऋणी हूँ— (१) स्वर्गीय नवनीत जी के सुपुत्र श्री गोविन्ददत्त जी, (२) श्री भगवानन्द जी चतुर्वेदी और (३) श्री चुन्नीलाल जी विशारद ?

वैष्णव भक्तों की दृष्टि में श्री राधा

(श्री कान्तानाथ गर्ग एम. ए., मथुरा)

वैष्णव भक्तों की दृष्टि में श्रीराधा श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं हैं। श्रीकृष्ण स्वयं रस रूप हैं। अपने रसास्वादन के लिए उन्होंने श्रीमती राधिका को प्रकट किया। भगवान् कृष्ण और पराशक्ति श्री राधा की लीलायें अप्रकट नित्य गोलोक वृन्दावन में निरन्तर होती रहती हैं। प्रकट वृन्दावन में वह कभी-कभी ही होती हैं। भगवान् की उपासनों के लिए भक्त को उनके साथ वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। यह सम्बन्ध स्वामी सेवक, सखा सुहृद, माता पिता और पुत्र तथा पत्नी के हो सकते हैं। सेवक स्वामी के सम्बन्ध में बहुत सामीप्य नहीं हो पाता। सखा सुहृद के सम्बन्ध में सामीप्य होता है, किन्तु तो भी विभिन्नता होती है। माता-पिता तथा पुत्र का सम्बन्ध और समीप का होता है। किन्तु पति पत्नी के सम्बन्ध में परस्पर कोई भेद नहीं रह जाता है। अतः, वैष्णव भक्तों ने यह सम्बन्ध चुना है। उसके अनुसार जीवात्मा पत्नी तथा परमात्मा पति है। इसका विपरीत सम्बन्ध भी हो सकता है। किन्तु भारत में उसकी मान्यता कभी नहीं हुई। हाँ, सूफी अवश्य परमात्मा को अपनी प्रेयसी के रूप में मानते हैं। तो वैष्णव भक्तों ने जीव को पत्नी और परमात्मा को पति माना है पत्नी पति से प्रेम करती है तो पति भी उससे प्रेम करता है। राधा कृष्ण के प्रेम में दिवानी है कृष्ण भी उसके प्रेम में पागल हैं। उसके तनिक से रुष्ट हो जाने पर अपनी सुब बुध खो देते हैं उसके चरण पकड़ कर उसे मनाते हैं। भगवान् भक्त को प्रसन्न करने के लिये व्याकुल रहते हैं।

वैष्णवों की राधा लौकिक नहीं वरन् पारलौकिक है। जब वह उनकी प्रेम लीलाओं का वर्णन करते हैं तब काम की गन्ध लेश मात्र भी नहीं रहती। काम में स्वसुख की भावना रहती है, प्रेम में स्व का वलिदान करके पर के सुख की भावना रहती है। जगती तल में भी दोनों अवतीर्ण होकर परस्पर प्रेम करते हैं। श्री राधा श्री कृष्ण से वय में बड़ी हैं। ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार वह किशोरी है और श्री कृष्ण शिशु हैं नन्द बाबा शिशु कृष्ण को किशोरी राधा की गोद में दे देते हैं। इतने पर भी यदि वैष्णव भक्त उनकी प्रेम लीला का वर्णन करते हैं जो श्रृंगारिक लगती है तो वह श्रृंगारिक नहीं है। वह उनके स्वयम् के भाव हैं जो माधुर्य उपासना कान्तोपासना के कारण हैं। हरि स्मरण उनका मुख्य ध्येय है और वह लीलायें केवल उन्हीं के सुनने के लिए हैं जिनमें हरि प्रेम है। श्री मद्भागवत की पंच अध्यायी का पठन पाठन केवल भगवान् को प्रेम करने वालों के लिये है। उसमें वर्णित लीलायें परलोक की अप्रकट लीलाओं का प्रकट रूपान्तर है। जयदेव ने अपने गीत गोविन्द के श्रवण के लिये जो दो शर्तें बतायी हैं उनमें से एक हरि के स्मरण से सरस मन है और दूसरी है विलास कला में कौतूहल। जयदेव विलासी कवि नहीं थे। उनकी आत्मा कृष्ण से अनन्य भाव से अनुरक्त थी। कृष्ण के दिव्य अनुराग में आसक्त होकर ही उन्होंने ऐसी अद्भुत काव्य रचना की थी। पार्थिव प्राकृत प्रेम से आकृष्ट कवि ऐसी रचना कर ही नहीं सकता है। यह अपार्थिव प्रेम के गायक का ही हृदयोद्गार हो सकता है। यही बात अन्य भक्त

कवियों की भी है। अष्ट छाप सभी कवि भक्ति में सराबोर थे। भगवान के प्रेम में दीवाने ही ऐसी सरस कविता कर सकते हैं। चैतन्य महाप्रभु तो स्वयम् श्रीमती राधिका के अवतार माने जाते हैं। अतः यदि कान्ता भाव के उपासकों में वह अग्रगण्य माने जाते हैं तो इसमें कोई विलक्षण बात नहीं है। उनके शिष्य गोस्वामियों ने तो राधा तत्व को विशेष दार्शनिक महत्व तथा आधार दे दिया है। रूप गोस्वामी के भक्ति रसामृत सिन्धु तथा उज्ज्वल नील मणि बड़े ही अनुपम ग्रन्थ हैं। भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति का सामान्य विवेचन तथा रसों का विस्तृत विवरण है। इसके लिए श्री राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं के उदाहरण दिये गये हैं। उज्ज्वल नीलमणि में माधुर्य रस का पूर्ण विवरण है। इसमें श्री कृष्ण को श्रृंगारात्मक मधुर रस का एक मात्र आलम्बन मानकर उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। श्री गोपाल भट्ट ने भक्ति के तत्वों का शास्त्रीय विवेचन बड़ी ही सुन्दरता से अपने ग्रन्थ तत्व दर्शन में किया था। यह दक्षिण देशीय ब्राह्मण थे किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु से आकृष्ट होकर श्री वृन्दावन में निवास करने लगे थे। वृन्दावन के श्री राधा रमण जी के मन्दिर में जिनका विग्रह विराज मान है, वह इन्हीं के उपास्य देव थे और कहते हैं कि शालग्राम के विग्रह से प्रकाशित हुए थे। उन्हीं के तत्व दर्शन को परिमार्जित किया जीव. गोस्वामी ने अपने भागवत सन्दर्भ में जिसे षड् सन्दर्भ भी कहते हैं। षड् सन्दर्भ में तत्व सन्दर्भ, भगवत सन्दर्भ, परमात्म सन्दर्भ, श्री कृष्ण सन्दर्भ, भक्ति सन्दर्भ तथा प्रीति सन्दर्भ नामक छः सन्दर्भ अथवा प्रकरण हैं। इनमें से अन्तिम तीन में राधा तत्व बड़े ही विस्तार से वर्णित है। भगवान में श्री कृष्ण में प्रीति ही रति है। रति अपने सुख के लिए अथवा केवल कर्तव्य समझ कर अथवा केवल प्रेम मात्र के सुख के लिए हो सकती है। गोपियों की रति श्री कृष्ण के सुख के लिये थी। श्री राधा के जीवन का एक मात्र लक्ष्य था भगवान को प्रसन्न करना, उनके हृदय में आह्लाद उत्पन्न करना, उनके चित्त में आनन्द का संचार करना। इसमें सम्भोग की इच्छा नहीं थी। भगवान कृष्ण गोपियों के प्रति इसीलिये आकृष्ट थे। वह कहते हैं, मैं तुमसे अपने अनन्त काल के जीवन में भी उन्मृष्ट नहीं हो सकता। राधा और कृष्ण में तो कोई भेद नहीं है। वे दोनों एक स्वरूप हैं, केवल रमण के लिये दो शरीर धारण किये हैं। ऐकाकी नैव रमते। अतः दो की आवश्यकता है। इस दृष्टि से यदि हम श्रीमती राधिका और श्री कृष्ण के सम्बन्ध को देखें तो वैष्णव भक्तों ने उनके सम्बन्ध में जो काव्य रचा है, गीत गाये हैं, उनका रहस्य हमारी समझ में आ जाता है। वह सब पारलौलिक लीलाओं के सम्बन्ध में है। उन्हें किसी ने अपनी वाह्य दृष्टि से देखा नहीं है, वह केवल भक्तों की अन्तर्दृष्टि से ही देखी जा सकती है और उन्होंने ही देखा है। श्रद्धा रहित नास्तिक व्यक्ति जिन लीलाओं में काम की गन्ध पाते हैं उन्हीं में एक श्रद्धालु आस्तिक भक्त अपने भगवान की उपासना का आलम्बन ढूँढते हैं। श्री राधा कृष्ण की लीलाओं का यही रहस्य है।



“दैत्य वंश” के प्रणेता—

स्व. कविवर हरदयालु सिंह

[श्री शिवदत्त चतुर्वेदी एम. ए. छिपेट्टी, इटावा]

हिन्दी साहित्य के वर्तमान गद्य काल में जब काव्य शास्त्र के नियमों से सर्वथा स्वतन्त्र अपनी नई प्रणाली पर ‘महाकाव्य’ लिखने की प्रकृति जोर पकड़ रही थी तब जिन कवि महोदय ने प्रचीन शास्त्रीय काव्य पद्धति पर “दैत्य वंश” नामक महाकाव्य का प्रणयन किया उन्होंने स्वर्गीय हरदयालु सिंह जी के कतिपय संस्मरणों को हम आज सुना रहे हैं। पुरातन प्रणाली के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए भी उन्होंने यह अभिव्यक्त कर दिया कि हमारी ब्रज-भाषा में आधुनिकतम प्रभावों को ग्रहण करने और समय के अनुसार हर दिशा की ओर मोड़ लेने की शक्ति विद्यमान है। उन जैसे अतिशय श्याम वर्ण के व्यक्ति को तत्कालीन ब्रज भाषा साहित्याकाश का सब से अधिक जाज्वल्यमान नक्षत्र कहने में भले ही विरोधाभास की अलंकारिक भाषा का प्रयोग समझा जाय परन्तु काव्य-मर्मज्ञों की दृष्टि में वे सचमुच वैसे ही थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

रत्नाकार जी की मृत्यु के पश्चात् ब्रज-भाषा काव्य की महज्ज्योति को अपनी प्रतिभा के घृतापर्ण द्वारा प्रज्वलित रखते हुए उसे प्रखरतर बनाने वाले वर्तमान युग के कवियों में वे सर्वांगीय थे। वे केवल ब्रज-भाषा के कवि ही नहीं थे, संस्कृत काव्य के महान् अध्येता भी थे। नैपथ्य चरित्र की चारुता उनके चित्त में समाई हुई थी और भट्टी की आत्मा में वे प्रविष्ट थे; कालिदास का नशा उनके मस्तिष्क में छाया हुआ था और ब्रज-भाषा की मिठास उनकी वाणी से निरन्तर निःसृत होती थी। ऐसे अपूर्व मिश्रण से युक्त व्यक्तित्व को खोकर हम आज जिस भारी अभाव का अनुभव करते हैं, अनेकानेक वर्तमान कवि उसकी पूर्ति करने में असमर्थ हैं।

संस्कृत और हिन्दी की योग्यता के साथ उनमें और भी विचित्र योगों की स्थिति बता कर उनके मित्र उनके व्यक्तित्व को और भी अधिक मनोरंजक बना देते थे। अध्यापक होने के कारण कर्मणा वे ब्राह्मण, सिहान्त नाम होने के कारण नाम से क्षत्रिय और जन्मना तो वे वैश्य थे ही। इस विचित्र योग की चर्चा होते ही वे बड़े प्रसन्न होते थे। स्वभाव की शिष्टता और मिष्टता का योग भी उनमें दर्शनीय था। सरलता उनके व्यक्तित्व का नित्य लक्षण था, निरभिमानता की वे मूर्ति थे और गुण-ग्राहकता तो मानों उन्होंने के बाँट पड़ी थी।

श्री हरदयालु सिंह जी की हृदि साहित्यिक, उनका दृष्टिकोण सांस्कृतिक और उनके सुविस्तृत अध्ययन की पृष्ठभूमि पौराणिक थी। इसी का यह परिणाम था कि देवासुर संग्रामों के

वर्णनों को पढ़ कर असुरों के धीरोदात्त गुणों पर भी वे मुग्ध हो गये। हिरण्यकशिपु, प्रल्हाद, विरोचन और बलि जैसे युद्ध-वीर, धर्म-वीर, ज्ञान-वीर और दान-वीर जिस वंश-परम्परा में लगातार उत्पन्न हों वह दैत्य वंश भी उन्हें कालिदास के लिये रघुवंश की भाँति काव्य-रचना का उपयुक्त विषय होने योग्य प्रतीत होने लगा और अन्त में वे उसी को विषय बना अपना महाकाव्य लिखने में सफल हो गये जो साहित्यिक दृष्टि से ब्रज-भाषा की अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है जिस पर ओरछा नरेश के यहाँ से मिलने वाला २०००) का देव पुरस्कार भी उन्हें प्रदान किया गया था। इन कविवर का प्रारम्भिक जीवन, अन्तिम दिनों की अपेक्षा अधिक सम्पन्नता के साथ बीता था। उनके पिता जी कुछ अच्छी पूँजी छोड़ गये थे परन्तु अरहर की दाल के व्यापार में वे उसे गंवा बैठे। फलतः अरहर का नाम सुन कर भी वे सहम जाते थे। लक्ष्मी का साथ छूटते ही वे माता सरस्वती की गोद में आ बैठे और फिर जीवन भर उसी के स्नेहचल का आश्रय लिये रहे। रत्नाकर जी दिवंगत हो चुके थे। ब्रज-भाषा के रश्मि जाल को सुव्यवस्थित करके उसे एकत्रीभूत प्रकाश पुंज का रूप देते रहने वाले समालोचक-शिरोमणि पं० पद्मसिंह जी शर्मा भी तो बहुत दिनों तक न जिये। अतः इस विपरीत काल में ब्रज-भाषा का कोई कवि, जैसा अब हो रहा है, केवल अपनी प्रतिभा के बलबूते पर ही चमका तो भले ही चमका। वर्तमान युग के कोई दूसरे साधन उसे सहायक न हुए। फिर भी अनन्य भाव से ब्रज-भाषा की अनन्त व एकान्त साधना में लीन तथा संस्कृत काव्यामृत से ओत-प्रोत हृदय से रस-कलशों को उलीचती हुई श्री हरदयालु सिंह की लेखनी निरन्तर चलती रही। शोक की बात है कि उससे प्रसूत अनेक अक्षर केवल अर्थाभाव के कारण उनके न रह कर दूसरों के बन गये।

उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिलान्तर्गत अपनी जन्मभूमि महमूदाबाद से चलकर वे ब्रज-भूमि की पावन पुरी मथुरा में अध्यापन कार्य करने लगे। इसीलिये वे इस कार्य को छोड़ देने पर भी मास्टर साहब ही कहलाते रहे। ब्रज-भाषा कवि तो थे ही ब्रज-भूमि और ब्रजराज के रंग में वे ऐसे रंगे कि तज्जन्तित रसावेश में वे अपनी आर्थिक कठिनाइयों को भी तुच्छ समझते रहे। दयनीय स्थिति में भी अपने अभाव का भाव उन्होंने अपने मित्रों पर प्रकट नहीं होने दिया। उनके दो सन्तानें थीं। अपने एकमात्र पुत्र गोपी की चर्चा वे प्रायः करते थे।

नम्रता व शील सौजन्य के वे पुतले थे। बिना समुचित स्वागत सत्कार के उनके निवास स्थान से किसी का लौटना असम्भव था। मथुरा को छोड़ कर जब आगरे में वे वहाँ के सुप्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता के यहाँ रह कर कार्य कर रहे थे तो मैं उनके निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। वे मेरे यहाँ प्रायः नित्य आते और मैं भी उनके यहाँ जाया करता था। उनके साहित्यिक मित्रों की संख्या कम न थी जिनके स्वागत सत्कार करते समय वे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक यह दोहा सुनाते ही थे :—

सम्पति थोरी, पति बहुत, यही बिपति अधिकाय ।

ज्यों थोरे में कुलबधू सिमिटि-सिमिटि सकुचाय ॥

उनके मित्रों को उनके अतिथ्य में कभी कोई भी कमी न दीख पड़ी और न उन्होंने अपने किसी मित्र को किसी भी प्रकार से अपनी कठिनाई का भान होने दिया।

सन् १९३५-३६ की वर्षा ऋतु की बात है। वे अपने “दैत्यवंश” के अन्तर्गत ऊषा अनिरुद्ध वाला आख्यान लिख रहे थे और उसके छन्द वे नित्य मेरे यहाँ बेलनगंज पधार कर मुझे सुनाते थे। मैंने तब जाना कि मास्टर साहब के लिये एक-एक दिन में बीस-बीस छन्द लिख लेना भी साधारण सी बात थी। एक दिन अपरान्ह में वे आये और बैठने की कोशिश करते हुए सुनाने लगे :—

चौसठ हू कला सोखीं सबै पै विसेखि रुच्यौ तेहि चित्र बनाइवौ ।
जान्यौ मृदङ्ग बजाइवौ हू खटराग पै वारि-तरंग मिलाइवौ ।
सूछैना ग्राम औ मीड़नि की गमकैं करि बीन प्रवीन बजाइवौ ।
मंजु मयूरि लौं नाचिबौ सीख्यौ अलाप बसन्त बहार कौ गाइवौ ॥

ऊषा की सभी योग्यताओं को एक ही सबेरे में भर देने की अपनी बहुत-बहुत प्रशंसा सुन कर वे उसे “श्रौपचारिक बढ़ावा” मात्र बता कर कहने लगे : अच्छा, आप बहुत समझते हैं, तो लीजिये इसमें बताइये कि रूप-गविता है या अज्ञात-यौवना ? और उन्होंने सुनाया :—

अंग राग न अंग लगावै सखी, पग नाइनि जाबक लावै नहीं ।
नहीं अंजन आँजै अली दृग में बिरियाइनि बीरी रचावै नहीं ।
गुहि सौनजुहीनु के मंजु हरा गरें मालिनियाँ पहरावै नहीं ।
जेहि भौन में बैठौं तहाँ सजनी परिचारिका दीप जरावै नहीं ॥

कक्ष में बैठे श्रोताओं ने हर्ष विभोर हो खूब-खूब प्रशंसा की। कला के साथ गला भी उन्हें विधाता ने एक विशेष प्रकार का दिया था। वे रसिक मंडली और सुहृद गोष्ठी में ही सबसे सुन्दर ढंग से सुनाने वाले कवि थे, बड़े कवि सम्मेलनों में नहीं।

थोड़े ही दिनोंबाद, पितृ पक्ष के दिनों में मास्टर साहब ने आकर एक समाचार-पत्र में इण्डियन प्रेस का विज्ञापन दिखाते हुए कहा कि इसमें अपेक्षित अनुभव तो मुझमें है परन्तु बिना किसी सहायता के इस पद पर पहुँचना तो असम्भव है। इसी सिल-सिले में उन्होंने हिन्दी के परम उन्मायक पं० श्री नारायण जी चतुर्वेदी का नाम लिया परन्तु साथ ही उन जैसे एक उच्च शिक्षा-धिकारी के पास “बढ़ी हुई हजामत” ले कर जाने में उन्होंने संकोच प्रकट किया। मैंने दृढ़तापूर्वक यह कहते हुए कि जिन महानुभाव का नाम आप ले रहे हैं वे परम वैष्णव और सनातनी परिवार के तथा प्राचीन रीति नीति के प्रबल पोषक हैं, आपको इन दिनों में इस रूप में देख कर प्रसन्न होंगे उन्हें तत्काल प्रयाग खाना होने के लिये तैयार कर लिया। बात भी सही निकली। उनके निकट हरदयालु सिंह जी का पहुँचना, उन्हीं के शब्दों में, उनके भाग्योदय का कारण बना। इसी का परिणाम हुआ कि बहुत दिनों के बाद वे कुछ चैन की साँस ले सके और अपने “दैत्य वंश” को कहीं अधिक बड़े आकार में और बड़े ही नयनाभिराम रूप में छपा सकने का अवसर प्राप्त कर सके नहीं तो अर्थाभाव की दशा में उनकी लेखनी दैत्यवंश जैसे परमोत्कृष्ट महाकाव्य के मुख पृष्ठ पर भी रचयिता के स्थान पर कोई दूसरा ही नाम लिख देने को विवश हो जाती। आगरा छोड़ कर प्रयाग आना ही उनके कवि-जीवन का जागरण काल है और शेष सब सुषुप्ति !!

“दैत्य वंश” के प्रकाशित होने के साथ-साथ ही उनका कवि जीवन भी प्रकाशित हुआ और वे तत्पश्चात् बड़े उत्साह के साथ रावण काव्य और रघुवंश का अनुवाद भी कर सके। बड़े संताप के साथ कहना पड़ता है कि रघुवंश का पद्यानुवाद कर लेने के थोड़े ही दिन बाद वे चल बसे और ब्रज-भाषा का वह अनुदित ग्रन्थ रत्न अब तक प्रकाशित नहीं हो पाया। अनुवाद कितना सफल व सुन्दर है, संस्कृत मूल से मिलान करके देखिये। जिन्हें मूल श्लोक याद है वे कह सकेंगे कि अनुवाद आगे बढ़ गया है। दिलीप की गौ-सेवा का प्रसंग है :—

बोलन लागे बिहंगन के गन लालिमा अम्बर में कछु छाई ।
पूज्यौ नरेस-निया रिसि धेनु कों अच्छत गन्ध औ माल चढ़ाई ।
बाँध्यौ दिलीप महीप बछाहि पियौ जेहि मातु कौ दूध अघाई ।
कानन माँहि चराइवे काज जसोधन छोरचौ मुनीस की गाई ॥

मार्ग में गाय की रक्षार्थ अपने प्राण देने को उद्यत सम्राट् से सिंह कालिदास के शब्दों में कहता है :—

एकात्पत्रं जगत् प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदम् वपुश्च ।
अल्पस्यहेतोः बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥

अब इसका अनुवाद देखिये :—

एक ही छत्र अखंड धरा की लही प्रभुता जनता अनुरागत ।
कान्त कलेवर पायौभलौ जिहि में नव जीवन जोति हु जागत ।
तुच्छ गऊ के लियें, महिपाल, इते बड़े वैभव कों तुम त्यागत ।
जानि परै हमें या सों, महीप, विचार सों मूढ़ कछू-कछू लागत ॥

इस शब्द-शिल्पी की कला को कहाँ तक कहा जाय। काव्यों के अतिरिक्त इनके लिखे स्फुट पद्यों की भी संख्या कम नहीं है जो इन्होंने समय-समय पर लिखे और जो इनकी लोक-प्रियता के कारण बने। मौलिक रचना व अनुवादों के अतिरिक्त उन्होंने कुछ रचनायें हास्य रस की भी लिखीं। रीतिकाल के महाकवि लाला भिखारीदास कृत सबैया “पौढ़े रही पट तानें लला, यह बोली नहीं चिरियाँ चुरियाँ हैं” की अत्यन्त सफल पैराडी उन्होंने लिखी थी और इस विशेषता के साथ कि उनकी नायिका दास जी की नायिका की भाँति अपने ही समय की बातें बता कर अभी सबेरा न होने को प्रमाणित कर रही है। उन दिनों कांग्रेस के आन्दोलन चल रहे थे। सचमुच बड़े तड़के ही राष्ट्रीय प्रभात फेरियाँ निकलती थीं। हरदयालु सिंह जी की नायिका कहती है :—

लखौ गेल की गैस बुझानी नहीं न प्रभात की टोली कढ़ी बनितान की ।
नल में तौ अबें जल आयौ नहीं, सखियाँ न चलीं अबें जमुना नहान की ।
नहि कान में मील की आई अवाज मियाँ न दई अबें बान अजान की ।
पिया पौढ़े रही पट ताने निसक हमें परतीति न होति विहान की ।

सं० २०२५]

स्व० कविवर हरदयालु सिंह

[२६]

एक दिन साहित्य चर्चा के बीच उनके मित्र स्व० प्यारे मोहन चतुर्वेदी ने उनसे वियोग वर्णन में पुरानी और बार-बार दुहराई बातों के स्थान पर कुछ नवीनता का समावेश करने की और उनका ध्यान आकृष्ट किया और उसी दिन रात्रि के दस बजे आकर उन्होंने चौबे जी को बुलाकर सुनाया :—

अब साबुन तेल लगाय सखी कबहूँ अलकान न धोयौ करे ।
लगे तीखे अनंग के तीरन की गड़ी पीर हिये बिच गोयौ करे ।
तसबीर पिया की बनावे कवौ ननदी कौ कवौ मुख जोयौ करे ।
करिसाध पिया मिलिवे की तिया तकिया ढिंग डारि कैं सोयौ करे॥

सरलता की पराकाष्ठा यह थी कि वे दैनिक जीवन की वस्तुओं को भी क्रय करते समय किसी को साथ रखना चाहते थे । बाजार चलने के लिये आग्रह करते हुए वह एक दिन बोले कि आज कुछ धोतियाँ खरीदनी हैं जिनके बिना काम नहीं चल रहा है परन्तु साहित्य चर्चा छिड़ते ही वह भूल गये । सहसा शारीरिक सौन्दर्य की विशेषताओं व शृङ्गारिक सज्जा से युक्त किसी वर्णन को सुन कर मैंने विनोद में कहा कि आज इसे घर जाकर अपनी धर्म-पत्नी को अवश्य सुनाइयेगा । उन्होंने चट से उत्तर दिया, “नहीं” मैं ब्रज-भाषा का कवि, इसे सुनते ही वे खड़ी बोली बोलने लगेंगी । मैंने कहा, क्या कहेंगी । बोले यही कि—

“सोलह शृङ्गार सजी नायिका बखानों अजी

पासना गजी की सजी धोती घरबाली के ।”

यह कहते-कहते सरसता के उस श्रोत का चहरा सहसा सूख गया । आज भी वह मधुर-म्लान मूर्ति मेरी आँखों के सामने है !! साहित्य सृजन से स्वयं धनी न होकर माँ भारती के अक्षय-भण्डार को भर कर वे चले गये !! परन्तु दैत्य वंश के प्रारम्भ में दीनता प्रदर्शित करते हुए उनके द्वारा भगवती शारदा से कहीं गईं ये पंक्तियाँ हमारे कानों में सदैव गूँजती रहेंगी :—

“भारी व्यवसाय की वृथा है साध वा के उर

सम्पति सदन माँहि जा कैं अति थोरी है ।”

—आकाशवाणी के सोजन्य से

ऋग्वेद-कालीन भारतीय जीवन की एक झँकी

(श्री वृन्दावन दास)

ऋग्वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थों में से है। ऋग्वेद की सम्यता भी बहुत पुरानी है। भारत की आर्य जाति के इतिहास का एक दिशा बोध भी ऋग्वेद से होता है। ऋग्वेद से हम भारतीय इतिहास की प्राचीनता और उनकी अनुमानिक कालावधि का पता भी लगा सकते हैं। ऋग्वेद ईसा से कितनी शताब्दी पूर्व रचा गया इस पर बहुत से ऐतिहासिकों ने अनुमान लगाया है। इस पर बहुत मतभेद भी हैं। कोई ऋग्वेद को ईसा से १००० वर्ष पूर्व कोई १५०० वर्ष और कोई-कोई ३००० वर्ष पूर्व रचा हुआ मानते हैं। लोकमान्य तिलक ऋग्वेद के रचना-काल को ईसा से ६००० वर्ष पूर्व का अनुमान करते हैं। अनेक पाश्चात्य ऐतिहासिक जिनमें जैकोबी प्रमुख हैं लोकमान्य तिलक के दृष्टिकोण से सहमत हैं। हमें लोकमान्य तिलक का मत ही सबसे अधिक प्रामाणिक जँचता है। इसके कई कारण हैं; उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे लिखे अनुसार है—

१—महाभारत काल को ईसा से ३००० वर्ष पूर्व मानने पर अब बहुत से विद्वान् एकमत है।

२—श्री कृष्ण पर बहुत खोज हुई है और उस अनुसन्धान का निष्कर्ष यही कि श्रीकृष्ण को हुए अबसे लगभग ५००० वर्ष हुए हैं। इससे भी महाभारत काल ईसा से ३००० वर्ष पूर्व ठहरता है।

३—वैवस्वत मनु मनुओं की परम्परा में सातवें हैं ऐसा पुराणों से विदित होता है। आर्यों के इतिहास में वैवस्वत मनु से पहिले का वृत्त अज्ञात है। अतः भारतीय इतिहास को वैवस्वत मनु से ही आरम्भ हुआ समझा जाना उचित है। वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु से ऐक्ष्वाक्य वंश चला। उसमें ६५ वीं पीढ़ी पर रामचन्द्र हुए। प्रत्येक पीढ़ी को २०, २२ वर्ष के समयान्तर पर आधारित करके इक्ष्वाकु से श्रीराम तक १४०० वर्ष के लगभग का समय व्यतीत होता है। श्रीराम से महाभारत काल २९ वीं पीढ़ी पर आता है अतः इस काल को भी ६०० वर्ष का समझिये। इस प्रकार वैवस्वत मनु से महाभारत काल २००० वर्ष पीछे आता है। अतः वैवस्वत मनु का अस्तित्व ईसा से ५००० पूर्व अथवा आज से ७००० वर्ष पूर्व मानना चाहिये।

भारतीय आर्य सम्यता का इतिहास इस प्रकार यदि ७००० पूर्व का माना जाय तो ऋग्वेद को ६००० वर्ष पूर्व का निर्मित मानना समीचीन होगा। ऋग्वेद में जिस दशराज्ञ युद्ध का उल्लेख है वह वैवस्वत मनु से लेकर १००० वर्ष की अवधि के भीतर ही विद्यमान राजाओं के मध्य हुआ था। ऋग्वेद के सूक्त एक बहुत बड़े काल तक बनते रहे थे। सम्भव है उनके निर्माण और समावेश में सहस्रों वर्ष ही लग गये हों। अतः यदि इस महान् आर्य ग्रन्थ में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख है जो अपेक्षाकृत ६००० वर्ष पुरानी नहीं है तो उन्हें उन सूक्तों द्वारा प्रदर्शित समझी जानी चाहिये जो बाद में बने हैं। ऋग्वेद में आर्य संस्कृति एवं सम्यता का प्राचीनतम वर्णन है।

ऋग्वेद की संस्कृति का आरम्भिक रूप बड़ा प्रोज्ज्वल है। बहुत से सिद्धान्त अक्षुण्ण रूप से आज तक चले आ रहे हैं। इस शाश्वत संस्कृति के मध्य कालीन परिवर्तन इतने स्वस्थ नहीं हैं। एक प्रकार से इन परिवर्तनों ने इसके सौन्दर्य को बिगाड़ा है परन्तु वे मूल संस्कृति को नष्ट न कर पाये कारण यह संस्कृति महान् है और इसकी महानता ने

ही इसे शाश्वत बनाया है। यही कारण है कि अनेक गम्भीर आघातों से भी वह सीधी खड़ी है। सब भटकों को भेलकर भी आज अक्षुण्ण और जीवन्त है।

कुछ विद्वान् मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खोजों से सिन्धु घाटी की सभ्यता का अनुमान लगाते हैं। यह सही है कि वह सभ्यता बड़ी सुन्दर और कुछ अंशों में आर्य सभ्यता से कम न थी। उसको ये लोग ४००० वर्ष पुरानी बताते हैं और इस आधार पर कहते हैं कि आर्यों का आगमन इसके बाद हुआ। वे समस्त भारतीय इतिहास को इस प्रकार ईसा से ३००० वर्ष पूर्व के भीतर का ही बता देते हैं। वे महाभारत को ईसा से १५०० वर्ष पूर्व और वैवस्वत मनु का महाभारत से १००० वर्ष पूर्व का मानते हैं। परन्तु नवीनतम मान्यताएँ उनके निष्कर्षों के विरुद्ध हैं। पुराण स्पष्ट रूप से वैवस्वत मनु से ईसा तक ५००० वर्ष का इतिहास इंगित कर रहे हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता की बात लेकर उस इतिहास का काल घटाना उचित नहीं। हम घटनाक्रम को कहाँ ले जायेंगे? क्या यह सम्भव नहीं कि आर्य राजाओं की अन्यत्र विद्यमानता में भी मोहन-जोदड़ो, हड़प्पा या अन्य स्थानों पर द्रविड़ों का राज्य जिसको ऋग्वेद में असुर संस्कृति कहा है चलता रहा हो और कालान्तर में उसका भी विनाश होकर वह आर्यों के अधीनस्थ हो गया हो। ऋग्वेद के मन्त्रों से यह तो स्पष्ट ही है कि आर्यों का भारत की आदिम संस्कृति के लोगों से जिन्हें द्रविड़ ही कहना चाहिये बड़ा दीर्घ कालीन संघर्ष चला था।

ऋग्वेद से एक बहुत ही सभ्य और व्यवस्थित समाज का पता चलता है। उस समय एक पत्नी विवाह की प्रथा प्रचलित थी परन्तु राजपुरुषों में बहु-पत्नी विवाह भी कभी-कभी हो जाया करते थे। परन्तु एक स्त्री के एक से अधिक पति होने की बात उस समाज में अज्ञात थी। विवाह एक पवित्र बन्धन था जो मानवीय कार्य से नहीं टूट सकता था। निस्संतान विधवाओं को पुनर्विवाह करने की छूट थी। वैदिक काल में अन्तर्गृहीत कर्म करने के लिए सन्तान का होना बांछनीय समझा जाता था। विवाह के समय दहेज की प्रथा प्रचलित थी परन्तु कभी-कभी भावी जामाता को बधू-प्राप्ति के लिए कुछ धन भी देना पड़ता था।

लड़कियों के लिए वैवाहिक बन्धन अनिवार्य न था। ऐसे अनेक उदाहरण थे जिनमें अविवाहित लड़कियाँ बड़ी अवस्था तक अपने पितृगृह पर ही जीवन व्यतीत करती हुई प्रतीत होती थीं। विवाहोपरान्त लड़कियाँ अपने स्वसुर गृह चली जाती थीं और वहाँ उनका स्थान सम्मानप्रद था। पति के माता-पिता, बन्धु बान्धवों पर उनका स्नेहाभिसिक्त अधिकार रहता था। स्त्री-पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी समझी जाती थी और कोई भी धार्मिक अनुष्ठान स्त्री के सम्मिलित हुए बिना अपूर्ण समझा जाता था। उस समय बाल विवाह लगभग अज्ञात था। यद्यपि लड़की के लिए पति की तलाश करना पिता का ही मुख्य कर्तव्य होता था तथापि लड़की को भी इस सम्बन्ध में काफी स्वतन्त्रता थी।

पिता का अपनी सन्तान पर पूर्ण अधिकार होता था। ऐसा भी उदाहरण है कि एक पिता ने अपने पुत्र को जुआरी होने के कारण नेत्र-विहीन कर दिया था। पिता कुटुम्ब का मुखिया होता था और अपनी संतान के विवाहादि कृत्यों में उसका पूर्ण अधिकार होता था। वह कौटुम्बिक सम्पत्ति का स्वामी होता था। गोद लेने की रस्म भी प्रचलित थी। पुत्रहीन पिता की सम्पत्ति का हस्तान्तरण पुत्री को नहीं अपितु दौहित्र को होता था।

ऋग्वेद काल में जाति-पाँत के कट्टर बन्धन नहीं थे। ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिए किया गया है। चूँकि जाति बन्धनों में कट्टरता का अभाव था अतः इन तीनों जातियों में अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित थे। कभी-कभी लोग पितृगत कर्मों को भी बदल देते थे जैसा कि ऋग्वेद के एक सूक्त से प्रकट है, "मैं कवि हूँ, मेरा पिता चिकित्सक और मेरी माँ दाना पीसने वाली है। विभिन्न कर्म वाले हम लोग अर्थ लाभ की कामना करते हैं।"

कदाचित् व्यवसाय-कर्म के आधार पर द्रविड़ों में जाति प्रथा प्रचलित थी। ऐसा प्रतीत होता है द्रविड़ों के सम्पर्क से ही आर्यों में जाति प्रथा का विकास हुआ। ऋग्वेद काल में ब्राह्मण लोग पठन, पाठन, चिन्तन, अध्ययन एवं धार्मिक अनुष्ठानों में व्यस्त रहते थे, क्षत्रियों का कर्म युद्ध करने का था तथा वैश्य कृषि और वाणिज्य आदि का काम करते थे। समाज का विभाजन पितृक परम्परा पर आधारित न था। अगस्त्य ऋषि ने विदर्भराज की पुत्री लोपामुद्रा से विवाह किया और उसीन शुक्र ऋषि की पुत्री देवयानी का विवाह सम्राट ययाति के साथ हुआ था। यह तो स्पष्ट है कि जाति-प्रथा की वह कट्टरता जो पीछे प्रचलित हुई वैदिक-काल में अज्ञात थी।

वैदिककाल में जाति-प्रथा के प्रचलित होने या न होने के विषय में विद्वानों में मतभेद है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुष सूक्त में चार वर्णों का उल्लेख है परन्तु यह भी एक निर्विवाद तथ्य है कि ऋग्वेद का दसवाँ मण्डल बहुत पीछे हजारों वर्ष बाद का बना हुआ है।

भोजन-व्यवस्था—आर्यों का दूध और उससे जनित पदार्थ भोजन के विशिष्ट अङ्ग थे। वे दूध के साथ दलिया, चावल आदि खाते थे। वे घी के साथ चिपड़ी हुई जौ की रोटियाँ खाते थे। बलि किये हुए पशुओं का मांस ही भक्षण के योग्य होता था। गाय पवित्र मानी जाती थी, वह अघन्य समझी जाती थी। सोम और सुरा का प्रयोग होता था परन्तु सुरा के पीने का निषेध भी था। ऋग्वेद का नवाँ मण्डल सोमपान के सम्बन्ध में है।

आर्थिक दशा—वैदिक आर्यों का जीवन कृषि प्रधान था। गाय बैल आदि की सहायता से कृषि की जाती थी। उनकी जीविका के आधार कृषि और पशुपालन थे। खेतों में उत्पन्न होने वाले अनाजों में गेहूँ, धान, मांस व तिल प्रमुख थे। कृषि के अतिरिक्त जीविका के अन्य साधन भी थे। वेद में तक्षन् (बड़ई) हिरण्यकार (सुनार) कर्मार (धातु शिल्पी) चर्मकार वाय (जुलाहा) आदि अनेक शब्दों के प्रयोग से इन व्यवसायों की विद्यमानता भी प्रगट होती है। आर्यों ने दासों को सेवा में रख कर अनेक व्यवसाय चलाये थे।

अनेक धातुओं का प्रयोग होता था। सुवर्ण और रजत से आभूषण तैयार किये जाते थे। पात्रों और यन्त्रों के लिए अयस् नाम की धातु का प्रयोग किया जाता था। संस्कृत अयस् का अर्थ लोहा है परन्तु वेदों में अयस् के प्रयोग से ताँबे का बोध होता है। ताँबा हो या लोहा, आर्य लोग यन्त्रों और पात्रों के निर्माण में धातु-प्रयोग को भली भाँति जानते थे।

निवास स्थान—निवास के लिए सुन्दर शालाओं का प्रयोग किया जाता था। शालाओं के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग होता था। वेद में शाला सूक्त हैं जिसमें भवन-निर्माण का बड़ा सुन्दर वर्णन है।

वस्त्रा-भूषण—वस्त्र-निर्माण का शिल्प भी उन्नत दशा में था। ऊन और रेशम से भी वस्त्र तैयार किये जाते थे। आर्य लोग सूत कातने और अनेक प्रकार के वस्त्र बनाने के व्यवसाय में

सं० २०२५]

ऋग्वेद-कालीन भारतीय जीवन की एक भाँकी

[३३]

कुशल थे। वे सिर पर उष्णीष (पगड़ी) नीचे अधोवस्त्र (धोती) और ऊपर से उत्तरीय का प्रयोग करते थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहिनते थे। कुण्डल, केयूर, निष्कग्रीव आदि आभूषण पहिने जाते थे।

व्यापार—व्यापार के लिए वस्तु विनिमय का प्रयोग होता था। सिक्के का प्रचलन था या नहीं यह सदिग्ध है। निष्क नामक सुवर्ण मुद्रा का उल्लेख है परन्तु हो सकता है यह शब्द आभूषण के लिये प्रयुक्त हुआ हो। वैदिक युग में लोग स्थल और जल मार्गों के द्वारा दूर-दूर तक व्यापार के लिये आते जाते थे।

धर्म—वैदिक युग के आर्य विभिन्न देवताओं की पूजा करते थे, इन्द्र, मित्र, वरुण और यम आदि। इनको तृप्त और संतुष्ट करने के लिए अनेक विधानों का अनुसरण किया जाता था। ईश्वर की एकता का तथ्य भी आर्यों में भली भाँति प्रचलित था। कभी-कभी वे इन सब देवताओं में एक ही ईश्वर का अंश देखते थे। संसार का सृष्टा, पालक व संहर्ता एक ईश्वर है यह बिचार वैदिक आर्यों में विद्यमान था। वे प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करते थे। वेदों में द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथ्वी लोक में जो शक्तियाँ विद्यमान हैं उनकी स्तुति में विभिन्न सूक्तों और मन्त्रों की रचना की गई थी। द्युलोक के देवता हैं सूर्य, सविता, मित्र, पूषा, विष्णु, वरुण, अन्तरिक्ष के स्थानीय देवता इन्द्र, वायु, मरुत और पर्जन्य हैं। पृथ्वी स्थित देव हैं अग्नि, सोम और पृथिवी। अदिति, उषा, सरस्वती आदि के रूपों में देवियों की उपासना का भी वेदों में विधान है। वैदिक युग में प्राकृतिक शक्तियों की पूजा का विधान यज्ञादिक अनुष्ठानों के माध्यम से था अतः उनको मूर्तियों के रूप में मन्दिरों में प्रतिष्ठापित करने की प्रथा उस काल में न थी।

मनोरंजन आदि—लोगों के मनोरंजन के साधनों में रथों की दौड़, घुड़दौड़, गायन, नृत्य और द्यूत आदि थे। द्यूत दौंव लगा कर होता था और इसमें बहुत से घर बरबाद हो जाते थे। नृत्य संगीत के साथ होता था जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही सम्मिलित होते थे। संगीत में ढप, ढोल, दुन्दभी, ककटी बीणा आदि का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद कालीन आर्य लोग भ्रमण-शील न थे, वे एक स्थान पर रह कर निश्चित जीवन व्यतीत करते थे।

आर्यों और अनायों का भेद—आर्य भिन्न लोग अनाय कहलाते थे। उनको दास, दस्यु अथवा असुर भी कहते थे। कभी-कभी उनको पिशाच और राक्षस आदि की संज्ञा भी इसलिये दी गई है कि वे युद्धों में भयंकर चीत्कार करते थे। उनकी मुखाकृति के विषय में कहा गया है कि कृष्णवर्ण और चपटी नाक वाले थे। उनकी भाषा भी आर्यों की भाषा से भिन्न थी। आर्यों की तरह वे यज्ञादि न करते थे और न वैदिक देवी-देवताओं की पूजा ही। वे शिशु की पूजा करते थे जिसको कि आर्य लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनके दुर्ग थे। और आर्यों को उन पर विजय प्राप्त करने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा था। उनका प्रतिरोध इतना भयङ्कर था कि आर्यों को उन पर विजय प्राप्त करने के लिए इन्द्र का आह्वान करना पड़ता था।



अन्तर जनपदीय परिषद् : कुछ अंतरंग झलकियाँ

(श्री रामनारायण उपाध्याय, ब्राह्मणपुरी खंडवा म० प्र०)

यह एक संयोग की बात रही कि महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन की पुण्य तिथि के दिन ब्रजसाहित्य मण्डल मथुरा की ओर से दिनांक १४, १५ और १६ अप्रैल को सेण्ट पीटर्स कालेज आगरा में कविरत्न सत्यनारायण जी, कु० हनुमन्त सिंह जी एवं महाकवि ग्वाल का अर्धशताब्दी समारोह तथा अन्त-जन्मपदीय परिषद् की पुनः संस्थापना का कार्य एक साथ समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ।

जब समारोह का प्रारम्भ हुआ तो मेरी आँखों में वह दृश्य तैर गया जब आज से १६ वर्ष पूर्व इसी अप्रैल के महीने में, इसी ब्रजसाहित्य-मण्डल के तत्वावधान में, इसी उत्तर-प्रदेश के एक नगर हाथरस में, पहली बार अन्तर्जन्मपीय परिषद् की स्थापना की गई थी जिसमें राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद से लगाकर लोकसाहित्य के अनेक विद्वान एवं साधक कार्यकर्ता एकत्रित हुए थे और तभी यह सोचकर मेरा मन उदास हो गया कि उनमें से आज डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, रामनरेश त्रिपाठी, राहुलजी, नवीन जी, एवं शिवसहाय जी चतुर्वेदी जी जैसे आद्य प्रवर्तक हमारे बीच नहीं रहे।

सम्मेलन की अव्यक्ष्यता करने के लिए जब अपने दुबले-पतले शरीर पर एक ढीला-ढाला कुर्ता पहिने जिसकी बटनें भी लगी नहीं थी और गले में पुराने ढङ्ग का दुपट्टा डाले श्री पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी मंच पर आये तो सहसा विश्वास नहीं हुआ कि ये वही चतुर्वेदी जी हैं जो अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर एवं कहकहों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। मुझे लगा जैसे स्वर्गीय कविरत्न सत्यनारायण जी अपने गले में दुपट्टा डालकर समारोह में आने का लोभ संवरण न कर पाये हों।

सम्मेलन का उद्घाटन करने के लिए जब श्री सेठ गोविन्द दास जी का परिचय देते हुए स्वागताध्यक्ष श्री बाबू वृन्दावनदास जी ने कहा—सेठजी का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाना है तो मंच पर बैठे श्री कृष्णदत्त जी पालीवाल ने मञ्च पर जलते हुए ट्यूबलाइट की ओर इशारा करते हुए कहा—हम सूरज को दीपक कहाँ दिखा रहे हैं हम तो उन्हें ट्यूबलाइट दिखा रहे हैं और हँसी का एक ठहाका गूँज उठा।

अपने उद्घाटन भाषण में सेठ साहब ने एक बहुत मजेदार बात कही। उन्होंने कहा—“साहित्यकार का दर्जा किसी भी सम्राट से ऊँचा होता है। अकबर के जमाने में अकबर से भी बड़ा एक व्यक्ति था तुलसीदास। अकबर का सम्राज्य तो अब रहा नहीं लेकिन तुलसीदास आज भी जन-जन के मन पर अपना राज्य कायम किये हुए हैं।” हिन्दी भाषा में राजनीतिज्ञों का परिचय सिर्फ दो शब्दों में लिखा जावेगा—“भू० पू०” और यदि वे अंग्रेजी में अपना परिचय चाहेंगे तो उन्हें एक ही अक्षर मिलेगा—“एक्स।”

स २०२५]

अन्तर जनपदीय परिषद् : कुछ अंतरंग भलकियाँ

[३५]

उसके पश्चात् पालीवाल जी का कविरत्न सत्यनारायण जी पर ब्रजलोक-भाषा में अत्यन्त ही सुन्दर भाषण हुआ ।

बाद में अन्तर्जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित करने का प्रस्ताव रखते हुए भोजपुरी के प्रकाण्ड विद्वान् एवं मौन साधक श्री गणेश चौबे ने कहा—“हमारे जनपदों में लोक साहित्य का अक्षय भण्डार है । वहाँ एक-एक वस्तु के लिए अनेकों शब्द प्रचलित हैं । इन सबके संकलन, सम्पादन व अध्ययन के लिए एक केन्द्रीय संस्था की अत्यन्त आवश्यकता है । अन्तरजनपदीय परिषद् ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । अतएव यदि उसे पुनर्जीवित किया जावे तो उसके माध्यम से यह कार्य आगे बढ़ सकता है ।”

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने कहा—“पहिले हिन्दी एक बोली थी और ब्रज एक भाषा । आज हिन्दी एक भाषा है और ब्रज एक बोली । हमारी इन बोलियों में अपार साहित्य दिया हुआ है । इन सबको व्यवस्थित रूप देने के लिए मैं अन्तर्जनपदीय परिषद् के पुनर्जीवित करने के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ ।”

पश्चात् जयपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और ब्रज-लोकसाहित्य के मर्मज्ञ श्री डा० सत्येन्द्र ने कहा—“आजकल लोकभाषा के नाम पर भाषा वार प्रान्त रचना की भावना पनपती जा रही है । इस खतरे से सावधान रहना है । “जनपद” शब्द से वह व्यापक अर्थ नहीं निकलता जो “लोक वार्ता” शब्द से निकलता है । अतएव यदि इस परिषद् का नाम “लोकवार्ता परिषद्” रखा जावे तो अधिक उपयुक्त होगा ।

बाद में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निदेशक श्री डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने कहा—हमें ब्रजभाषा और ब्रज-प्रदेश के फर्क को समझ लेना चाहिये । ब्रज-प्रदेश की अपनी एक सीमा है जिससे वह बँधा हुआ है । लेकिन ब्रज-लोकभाषा का अखिल भारतीय व्यक्तित्व है । जिस भाषा में सूर ने अपने साहित्य की रचना की वह महज ब्रज की भाषा नहीं थी वरन् एक ऐसी भाषा थी जो समूचे देश में पढ़ी और समझी जाती थी । सूर को ब्रज का कवि कहना और उनके काव्य को ब्रज का काव्य कहना उनके व्यक्तित्व को छोटा बनाना है । चाहे सूर हो या तुलसी वे अखिल भारतीय कवि थे और उन्होंने जिन लोकभाषाओं में अपने काव्य की रचना की हमें उन लोकभाषाओं का संकुचित प्रातीयता से ऊपर उठ कर अखिल भारतीय स्तर पर अध्ययन करना चाहिए । उन्होंने यह भी कहा कि आजकल विश्वविद्यालयों में लोकभाषाओं के नाम पर जिस प्रकार भी उपाधियाँ दी जा रही हैं उनका स्तर अत्यन्त हल्का होता है । उससे भाषा और उपाधि दोनों का महत्व घटता जा रहा है । इस दिशा में गम्भीरता से कदम उठाना चाहिये ।

आपसी चर्चा में भाग लेते हुए श्री रामनारायण उपाध्याय ने कहा—‘नाम से क्या होता है मूल बात काम की है । एक बार मैंने लोकसाहित्य परिषद् नामक एक संस्था के लिए शासन से कुछ जानकारी चाही तो उन्होंने इस बात की गुप्त रूप से जाँच की थी कि यह कौन सी नई राजनैतिक पार्टी खड़ी हो गई है । “जनपद” शब्द संकुचित नहीं है । श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जब इसका प्रयोग किया तो उनकी दृष्टि में इसका एक विराट रूप था । उनका कहना

था कि “हमारी जनता के जीवन का जितना भी विस्तार है इस सबको जानने पहिचानने और फिर से जीवित करने का सशक्त व्यापार जनपदीय अध्ययन का उद्देश्य है।” खुली हुई पुस्तक के समान जनपदों का जीवन हमारे चारों ओर फैला हुआ है। लोक जीवन से आत्मसात होकर लोक साहित्य की खोज, शोध और अध्ययन करना ही अन्तरजनपदीय परिषद् का उद्देश्य है।

बाद में श्री देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी ने भी अपने विचार व्यस्त करते हुए एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया। अन्त में श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी ने अपने भाषण में कविरत्न के प्रति भावपूर्ण श्रद्धांजली अर्पित करते हुए लोकसाहित्य के व्यापक अध्ययन के लिए अन्तर्जनपदीय परिषद् को पुनर्जीवित करने का समर्थन किया एवं इस कार्य को व्यवस्थित रूप देने के लिए उसी समय एक अस्थाई कमेटी का निर्माण किया गया जो इसका उद्देश्य और विधान निश्चित करेगी। श्री पण्डित बनारसी दास जी चतुर्वेदी इसके अध्यक्ष मनोनीत किए गए तथा श्री बाबू वृन्दावन दास जी, डा० श्याम परमार, श्री रामनारायण उपाध्याय, श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी और श्री गणेश चौबे इसके सदस्य नियुक्त किए गए। परिषद् की सफलता का श्रेय श्री बाबू वृन्दावन दास जी एवं श्री रमेशचन्द्र जी दुबे के अथक परिश्रम को है।

समारोह के दूसरे दिन हम श्री गणेश चौबे के साथ ताज महल देखने गये। जब मैंने श्रद्धा से अभिभूत होकर ताज की समाधि के समक्ष प्रणाम करना चाहा तो वहाँ पर खड़े एक चौकीदार ने कहा “हूजूर आपकी जो भी इच्छा हो आप यहाँ चढ़ा सकते हैं।” जिस व्यक्ति ने प्रेम के चरणों में अपना सम्पूर्ण साम्राज्य न्योन्छावर कर दिया उसके समक्ष पैसे चढ़ाना मुझे अपमानजनक लगा।

ताज को कई लोगों ने कई कोणों से देखा होगा। लेकिन मेरे मित्र गणेश चौबे ने उसे देखकर कहा—कि यहाँ पर जो फूल और पत्तियाँ बनी हैं वे कुछ काल्पनिक तो होगी नहीं जिस युग में ताज का निर्माण हुआ उस युग में ये अवश्य रही होगी अतएव अगर कोई छात्र ताज में निर्मित इन फूल और पत्तियों का अध्ययन करें, तो यह एक रोचक विषय होगा। मैंने कहा—आगरा में तो विश्वविद्यालय भी है अगर कोई छात्र चाहें तो इन पर डाक्टरेट भी ले सकता है और हंसी का एक ठहाका गूँज उठा।

जब हम ताज के भव्य प्रांगण से यमुना की ओर देख रहे थे तभी ताज के चरणों में यमुना की रेती में किसी शहनशाह की तरह बैठे एक अद्वय व्यक्ति ने कहा—“बाबू ताज की कहानी सुनोगे सिर्फ चार आने में। फिर उसे लगा कि चार आने तो ज्यादा होता है अतएव बोला—बाबू सिर्फ दस पैसे फैंकों तो ताज की एक ऐसी कहानी सुनाऊँगा कि तबीयत खुश हो जावेगी। फिर उसे ख्याल आया कि आज का युग तो माल लेकर पैसे देने का है अतएव वह बोला अच्छा तो पहले कहानी सुनलो अगर पसन्द आये तो पैसे देना। अपनी कहानी के प्रति ऐसी आस्था शायद ही किसी कहानीकार में मिलेगी और फिर उसने ताज के निर्माण के सम्बन्ध में आंकड़ों और भावनाओं से भरे-धारा प्रवाह शैली में एक ऐसी लघुकथा सुनाई कि अगर मेरे पास टेप रिकार्डर होता तो मैं उसे जरूर टेप करता।

ताज की गुम्बज की बनावट ऐसी है कि वहाँ आप कुछ भी बोलिए—प्रतिध्वनित होता है। जैसे कोई सिगरेट का कस खींचकर धुएँ के छल्ले बनाए ऐसे वहाँ शब्दों का उच्चारण करने पर वह छल्लों की शकल में उछलता हुआ गुम्बज तक पहुँचता है और वहाँ से नीचे की ओर जाकर सारे ताज में गूँज उठता है।

ताज से लौटते समय हमें बस मैं एक ऐसा आदमी मिला जिसकी याद भुला नहीं पाऊंगा। उसके पास सैनिक अखबार था जिसमें सम्मेलन का विवरण छपा था। गणेश जी के पास एक दूसरा अखबार था जिसमें सम्मेलन की संक्षिप्त रिपोर्ट छपी थी। अतएव उन्होंने सहज ही लपककर उस अखबार को मांगा उसे उलट पलटकर देखा और कहा—भाई साहब अगर आप हमारे अखबार से अपना अखबार बदल लें तो अच्छा रहे। उस ने कहा—नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। गणेश जी ने कहा—“मैं एक खास उद्देश्य से इस अंक को मांग रहा हूँ।” वह बोला “आप जिस उद्देश्य से मांग रहे हैं मैं उसी उद्देश्य से इसे नहीं दे रहा हूँ।” सुनकर मैं स्तब्ध रह गया कि यहाँ का एक मजदूर भी साहित्य में इतनी दिलचस्पी खरता है। इसी बीच गणेश जी ने कहा—“देखो भाई इसमें सम्मेलन की रिपोर्ट छपी है इसी से उसे मांग रहा था।” वह बोला—मैं अच्छी तरह जानता हूँ आप राशि फल के लिए ही यह अंक मांग रहे हैं और मैंने भी इसी के लिए इसे खरीदा है। इस तरह के सुखंद क्षणों में हमने विदा ली।

जनपदीय भाषाओं के कोश निर्माण का प्रश्न

(श्री गणेश चौबे पो० बंगरी जि० चम्पारन)

हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् के पुनर्गठन से जनपदीय कार्य-कर्त्ताओं में फिर से नयी आशा और नये उत्साह का संचार हुआ है। परिषद् के संयोजक श्री वृन्दावनदास का यह विचार कि परिषद् के काम का आरम्भ जनपदीय भाषाओं के कोश के प्रणयन और प्रकाशन से हो, स्तुत्य है। इस सम्बन्ध में श्री कृष्णानन्द जी गुप्त के दो पत्र ‘ब्रज भारती’ के गतांक में प्रकाशित हैं जिनमें यह सुझाव है कि पहले हम हिन्दी क्षेत्र की जनपदीय बोलियों के कोश का निर्माण करें, फिर सुविधानुसार उनकी सहायता से एक ऐसे बृहद् कोश का संपादन हो, जिनमें हिन्दी क्षेत्र के सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित रहें। उन्होंने कोश निर्माण की प्रणाली की ओर संकेत किया है जो अत्युपयोगी है।

जनपदीय भाषाओं की कोश रचना का काम एक महान् अनुष्ठान के समान है, जिसका साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं भाषा वैज्ञानिक मूल्य आँका नहीं जा सकता है। यह राष्ट्रीय महत्व का कार्य जिस दिन पूरा हो जायगा, हिन्दी अपने सौभाग्य पर अग्रगण्य लगेगी। हम तो यह कहेंगे कि

यदि अन्तर्जनपदीय परिषद् किसी एक भी जनपदीय भाषा के शब्दों का विधिवत् संग्रह कराकर उनका एक प्रामाणिक कोश प्रकाशित कर दे तो वह इतने ही से अपनी उपयोगिता सिद्ध कर देगी ।

शब्द-संकलन की उपादेयता

हिन्दी की शब्द-रंकता सर्व विदित है । हिन्दी की शब्द-संपदा बहुत सीमित है । इधर पारिभाषिक शब्दों के रूप में उसमें नये-नये शब्दों का प्रवेश अवश्य हुआ है, लेकिन लोक जीवन और लोक भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाले शब्दों का उसमें बहुत अभाव है । यहाँ तक कि कोई लेखक अपने मनोगत भावों को व्यक्त करने में कभी-कभी अपने को असमर्थ पाता है । हिन्दी के साहित्यकारों का बड़ी तेजी से धरती से नाता टूटता जा रहा है । वे लोक शब्दावली को अपनाने में एक हिचक का अनुभव करते हैं क्योंकि वे इसे गँवारू वस्तु मानते हैं । लोक भाषाओं की अभिव्यंजना-शक्ति कितनी प्रबल है, इसका दो-एक उदाहरण देना अनुपयुक्त नहीं होगा । हिन्दी में खेत को जोतने के लिये केवल एक शब्द है, 'जोतना' । लेकिन यदि हम विभिन्न प्रकार की जुताई के लिये भोजपुरी में प्रचलित शब्दों को अपनाना चाहें तो हमें 'जोतना' के अतिरिक्त मसाहना, विदाहना, उछाहना, उनाहना, टोरियाना, खड़ियाना आदि अनेक शब्द मिल सकते हैं । इसी प्रकार सूप द्वारा अनाजों को बनाने के लिये भोजपुरी में फटकना, पंइचना, डोकना, निछड़ना, भटकारना, अंइटना आदि कई एक शब्द हैं, जो विविध ढंग से सूप को चलाने के लिये व्यवहृत होते हैं । इस प्रकार के अनेक उदाहरण अन्य जनपदीय भाषाओं से भी उपस्थित किये जा सकते हैं । यदि कोई साहित्यकार यह कहे कि ऐसे शब्दों के प्रयोग के बिना भी उसका काम चल सकता है, तो यह अभियोग स्वतः सिद्ध हो जाता है कि हमारे साहित्यकारों के पैर धरती से उखड़ चुके हैं । सबसे अधिक चिन्ता की बात तो यह है कि बदली हुई सामाजिक स्थिति में इन शब्दों का प्रयोग कम होता जा रहा है और वह समय दूर नहीं जब ये सदा के लिये विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायेंगे । जनपदीय भाषाओं में जो थोड़ा-बहुत साहित्य रचा भी जा रहा है, वह मुख्यतः हिन्दी से अनुप्राणित है और लोक जीवन से बहुत कुछ विमुख हैं । हम लोक भाषाओं के भाव-व्यंजक और व्यावसायिक शब्दों को हिन्दी में स्थान देकर उसके साहित्य की प्राणवृत्ता में वृद्धि ही करेंगे । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त बहुत से शब्दों के अर्थ का उदघाटन लोक में प्रचलित शब्दों से ही संभव है ।

अब तक के कार्य

हिन्दी क्षेत्र के लोक जीवन से सम्बन्धित हमें केवल दो ही उल्लेखनीय शब्दावलियाँ मिलती हैं जिनमें एक तो डा० अम्बा प्रसाद सुमन की कृषि सम्बन्धी शब्दावली है और दूसरी डा० हरिहर प्रसाद गुप्त की ग्रामोद्योग सम्बन्धी शब्दावली । इस दिशा में जो सब से महत्वपूर्ण कार्य हुआ है वह है डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा संपादित और बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना द्वारा प्रकाशित 'कृषि कोश' । इन कार्यों का प्रेरणा-स्रोत डा० ग्रियर्सन का 'बिहार पिजेंट लाइफ (१८८५ ई०) है जिसमें उन्होंने बिहार के कृषि, उद्योग, व्यवसाय आदि से सम्बन्धित वस्तुओं एवं उपकरणों के

विभिन्न हिस्सों के लिये भिन्न-भिन्न भागों में प्रचलित नाम स्थानोल्लेख के साथ दिये हैं। लेकिन ये संग्रह एकांगी हैं और इनसे जनपदीय भाषाओं के कोश की समस्या का हल नहीं हो सकता।

जहाँ तक एक विस्तृत और व्यापक कोश का प्रश्न है, इस दिशा में डा० फैलन का काम चिरस्मरणीय रहेगा। सन् १८८३ ई० में डा० फैलन ने “निउ हिन्दुस्तानी इङ्गलिश डिक्शनरी” नाम से एक वृहद कोश की रचना की जिसमें हिन्दी क्षेत्र के गाँवों में प्रचलित शब्द और उनके अर्थ, उनकी व्युत्पत्ति, लोक साहित्य या लोक प्रचलित गीतों से उनके प्रयोग के उदाहरण, उनके प्रचार का क्षेत्र, उनसे बने मुहावरों और उनसे सम्बन्धित रस्म-रिवाजों का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट व्यौरा दिया है। डा० फैलन एक विदेशी थे और उनका हिन्दी का ज्ञान भी सीमित था। हिन्दी के लोक प्रचलित शब्दों को कोश-वद्ध करने का यह प्रथम प्रयास था, अतः उसमें त्रुटियों का रहना स्वाभाविक है। उनके कोश को प्रकाशित हुए लगभग पिच्चासी वर्ष बीत गये, लेकिन उनके मार्ग दर्शन के बावजूद हम अभी तक ऐसा कोई कोश नहीं बना सके।

कोश के लिये शब्द संकलन का प्रश्न

हमें लोक भाषाओं के कोश का निर्माण करना है। ऐसी हालत में यह प्रश्न उठता है कि हम इसके लिये कैसे शब्दों का संकलन करें? सबसे पहले यह आवश्यक है कि भाषा पर आधारित किसी क्षेत्र या जनपद को हम उसकी भाषिक प्रवृत्तियों को देखते हुए छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट दें और प्रत्येक विभाजित खंड को एक इकाई मानकर काम आरम्भ कर दें। हमें सभी स्तर के लोगों से सामग्रियाँ इकट्ठी करनी हैं, लेकिन सामान्य जनता से प्राप्त सामग्रियाँ हमारे लिये अधिक उपयोगी हैं। हमें सभी प्रकार के शब्दों का संकलन करना है और तथा कथित अश्लील शब्द भी हमारे लिये त्याज्य नहीं हैं। हमें ठेठ शब्दों के साथ ही ऐसे तत्सम और तद्भव शब्दों को सावधानी पूर्वक लिखना है, जो अपने सामान्य अर्थ को छोड़ कर उस भाषा में विशेष अर्थ रखते हों। संस्कृत में ‘जल’ का प्रयोग सामान्य जल के अर्थ में होता है, लेकिन भोजपुरी में इसका अर्थ होता है पवित्र या पूजा का जल। इसी प्रकार संस्कृत में ‘निम्न’ का अर्थ होता है नीचा या घटिया, लेकिन इसी से बने ‘निमन’ का भोजपुरी में अर्थ होता है, अच्छा या बढ़िया। ऐसे शब्दों को अर्थ के साथ अवश्य ही लिखना चाहिये। शब्दों को उनके उच्चारण के मुताबिक लिखना चाहिये और उस स्थान के निवासी उसका जो अर्थ बतलावें, वही अर्थ लिखा जाना चाहिये। यदि एक ही शब्द के किसी क्षेत्र में अनेक रूप या अनेक अर्थ प्रचलित हों तो स्थान के साथ उनका भी उल्लेख होना चाहिये। चंपारन में ‘गाड़ी’ के लिये ‘गाड़ा’, ‘गड़ी’ और ‘गाड़ी’ तीन शब्द प्रचलित हैं। सामान्य शब्दों के अतिरिक्त घरेलू सामानों, कृषि एवं उद्योग के उपकरणों एवं उनके विविध हिस्सों से सम्बन्धित शब्दों, घोड़ा-बैल आदि पशुओं के दोष-गुण से सम्बन्धित शब्दों, कारीगरों के औजारों एवं उनकी कला कृतियों के सम्बन्ध के शब्दों को अर्थ या परिभाषा के साथ लिखना चाहिये। व्रत, पूजा, त्योहार, रस्म-रिवाज, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना से सम्बन्धित शब्दों का उनके संक्षिप्त एवं स्पष्ट व्यौरे के साथ लिख लेना चाहिये। जहाँ आवश्यकता हो, शब्दों के अर्थ के स्पष्टीकरण के लिये प्रयोगों को भी लिख लेना चाहिये। लोक साहित्य से भी प्रयोगों के उदाहरण

लिये जाने चाहिये । शब्दों के संकलन के क्रम में हमें लोक वार्त्तिक सामग्रियों को लिपिवद्ध करने का भी अवसर मिलेगा । इसके लिये डा० सत्येन्द्र के 'लोक-साहित्य विज्ञान' में आये निदेशन हमारे लिये बहुत उपयोगी हैं ।

शब्द संकलन का अन्य माध्यम उस भाषा के प्रकाशित कोश, व्याकरण, प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य ग्रन्थ तथा पत्र-पत्रिकायें, लोक साहित्य और सन्त साहित्य हैं । हम ग्रियर्सन और फ़ैलन आदि युरोपीय विद्वानों के ग्रन्थों से भी सामग्रियाँ ले सकते हैं । ऐसा करते समय हमें यह देखना होगा कि उस समय जो शब्द प्रचलित थे, वे आज प्रचलित हैं या नहीं और उनके अर्थ में कोई हेर फेर हुआ है या नहीं ? जनपदीय भाषाओं की रचनाओं में जो शब्द आये हैं, उनमें जो लोक-जीवन से यथावत् ले लिये गये हैं, उन्हें हमें ले लेने में कोई आपत्ति नहीं है । लेकिन जो शब्द लेखकों द्वारा सँवारे जाकर रचनाओं में आये हैं, उनकी हमें तत्काल आवश्यकता नहीं है । इस कार्य के लिये आधुनिक साहित्य की अपेक्षा लोक साहित्य और सन्त साहित्य अधिक उपयोगी हैं । इनमें बहुत से ऐसे शब्द मिलेंगे जिनका प्रचलन आज बोलचाल की भाषा से समाप्त हो चुका है । फिर भी वे शब्द हमारे लिये उपयोगी है । हम जितनी ही अधिक सामग्रियाँ इकट्ठी कर सकेंगे, हमारे कोश की उपयोगिता और प्रामाणिकता, उतनी ही बढ़ेगी । मोटे तौर पर हमारा ख्याल है कि दस-पन्द्रह हजार चुने हुए शब्दों से हमारा काम चल जायगा ।

इस पुनीत कार्य के लिये प्रत्येक जनपद में विभिन्न स्थानों के पचासों निस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं की जरूरत होगी जो विशुद्ध सेवा भाव से अपनी फुरसत के समय को इस कार्य के लिये दे सकें । उन कार्य कर्त्ताओं को एक निदेशक की भी आवश्यकता होगी, जिनसे कार्यकर्त्ताओं को बराबर सम्पर्क बनाये रखना होगा । प्रत्येक संकलित शब्द के लिये अलग-अलग कार्ड या स्लिप तैयार करनी होगी । तत्पश्चात् सभी कार्यकर्त्ताओं को एक स्थान पर एकत्रित होकर संकलित सामग्रियों का निरीक्षण-परीक्षण करना होगा, शंका-समाधान करना होगा । तब कहीं अच्छे और प्रामाणिक कोश का निर्माण संभव हो सकेगा । इस सम्बन्ध में हम अन्य विद्वानों के विचार भी जानने को उत्सुक हैं ।

अन्त में हम इतना ही कहना चाहते हैं किसी सत्कार्य के सम्पादन पर उसके कर्त्ता को आत्मनुष्टि अवश्य होती है जो परिश्रम का सब से बड़ा पुरस्कार है । वस्तुतः सरस्वती मन्दिर के एकनिष्ठ पुजारी को सुयश ही मिलता है, अर्थ लाभ तो उसके लिये गौण और नगण्य है ।



पत्र व्यवहार

श्री बाबू वृन्दावनदास जी.

८/७ हरिनगर, प्रयोग

१७-८-६८

जय ब्रज भाषा !

हर्ष है कि १६-८-६८ की बैठक में आपके सभापतित्व में ब्रज-साहित्य-मंडल ने जनपदीय भाषाओं सहित ब्रज-भाषा कोश-निर्माण के शुभ व्रत का संकल्प कर लिया । यदि यह पुण्य सारस्वत अनुष्ठान आपने संपन्न करा लिया तो निश्चय ही आपके यश और कीर्ति का यह एक समुज्ज्वल स्तम्भ होगा और साहित्य को मंडल की यह अक्षय देन होगी । भगवान् ब्रजेश्वर मंगल करें ।

ब्रज-साहित्यमंडल में निम्नांकित ग्रन्थों को तुरन्त जुटाना चाहिये और पश्चिमी हिन्दी की जनपदीय भाषाओं (हरियाणवी, कौरवी, कन्नौजी, बुन्देली और ब्रज) के क्षेत्रों से शब्दावली एकत्र कराके उनके कार्ड तैयार होने चाहिये । प्रत्येक शब्द के आगे स्थान निर्देश भी रहे और आवश्यकता हो, तो जाति विशेष का भी उल्लेख हो सकता है । कुछ शब्द कुछ विशिष्ट जातियों में कुछ विशिष्ट अर्थों ही में प्रयुक्त हुआ करते हैं । ब्रज भाषा के प्रमुख काव्य-ग्रन्थों से भी शब्द-संकलन करना चाहिये ।

संग्राह्य ग्रन्थ—(१) जान ए. प्लाट्स कृत डिक्शनरी ऑफ उर्दू, क्लासिकल हिन्दी एण्ड इंग्लिश । (२) एस. डबल्यू फेलन कृत न्यू हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी । (३) पैट्रिक कारनेगी कचहरी टैक्टेनीकलिटीज, इलाहाबाद मिशन प्रेस, सन् १८७७ ई० । (४) विलियम क्रुक, ए रूरल एण्ड एग्रीकल्चरल ग्लोसरी फॉर नार्थ वेस्ट प्रोविंसैंज अवध, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इण्डिया, कलकत्ता, १८८८ ई० । (५) कृष्ण जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली भाग १ व २ (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद) । (६) ब्रजभाषा सूरकोश (संपा. प्रेमनारायण टंडन) । (७) हिन्दी शब्द सागर (ना. प्र. सा. काशी) ।

मंडल की ओर से एक विज्ञापित निवेदन प्रकाशित होना चाहिये विभिन्न दैनिक पत्रों में कि—‘जिन सज्जनों ने हरियाणवी, कौरवी, कन्नौजी, बुन्देली और ब्रज भाषा की जनपदीय-शब्दावली पर कार्य किया है वे मण्डल को अपने ग्रन्थों की सूचना देने की कृपा करें । सूचनायें प्राप्त होने पर उन सभी ग्रन्थों को मण्डल अपने पुस्तकालय में शीघ्र मंगावे ।

मथुरा और वृन्दावन के मन्दिरों से सम्बन्धित पूजा, भोग, कीर्तन, नृत्य, वादन, शृङ्गार आदि से सम्बद्ध शब्द-संकलन विशाल रूप से संगृहीत किया जाना चाहिये । इसमें पैनी और विस्तृत दृष्टि से काम कराने की आवश्यकता है । शेष फिर कभी ।

हर्ष है आप स्वस्थ और सानन्द हैं ।

आपका

अम्बा प्रसाद ‘सुमन’

अद्धेय बाबू वृन्दावनदास,

बी. ए. एल-एल. बी,

सम्पादक, ब्रज भारती,

प्रखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा ।

ई नन्दी स्ट्रीट, कलकत्ता-२६

१४-७-६८

पूज्यवर,

सविनय प्रणाम ।

आपने प्रखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल के (गाजियाबाद में होने वाले १५ वें अधिवेशन में दिया गया अपना अध्यक्षीय भाषण मेरे पास भेजने की कृपा की है। इसके लिये मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। बड़ों के सहज स्नेह की थाह नहीं होती है।

ब्रज भारती के ज्येष्ठ के अंक में मेरी कविता को अच्छे रूप में प्रकाशित करने की अनुकम्पा भी आपने कर दी है। अनुगृहीत हूँ।

आपका अध्यक्षीय भाषण सर्वथा पठनीय, मननीय और करणीय है। ब्रज मंडल की सर्वाङ्गीण उन्नति के सदुद्देश्य से आपने जो सुभाव उपस्थित किये हैं वे सर्वथा व्यावहारिक हैं और उन्हें यथाशीघ्र कार्य में परिणत करना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रजभाषा, अन्तर्जनपदीय उन्नयन, हिन्दी-प्रचार, साहित्यकारों की समस्याएँ, सार्वजनिक संस्थाएँ—आदि विषयों पर आपके विचार मर्मस्पर्शी और हृदयग्राह्य हैं। आपके इस कथन से प्रत्येक हिन्दी साहित्यानुरागी सहमत होगा कि “ब्रज भाषा और हिन्दी का ऐसा अविच्छिन्न सम्बन्ध है कि हिन्दी के हित के लिये ही ब्रजभाषा के संरक्षण, संवर्द्धन और उन्नयन की आज उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि पहले किसी काल में थी। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति राम और कृष्ण के बिना निष्प्राण है, उसी प्रकार ब्रजभाषा-साहित्य के बिना हिन्दी।.....ब्रज भाषा हिन्दी के साहित्य की भाषा है। यदि हिन्दी से ब्रज भाषा-साहित्य निकाल दिया जाय तो रह ही क्या जाता है? “हिन्दी के निरुक्ति शास्त्र की चर्चा करते हुए आपने श्री कृष्णानन्द जी गुप्त का मन्तव्य उद्धृत किया है कि हिन्दी की स्थानीय भाषाओं के कोश निर्माण किये जायें। मैं समझता हूँ कि सर्व प्रथम ब्रज भाषा का ही सर्वाङ्ग मुन्दर विस्तृत कोष तैयार होना चाहिये, जिसमें ब्रज के मुहाविरे और कहावतें भरपूर हों। परन्तु यह कार्य समय साध्य और व्यय साध्य है। फिर भी इसके लिये प्रयत्न तो करना ही चाहिये। हिन्दी प्रचार का एकमात्र रचनात्मक उपाय वही है जिसे आपने इस प्रकार व्यक्त किया है— “हमें रचनात्मक कार्य करके हिन्दी को इतना समर्थ और लोकप्रिय बना देना है कि उसके बिना देश के किसी भाग के निवासी का गुजारा ही न हो सके।” हिन्दी में इतनी सामर्थ्य होगी तो उसके प्रचार का प्रश्न ही नहीं रहेगा। ब्रज साहित्य मंडल के ध्येय के विषय में आपने कहा है कि उसका ध्येय “केवल ब्रज की साहित्यिक उन्नति ही न होना चाहिये, प्रत्युत उसका ध्येय तो ब्रज की सर्वाङ्गीण अर्थात् साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और औद्योगिक उन्नति होनी चाहिये।” इस प्रकार ब्रज साहित्य मंडल की कार्य गुस्ता और जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है और उसे अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये भीष्म प्रयत्न करना पड़ेगा।

(शेष पृष्ठ ४७ पर)

ग्रन्थालोचन

(श्री राजेन्द्ररंजन, एम. ए.)

ब्रज और बुन्देली लोक गीतों में कृष्ण कथा—

डॉ० शालिग्राम गुप्त, एम. ए., डी. फिल;

प्रकाशक : विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-३; मूल्य—१२.५०

श्री कृष्ण भारतीय जन-जीवन के अभिन्न अङ्ग हैं, कृष्ण ने जितना उसे प्रभावित और आकर्षित किया है, संभवतः अन्य किसी महाविभूति ने नहीं। कृष्ण का स्वरूप और जीवन अगुणी-गुणी, धनी-निर्धन, मूर्ख-विद्वान्, भक्त-ज्ञानी, आध्यात्मिक-वैज्ञानिक, कवि-दार्शनिक, तथा रसिक और चिन्तक सभी को समान रूप से चिन्तन-मनन, गायन-कथन और अनुसंधान का विषय रहा है। सभी ने कृष्ण को विविध रूपों में निरखा-परखा और अपनाया है। कोई कृष्णस्तु भगवान् स्वयं कहता है, तो कोई उन्हें 'रसोवैसः' बताता है, कोई उन्हें ऐतिहासिक युग पुरुष सिद्ध करता है तथा कोई उन्हें महान् राजनीतिज्ञ। इस नानात्व का कारण है—श्री कृष्ण के जीवन की विराटता तथा व्यक्तित्व की व्यापकता, एवम् इसी विराटता और व्यापकता के साथ ही उनका रूप इतना लुभावना रसमय और अद्भुत है कि युग-युगों से वह भारतीय जन-मानस में अटल रूप से बसा हुआ है। इसी हृदगत सौन्दर्य की परिस्फुरणा कृष्णलोक काव्य के रूप में हुई जिससे लोक-जीवन सवंधा परिव्याप्त है। कृष्ण भक्ति साहित्य का 'भंव्य रत्नलोक' इसी लोक-काव्य के धरातल पर निर्मित हुआ है, जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—“धुरसागर किसी चली आती हुई गीत काव्य परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।” यथार्थतः आचार्य शुक्ल का यह कथन युक्ति युक्त है क्योंकि लोक-काव्य ही शास्त्रीय साहित्य का पुरोधा है। इत्थम् कृष्ण और कृष्ण-साहित्य को तात्त्विक दृष्टि से आंकने के लिए यह आवश्यक है कि 'सहस्र स्रोतस्विनी लोक-काव्य गङ्गा' में आलोड़न और निमज्जन किया जाय। डॉक्टर शालिग्राम गुप्त का ध्यान इस तथ्य की ओर गया है और उसी की परिणति प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि हेतु स्वीकृत हुआ है।

ब्रज और बुन्देली क्षेत्र कृष्ण लोक-काव्य के केन्द्र हैं, अतः इन दोनों ही क्षेत्रों के लोक-गीतों का अध्ययन-प्रनुसन्धान करके लोक परिव्याप्त कृष्ण-कथा के विविध सूत्रों का गुथन करके डॉ० गुप्त ने कृष्ण भक्ति साहित्य के आदि क्रम की धुंधली दिशा को प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के दो भाग हैं; विवेचन एवं गीतसंग्रह। डॉ० गुप्त के अनुसार कृष्ण-कथा सम्बन्धी लोकगीतों का उद्गम जीवन की विविध परिस्थितियों और 'भावात्मक स्तर' के बीच हुआ है। “इन गीतों में प्रमुख भावना जीवन की अभिव्यक्ति की है और इसी आधार पर कृष्ण-

कथा को स्वीकार भी किया है।" इसी तथ्य के सन्दर्भ में विवेचन खंड के प्रथम अध्याय में लोक-गीतों की सस्कार, ऋतु, मास व्रत क्रिया आदि भावनाओं के अन्तर्गत कृष्ण कथा की भावना और दृष्टि का विवेचन है। दूसरे-तीसरे अध्याय में ब्रज और बुन्देली के गीतों में व्याप्त कृष्ण कथा सूत्रों को सूरसागर कथा क्रम से श्रद्धालित किया है, तथा लोक मानस की मौलिक उद्भावनाओं को भी यथास्थान संजोया है। इसी प्रकार आगे भागवत, सूरसागर तथा लोकगीतों में अभिव्यंजित कृष्ण कथा की तुलना और आदान प्रदान दिखाने की चेष्टा की है, जिसमें डॉ० शालिग्राम ने आचार्य शुक्ल की उक्त मान्यता को ही दोहराया है - 'सूरदास तथा कृष्ण भक्ति साहित्य के अन्य कवियों ने ही लोकसाहित्य से अपनी कृष्ण कथा को संपन्न बनाया होगा, इसी की संभावना अधिक है।' इसी व्याख्या का पल्लवन पाँचवे अध्याय में किया गया है, जहाँ आकर वे नवीन कल्पनाओं और नूतन वातावरण के लिये लोक गायक को हिन्दी भक्ति साहित्य का ऋणी स्वीकार करते हैं। छठे अध्याय में लोक गीतों के काव्य पक्ष एवं सांस्कृतिक तत्त्व का अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में कृष्ण कथा के मुख्य पात्रों के चरित्रों की उद्भावना और लोक जीवनस्तर पर प्रकाश डाला है। 'भावात्मक स्तर' 'रूप सौंदर्य चित्रण' 'आदर्श यथार्थ परिकल्पना' आदि उपशीर्षकों में व्यक्त विचार सचमुच विचारणीय हैं और इस सन्दर्भ में वे चिन्तन की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। अभिप्रायों का अध्ययन एवं उनकी परम्परा की स्थापना शीर्षक अध्याय में डॉ० गुप्त ने सहज सामान्य प्रचलित अभिप्रायों की चर्चा की है जिनसे लोक गीतों की परम्परित शैली का भान होता है।

'लोक तात्त्विक दृष्टि और कृष्ण कथा' शीर्षक अध्याय में भारतीय संस्कृति के मूल उपकरणों में कृष्ण कथा और कृष्ण वार्ता का अद्वितीय स्थान स्वीकार करते हुए भी आगे डॉ० गुप्त उनके अप्रतिम प्रभाव को १५, १६ वीं शताब्दी से पहले न्यूनतर बताते हैं, जो भारत के प्राचीन पौराणिक इतिहास से सम्मत नहीं जान पड़ता। भारतीय संस्कृति के मूल में कृष्ण की प्रतिष्ठा तो महर्षि वेद व्यास ने ही कर दी थी और कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ के समय से ही कृष्ण का पूजन-अर्चन, मन्दिर निर्माण और मत-प्रसार आरम्भ हो गया था। आगे जहाँ डॉ० गुप्त कृष्ण कथा की भारत से बाहर प्रचलित बनाते हैं, वहाँ केवल यूनानी पुराण में जियस के जन्म की कथा का संकेत भर देकर रह जाते हैं।

यद्यपि डॉ० शालिग्राम गुप्त की यह उक्ति कि "लोक मेधा समानधर्मा व्यक्तियों को एक में मिला देने में कुशल होती है।" लोक साहित्य के निश्चित सत्य का उद्घाटन करती है तथापि उनका कृष्णासुर अथवा पचासहजार कृष्णों (जाति विशेष) का समन्वय 'रोटी-सतुआ' न्याय है। पुराणों में कृष्ण के समक्ष इन्द्र की हीनता में डॉ० गुप्त को वैदिक कृष्णासुर के सन्दर्भ की प्रतिक्रिया प्रतीत होती है, यह समझ से परे की बात है, जबकि वे स्वयं आगे कहते हैं कि "(वेदों में) कभी-कभी उन्हें (विष्णु को) इन्द्र से बड़ा भी स्वीकार किया गया है" अथवा वैदिक-काल में ही राजा इन्द्र विष्णु की प्रति योगिता में नीचा देखते हुए से जान पड़ते हैं। तब विष्णु के ही अवतार कृष्ण के आगे इन्द्र की हीनता उन्हें अस्वाभाविक किस प्रकार लगती है ?

आगे "वैदिक कृष्ण के व्यक्तित्व के साथ अहिंसा, सत्य आदि का सम्बन्ध होता उन्हें गीता के उपदेश और भागवत धर्म के पूज्य कृष्ण के अत्यन्त निकट ले जाता है।" कह कर अपने

निष्कर्ष में डॉ० गुप्त लिखते हैं—“इस प्रकार वर्तमान कृष्ण कथा में कृष्ण इन्द्र विरोधी हैं। कृष्ण आश्रम के अन्तेवासी हैं। सांदीपन के यहाँ वे देवकी पुत्र हैं।.....कृष्णदस्यु हैं, दसहजार उनके अनुयायी हैं जिसका रूपान्तर बौद्धघत जातक में है। कृष्ण यहाँ दस्यु हैं, वे राजा कंस के लिये आती हुई भेंट को लूट लेते हैं।...संभवतः महाभारत या पुराणों ने कृष्ण के जिस चरित्र को विकसित किया है वह ऐतिहासिक वासुदेव कृष्ण से भिन्न हैं।” परन्तु निष्कर्ष का मूल ‘संभवतः घतजातक’ हैं जबकि घतजातक में कृष्ण चरित्र की विकृत, विरूप और विरल समानता है। असितंजन नगर, मक्का कंस, नंदगोपा (स्त्री) उसके पति अंधकवेणु, उपसागर, अंजनदेवी आदि नाम और कथा क्रम भी मूल कृष्ण कथा से कितनी दूर हैं यह कहने की बात नहीं तथा इस पर भी बौद्धजातक और वैदिक कृष्ण का ताल मेल बिठाने की चेष्टा असंगत सी है। जब कि महाभारत कृष्ण के ऐतिहासिक चरित्रक्रम को प्रस्तुत करता है तब ‘घतजातक’ को द्रविड़ प्राणायाम करके कृष्ण से मिलाना कैसा लगता है? क्या यह इतने विशाल और व्यापक संस्कृत साहित्य की उपेक्षा नहीं। बौद्ध जातकों को महाभारत या भागवत से पूर्व प्रचलित मानना महान् भ्रान्ति है, महाभारत आदि पुराणों में विकसित कृष्ण को वे वासुदेव कृष्ण से पृथक् किस अनुमान से बतलाते हैं? तथा कृष्णलीला को वस्तुतः सूर्य लीला ही बतलाने का संकेत क्या कृष्ण की ऐतिहासिकता को समाप्त नहीं करता? कृष्ण की लीला के आध्यात्मिक, तान्त्रिक अर्थ निकालना या उस पर रूपक का आरोप करना अलग बात है पर उसे वास्तविक सूर्य लीला बतला देना मात्र बुद्धि विलास के और क्या है? (यद्यपि डॉ० गुप्त ने अपनी टिप्पणी वहाँ नहीं की है। पर उसका उल्लेख तो है ही) अस्तु !

इस शोध प्रबन्ध की अपनी विशेषता है। डॉ० गुप्त के लोक-काव्य के मंथन से जहाँ कृष्ण कथा के विविध स्रोतों का पता चलता है वहीं कृष्ण भक्ति साहित्य की भूमिका प्रस्तुत होती है अतः डॉ० गुप्त का परिश्रम और प्रयास महत्त्व पूर्ण है। इससे भी अधिक महत्त्व की वस्तु इस प्रबन्ध का अन्तिम खंड है—गीत संग्रह। इस संग्रह में डॉ० शालिग्राम ने ब्रज और बुन्देली के ४२८ गीतों का आकलन किया है जो अभी तक इस रूप में नहीं हुआ था। यद्यपि डॉ० सत्येन्द्र ने पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ में तथा अन्य विद्वानों ने ‘ब्रजभारती’ के माध्यम से ब्रज लोक गीतों का अच्छा संकलन किया है पर कृष्ण सम्बन्धी लोक गीतों के संग्रह ने निश्चित ही उनके प्रबन्ध की महर्थता बढ़ा दी किन्तु यहाँ भी कष्टदायी बात यह रही कि इन लोक गीतों में भाषा विकृति और लिप्यन्तर बहुत हैं। न तो ब्रजी शब्दों के रूप तद्वत् हैं न क्रिया पद, विभक्तियाँ अधिकांशतः अस्वाभाविक हैं अतः भाषा की मधुरता और सहज कोमलता तिरोहित हो जाने से वह निर्जीव बन गई है। इस ओर संभवतः गुप्त भी उदासीन ही रहे हैं तभी तो एक ही शब्द के अनेक रूप सभी पट ही मिल जाते हैं—यशोदा (पृष्ठ ५) जसोदा (पृष्ठ ६) जसुदा (पृष्ठ २३८/३) जमोधा (२५५/७४) यमोदा (२४६/५२) इसी प्रकार कहीं ब्रज है तो कहीं ब्रज, ब्रिज, वृज तथा कहीं कृष्ण है और दूसरी पंक्ति में कृष्ण है। क्रिया-पदों में भयो का भयो, जागियँ का जागिये, जाग्रो का जाग्रो प्रायः सर्वत्र ही कर दिया है जो ब्रजी की प्रकृति के प्रतिकूल है। इस प्रकार गीत अशुद्ध-अपूर्ण और विकृत हैं, एक गीत तो वे लिखते हैं : ‘जागो मोहन प्यारे, सूरज उगा हो गई भोर, चड़िया गायें, नाच दिखातें मोर।’ प्रसिद्ध रसिया ‘लाला की पैजनियाँ बाजै रे’ को तो विरूप ही कर दिया है, पैजनियाँ का

पेजनियाँ, कौ का को, उंगरि का उंगरि पीत का पीट और इस पर दो पंक्ति गायब । यत्र-तत्र चंद सखी और सूर के भी जो पद रखे हैं वे भी ऐसे ही हैं, अतः जहाँ कृष्ण लोक गीतों के संग्रह पर वे बधाई के पात्र हैं वहीं इस 'चौका-पोता' को देखकर चित्त उद्विग्न होता है और कम से कम हमारा तो होता ही है क्योंकि 'हमारे ब्रज बानी ही वेद ।' आशा है दूसरे संस्करण में इस खंड को सुव्यस्थित और शुद्ध कर लिया जायगा । भूल चूक लेनी देनी ।

महर्षि वेदव्यास

पं० उमाशङ्कर दीक्षित, एम. ए., साहित्यरत्न,

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१; मूल्य ४'५०;

भारतीय साहित्य में महर्षि वेदव्यास का अप्रतिम स्थान है—व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम् ।' वे भारतीय संस्कृति के नियोजक और नियामक थे उनके महान् ग्रन्थ आर्य संस्कृति के आधार स्तंभ है, ब्रह्मसूत्र, श्री मद्भागवत् और महाभारत तो उनके अमर ग्रन्थ हैं किन्तु उनके जीवन व्यक्तित्व कृतित्व सम्बन्ध में यद्यपि इतस्ततः बहुत सामग्री लिखी हुई है पर अभी तक एक स्थान पर और इस रूप में उसका सम्पादन न हो पाया था । किन्तु विद्वत् श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी ने सन् ६६ में वेदव्यास और उनकी साधनास्थली आदि पर सूत्र रूप में अपनी पुस्तिका 'कृष्णगङ्गा' में बहुत अच्छा प्रकाश डालकर सराहनीय कार्य किया, उसी के पल्लवन के रूप में पं० उमाशंकर दीक्षित ने सरल-सहज और ओजस्वी भाषा में समीचीन ढङ्ग से महर्षि व्यास के व्यक्तित्व, ऐतिहासिकता, व्यासों की परम्परा में वेदव्यास उनके जीवन, जन्म स्थान तथा साहित्य पर सुन्दर विवेचन किया है । 'वेदव्यास; एक ऐतिहासिक महापुरुष' अध्याय में पाश्चात्य विद्वानों के इस मत को कि वेद-व्यास एक काल्पनिक व्यक्तित्व है' बिखेर दिया है । श्री दीक्षित ने सामवेद, अथर्ववेद, बोधायन, गृह्यसूत्र, भारद्वाज गृह्यसूत्र, अष्टाध्यायी, महाभारत जगद्गुरु शंकर कुमारिल भट्ट आदि के साहित्य में प्राप्त पृष्ठ प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वेद व्यास एक ऐतिहासिक युग पुरुष हैं । यहीं आपने एक बात और बड़ी दृढ़ता से कही—'इलियड और ओडिसी काव्यों की बात रामायण और महाभारत पर आरोपित करना नितान्त भ्रामक और त्रुटिपूर्ण है । एक तो ग्रीक काव्यों की उत्पत्ति के समय उस देश में वर्णमाला तक न थी । यहाँ तक कि वहाँ पठन-पाठन के विषय में कोई उल्लेख भी प्राप्त नहीं है, जब कि भारतीय सभ्यता उससे प्राचीन है ।' महर्षि वेदव्यास के आश्रम और जन्म-स्थान का निरूपण करते हुए श्री दीक्षित ने भारत में उसके विविध आश्रमों का उल्लेख किया है तथा श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी के इस मत की पुष्टि की है कि मथुरा में सोम और वैकुण्ठ तीर्थों के मध्य स्थित 'कृष्णगङ्गा तीर्थ' उनकी साधना स्थली है । किन्तु वे श्री चतुर्वेदी के इस मत से सहमत नहीं कि माँट ग्राम के पास छोटोदरी ग्राम व्यास का जन्मस्थान है, उनका मत यह है कि 'आगरे के पास रुकुता से कुछ ही दूर पर एक घाट है जिसे मछोदरी घाट कहते हैं । यहीं यमुना-पार वेदव्यास का एक मन्दिर भी है ।' यही व्यास का जन्मस्थान है ।

यह तो निश्चित है कि व्यास का जन्म कालिन्दी के तट पर निषाद कन्या मत्स्योदरी या मत्स्यगंगा के गर्भ से हुआ तथा कालिन्दी के एक द्वीप में ही हुआ जिससे वे वैष्णव कहलाये अतः

यदि मछोदरी घाट को ही व्यास का जन्मस्थान माना जाय तो असंगत न होगा। इस प्रकार श्री दीक्षित की यह पुस्तक अपनी गरिमा लिये है। आशा है इसी प्रकार वे ब्रज की अन्य विभूतियों पर भी प्रकाश डालेंगे।

अध्यात्म भागवत

श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी

गीता ज्ञान मण्डल, मानिक चौक मथुरा, गुरु दक्षिणा २) ब्रज आध्यात्मिक भूमि है तथा यहाँ श्रीकृष्ण की लीलाओं में भी विचारकों ने तत्त्व के दर्शन किये हैं। ब्रजभाषा में लिखी इस सरल सरस रचना में मुकुन्द जी ने इसी तथ्य को निखारा है—कृष्ण जन्म का अध्यात्म रूप प्राकृत है।

भादों 'मोह' सदांध अंधेरी 'दुविधा' छाई
आठैं 'अष्ट उपाधि' जीव 'संताप' सताई
अरध निसा 'अज्ञान' 'विपति' कारी अधियारी
आत्म जोति 'चैतन्य' प्रघट 'केसव' तनधारी
सूप राखि 'संसारमति' पहुँचे गोकुल ज्ञान
'बुधि' जमुधा सोई जहाँ नौंद अचेतन प्रान ॥

सगुन बालक लहौ

(पृष्ठ ४२ का शेष)

मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार ब्रज-मंडल की सर्वाङ्गीण उन्नति करना देश के सभी विचारशील व्यक्तियों का कर्तव्य होना चाहिये। ब्रज-मंडल श्रीकृष्ण जन्मस्थान और लीलानिकेतन है। कृष्ण-भक्ति की देश-परिष्ठावक मन्दाकिनी का उद्गम है। भागवत (वैष्णव) धर्म के सूर्य का उदयाचल है, धर्म-प्राण हिन्दुओं का तीर्थ है, हिन्दी काव्य का स्वर्गलोक है, भारतीय संस्कृति का केन्द्र है, है, गोधन का प्राचीन प्रतिष्ठान है।

अतएव यदि व्यापक दृष्टि से और निष्ठा के विचार से देखा जाय तो ब्रज मण्डल के साहित्य, संस्कृति तथा अन्य समस्त विशेषताओं के संरक्षण और उन्नयन का उत्तरदायित्व केवल ब्रजवासियों पर ही नहीं है, वरन् एक प्रकार से समस्त देश पर है। राजनीति से कोई सम्बन्ध न होने के कारण इस कार्य में संकुचित प्राप्तीयता का कोई प्रश्न ही नहीं है। इसलिये इस यज्ञ के अनुष्ठान में सारे देश का सक्रिय सहयोग वांछनीय है। आप जिस तत्परता और लगन से ध्येय प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें सर्वतोमुखी सफलता अवश्यम्भावी है परन्तु अपने प्रयत्न को अखिल भारतीय स्तर पर लाइये तो अधिक उत्तम हो।

इतना लम्बा पत्र लिखने के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ, क्योंकि आपके समय के मूल्य पर मुझे ध्यान देना चाहिये।

बिनीत

श्यामसुन्दर खत्री

- १-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूवे धूल में मिला दिए ।
- २-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके ।
- ३-हमें अपने कोर्भे अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है ।
- ४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है ।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है । जिला सहकारी बैंक में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, व्याज दूसरे बैंकों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा ।



जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे ।



व्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत वार्षिक
कौल डिपोजिट पर	३।।	" "
६ माह की अमानत पर	५।।	" "
१ साल की अमानत पर	६।	" "
२ साल की अमानत पर	६।।	" "
३ साल की अमानत पर	६।।।	" "
४ साल की अमानत पर	७	" "
५ साल की अमानत पर	७।	" "
७ साल की अमानत पर	७।।	" "

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

कल्याण तैल

गठिया का दर्द
शरीर की जकड़न
जोड़ों में दर्द
पसली के दर्द
कमर में दर्द को
आराम पहुंचाता है



निर्माता :-

सहकारी औषधि निर्माणशाला
रानीखेत उ.प्र.

अपनी सम्पूर्ण वचत आज ही उत्तर प्रदेश को आपरेटिव बैंक लिमिटेड प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साभेदारी तथा
बैंकिंग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा
निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिंग संस्था है

शाखाएँ—आगरा, अल्मोड़ा, बरेली, फैजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर,
गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी ।

क्षेत्रीय कार्यालय—आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली ।

हमारी विशेषताएँ

- १—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना ।
 - २—प्रत्येक प्रकार की बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना ।
 - ३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना ।
- आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी समृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०-६-६०	३०-६-६५
१—पूँजी	२५४.७६ लाख	५३८.७६ लाख
२—अमानतें	७४७.४६ लाख	२०६०.०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५.६५ लाख	३३३६.२५ लाख
४—लाभ	१६.०५ लाख	३७.०२ लाख

ए० पी० सिंह

आई० ए० एस०

अध्यक्ष

मथुरा सिंह

उपाध्यक्ष

धीर सिंह वर्मा

सामान्य प्रबन्धक

बाबू वृन्दावनदास अध्यक्ष ब्रज साहित्य मण्डल, के लिए राष्ट्रीय प्रेस,
डेम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

ब्रज भारती

मार्गशीर्ष सं० २०२५ वि०



सम्पादक :

श्री वृन्दावन दास

बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २२]

वार्षिक मूल्य ४)

[अंक ३

* अनुक्रमणिका *



क्र० सं०	लेख	लेखक	पृष्ठ० सं०
१—सम्पादकीय		... श्री वृन्दावनदास	१
२—स्थानीय भाषाओं का वृहद् संग्रह		... पद्मविभूषण डा० वृन्दावनलाल वर्मा	४
३—	”	... श्री गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर'	६
४—खड़ी बोली के युग में ब्रजभाषा का महत्व		... श्री प्रेम नारायण मिश्र एम० ए०	७
५—सूरसागर की एक दुर्लभ प्रति		... श्री उदयशंकर 'शील' एम० ए०	९
६—बुन्देलखण्ड की भारतीय हिन्दी रङ्ग-मंच को देन		... डा० गनेशीलाल बुधौलिया	१७
७—मथुरा महिमा		... डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	२१
८—सरद सुहाई (कविता)		... श्री सुभाषी आगरा	२५
९—ब्रज के कुछ स्थान अभिधान		... डा० लक्ष्मोनारायण मिश्र 'नीरव'	२६
१०—बौद्ध-धर्म और उसका प्रचार		... श्री वृन्दावनदास	३२
११—काव्यकृति सुपर्णा की समीक्षा		... श्री रमेशचन्द्र दुबे एम० ए०	३६
१२—अन्तर्जनपदीय विषयक पत्र व्यवहार		... श्री कृष्णानन्द जी गुप्त	४१
१३—हम्मीरहठ-एक पारम्परिक वीर रचना		... डा० भगवानसहाय पचौरी	४४
		पी० एच० डी०	
१४—मीरा का स्वप्न		... श्री ब्रजनन्दन गुप्त 'ब्रजेश'	४७



ब्रज भारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २२] मथुरा मार्गशीर्ष सं० २०२५ [अङ्क ३

सम्पादकीय—

इन दिनों मण्डल के तत्वावधान में कई साहित्य गोष्ठियों का सरस कार्यक्रम रहा । कु० हरिश्चन्द्रदेव वर्मा चातक मथुरा पधारे । उनके चार दिन के विश्राम काल में नित्यप्रति साहित्यिक चर्चा रही । एक दिन तो उपस्थित कवियों के सम्मुख उन्होंने अपनी कविता की २१ शैलियों में से कम से कम १० शैलियों को पढ़ कर सुनाया । उपस्थित सभी सज्जन भाव-विभोर हो गये । उस दिन सर्व श्री भगवानदत्त चतुर्वेदी, बालमुकुन्द चतुर्वेदी, दीनानाथ सुमनेश, राजेश दीक्षित, कैलाशचन्द्र कृष्ण, राजाबाबू वर्मन विष्णु कवि आदि सभी कवियों ने बड़ी सरस कविताएँ चातक जी को सुनाई । चातक जी ने श्रीश्यामसुन्दर सुमन रचित ब्रजभाषा के उपन्यास मनसुखा का भी विमोचन किया ।

एक सरस पत्र

श्री ब्रजनन्दन गुप्त 'ब्रजेश' कोट बाजार राठ (हमीरपुर) ने हमें एक पद्यात्मक पत्र भेजा जो कि निम्नलिखित है—

वृन्दावनहि 'ब्रजेश' कव, कीन्हों इतो उदास ।
जैतो तूम हमको कियो, श्री वृन्दावनदास ॥
हमहुँ वाहि ठामें वसैं, जहाँ बसैं श्रीश्याम ।
कारे वे कारे हमहुँ कहा भेद को काम ॥
पाती को उत्तर लिखो तुम्हें प्रेम सौगन्ध ।
मीरा रेखा चित्र कौ कीन्हों कौन प्रबन्ध ॥
अमर रहे ब्रजभारती दिन दिन होय विकास ।
अमर रहैं 'ब्रजरज रतन' श्रीवृन्दावनदास ॥

गुप्तजी की शुभ-कामनाओं और आशीर्वाद के हम अत्यन्त आभारी हैं । वे बड़ी मार्मिक, हृदयग्राही और सरस कविता की रचना करते हैं । जहाँ तक कविता का सम्बन्ध है हम यदाकदा ब्रजभाषा की कविता ब्रजभारती में देने को उद्यत रहते हैं परन्तु लेख तो शोधात्मक ही होने

चाहिये । पत्रिका में केवल भावनापरक लेखों को छापने की परम्परा नहीं रही है । हम अगले अङ्क में गुप्तजी की एक अन्य सरस कविता प्रकाशित करेंगे ।

साहित्यिक यात्रा

गत २३ दिसम्बर को आगरा में प्रख्यात कविवर पं० हृषीकेश चतुर्वेदी की साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष में स्वर्ण जयन्ती मनाई जाने वाली थी तथा ता० २४ को फीरोजाबाद में वयोवृद्ध पत्रकार एवं साहित्य महारथी पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के ७७ वें वर्ष के उपलक्ष में समारोह था । अतः जब ता० २३ दिसम्बर को मध्याह्नोत्तर चार बजे मैं आगरा जाने लगा तो मेरे नवयुवक मित्र श्रीराम प्रसाद कमल ने कहा कि आज तो आप द्विदिवसीय साहित्यिक यात्रा पर जा रहे हैं । उनकी बात वाचन तोले पाव रत्ती ठीक बैठी । यह यात्रा तो पूर्णतः साहित्यिक रस से सराबोर थी ।

पं० हृषीकेशजी अपनी साहित्य सेवा के ५० वर्ष व्यतीत कर चुके हैं । सरस्वती के मन्दिर में अपनी साधना से तथा अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से पं० हृषीकेशजी साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं । परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वह चेतना है जो उन्होंने आगरा के विभिन्न वर्गों में साहित्य और सांस्कृतिक कार्यकलापों के प्रति जागृत की है । साहित्य के प्रति वे एक ऐसे समाज में सुरुचि उत्पन्न करने में समर्थ हुए हैं जो सामान्यतया इसके प्रति उदासीन रहता है और जिसका दृष्टिकोण सदैव शुद्ध व्यावसायिक ही रहता है । चतुर्वेदी जी का स्थान साहित्यिकों का तीर्थ स्थल है । उनके यहाँ के साहित्यिक और हँसने हँसाने के कार्यक्रमों ने उनके मित्रों के जीवन की नीरसता को दूर भगा दिया है और वे सचमुच उन गोष्ठियों के उपास्यदेव बन गये हैं । हम ब्रजभारती परिवार की ओर से उन्हें बधाई देते हैं ।

फीरोजाबाद में बा० बालकृष्ण गुप्त के निवास स्थान पर श्रद्धेय पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी की ७७ वीं वर्ष गाँठ बड़े सरस वातावरण में मनाई गई । कई वक्ताओं ने चतुर्वेदी जी की जीवन भर की साहित्यिक सेवाओं पर प्रकाश डाला तथा कृतज्ञता के बड़े मार्मिक उद्गार प्रगट किये । चतुर्वेदी जी का सारा जीवन साहित्य और सार्वजनिक सेवा के प्रति समर्पित रहा है । कार्य-कर्ताओं को वे अनन्त प्रेरणा के स्रोत हैं । अपने अग्रणी पत्रों द्वारा उन्होंने देश के कौने-कौने में अनेक साहित्यिकों को देश की सेवा और साहित्य की साधना के प्रति मौलिक सुभाव दिये हैं । जीवन और जगत की अनुभूतियों में उनकी गहरी पैठ है । वे उस प्रकार के साहित्यकार हैं जो समस्याओं से कभी विचलित नहीं होते अपितु उनके समाधान के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं । अपनी गहरी पैठ से उन्होंने जो अनुभव रत्न प्राप्त किये हैं उनको उन्होंने मुक्त हस्त से बिखेर कर समाज को उपकृत किया है । जिसने उन रत्नों को बटोर लिया वह पारस का होगया । उनकी परदुःखाकार प्रवृत्ति से अनेक जरूरतमन्दों को राहत मिली है, साहित्यिक पोषण से अनेक कार्य-कर्ताओं और लेखकों का निर्माण हुआ है तथा इस अनुत्साह पूर्ण वातावरण में उनके पत्रों ने बहुत से भाइयों को संजीवनी वूटी का काम किया है । हम इस शुभ अवसर पर उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं ।

अन्तर्जन्मपदीय कार्य

अन्तर्जन्मपदीय कार्य की चर्चा जोरों पर है । इसी अङ्क में पत्र व्यवहार शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत बा० कृष्णानन्द गुप्त के पत्र पठनीय हैं । बा० कृष्णानन्द गुप्त तथा श्री गणेश चौबे

कोष सम्बन्धी कार्यों को बड़े मनोयोग से अग्रसर कर रहे हैं। उस दिन श्रद्धेय श्रीनारायणजी चतुर्वेदी ने कहा था कि उनके पास उनके पूज्य पिता श्री स्वर्गीय पं० द्वारकाप्रसादजी प्रणीत ब्रजभाषा कोष विद्यमान है। वे उसमें यत्रतत्र संशोधन करके तथा उसकी पुष्ट कागज पर प्रतिलिपि करा कर ब्रज साहित्य मण्डल को देने को तैयार हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि कोष निर्माण के कार्य की दिशा में अधिकारी विद्वान् मण्डल के साथ इतना सहयोग करने को तत्पर हैं।

पद्म विभूषण डा० वृन्दावनलालजी वर्मा का एक अत्यन्त सारगर्भित लेख इसी अङ्क में प्रकाशित हो रहा है। उन्होंने कोष निर्माण की योजना पर विशद रूप से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने कोष कैसे निर्मित हों इस पर अपने बहुमूल्य सुझाव दिये हैं। वास्तव में यदि उनके सुझावों के अनुसार कोषों का निर्माण हो सका तो वह एक महान् उपलब्धि होगी। उनकी कल्पना के कोष तो वस्तुतः स्थानीय जनता के समस्त जीवन के दर्पण होंगे। श्रद्धेय वर्माजी ने कोष-निर्माण के आर्थिक पक्ष पर बड़े व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। उन्होंने केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, शिक्षा संस्थाओं के संचालक एवं अध्यापक गण व समस्त हिन्दी प्रेमियों से अपील भी की है कि वे इस महान् अनुष्ठान में अपना योगदान देकर इस योजना को सफल बनावें। हम वर्मा जी के इस उत्साह वर्द्धन के लिए अत्यन्त आभारी हैं।



—वृन्दावनदास

स्थानीय भाषाओं का वृहद् संग्रह

एक महत्वपूर्ण योजना

(पद्म विभूषण डा० वृन्दावन लाल वर्मा भाँसी)

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मण्डल ने हिन्दी स्थानीय भाषाओं (बोलियों) के वृहद् संग्रह की योजना बनायी है और तदनुसार उसने कार्यारम्भ भी कर दिया है। विभिन्न बोलियों के कोश बनेंगे और उनके व्याकरण भी तैयार करवाये जायेंगे। आज से कई वर्ष पूर्व श्री कृष्णानन्द जी गुप्त ने बुन्देली का कोश निर्मित किया था। वह इस योजना के अन्तर्गत शीघ्र छपेगा। इसी प्रकार भोजपुरी, निमाड़ी, बनाफरी और बघेली के कोश भी अपनी अपनी भाषा के विशेषज्ञों द्वारा तैयार करवाये जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में मैंने श्री कृष्णानन्द जी के वे दो पत्र ब्रज-भारती में पढ़े जिनमें उन्होंने इन कोशों के निर्माण का सुझाव दिया और दिशा सुभायी है। उनका यह कथन बहुत उपयुक्त है कि ये सब कोश एक ही ढाँचे के बनने चाहिए। वे इस प्रकार तैयार किये जायें कि उनके द्वारा स्थान-स्थान की जनता के रहन-सहन, बोल-चाल और पोशाक-पहनावे का सही और सच्चा चित्र प्रस्तुत हो सके।

उद्योग-धन्धे सम्बन्धी शब्दों को निस्संदेह विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। प्रत्येक ठेठ और देशज शब्द के अर्थ को उदाहरण देकर स्पष्ट किया जाना चाहिए। क्रिया वाची शब्दों की विशद अथवा संक्षिप्त व्याख्या होनी चाहिये। हो सके तो यथावश्यक चित्र भी दिये जानें चाहिए। यदि इस प्रकार इन कोशों का निर्माण हो सका तो वह हिन्दी साहित्य और भाषा की एक स्थायी सेवा होगी।

मैं इस शुभ और कल्याणकारी योजना का हृदय से स्वागत करता हूँ और प्रभु से उसकी सफलता चाहता हूँ। इस प्रकार का कार्य विदेशों में वास्तव में पचासों वर्ष पूर्व हो चुका है जैसा कि गुप्त जी ने अपने उक्त दोनों पत्रों में बताया है। इङ्ग्लैन्ड से जॉन कैम्डन हॉटन (John Camden Hotten) नाम के एक सज्जन द्वारा निर्मित 'डिकशनरी ऑफ मॉडर्न स्लैंग, कैट एन्ड वलगर वर्ड्स' सन् १८५९ में प्रकाशित हुई थी। उसके प्रश्नात् एलैक्जैंडर जॉन एलिस का "दि प्रेजेन्ट इङ्गलिस डायलेक्ट्स" नामक ग्रन्थ सामने आया। उसके बाद इङ्गलिस डायलेक्ट सुमायटी द्वारा प्रकाशित "डायलेक्ट्स डिकशनरी" — का कार्य आरम्भ हुआ। यह वृहद् कोश ६ खण्डों में छपकर तैयार हुआ और वह अपने ढंग का एक अनुपम कोश माना जाता है। इसी प्रकार फ्रान्स जर्मनी, रूस, स्विटजरलैन्ड, इटली आदि देशों में भी वहाँ की बोलियों के कोश कभी के बन चुके हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक स्थान को, बोलियों के हिसाब से छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभक्त करके उनके

सं० २०२५]

एक महत्वपूर्ण योजना

[५

एटलस भी तैयार किये गये हैं यह कार्य वहां बड़ी सावधानी से किया गया है और अपार बनराशि भी उस पर खर्च की गई है ।

अतः मण्डल के उक्त कार्य का सभी ओर से सहर्ष स्वागत किया जाना चाहिए और उसे अग्रशील करने के लिए प्रत्येक सम्भव सहायता और सहयोग भी सुलभ होना चाहिए । यह कार्य केवल श्रम सापेक्ष ही नहीं है, व्यय-साध्य भी है । मण्डल ने उसे पूरा करने का बीड़ा उठा कर वास्तव में एक साहस का काम किया है । अनेक परिश्रम और स्वार्थ-त्यागी कार्य-कर्ताओं और विद्वानों की ही आवश्यकता उसके लिए नहीं पड़ेगी बल्कि पर्याप्त मात्रा में पैसा भी चाहना पड़ेगा । मेरा पूर्ण विश्वास है कि कार्य सुचारु रूप से आगे बढ़ने से मण्डल के लिए धन का अभाव नहीं रहेगा । केन्द्रीय सरकार और हमारी प्रान्तीय सरकार भी इस शुभ कार्य के लिए प्रारम्भ में ही थोड़ा-बहुत बल्कि यथावश्यक अनुदान तो दे ही सकती है, पर कोशों के तैयार होने पर पर्याप्त संख्या में उन्हें खरीद कर मण्डल के कार्य को आगे बढ़ाने में विशेष सहायक बन सकती हैं । मध्य-प्रदेश सरकार का तो इस ओर विशेष ध्यान जाना चाहिए, क्योंकि बुन्देली का वह गढ़ है और बघेली और निमाड़ी भी वहां बोली जाती है । हमारे प्रान्त की जिला परिषदें भी इन कोशों को खरीद कर सहायता कर सकती है । बुन्देली कोश के लिए तो मैं बुन्देलखण्ड के चारों जिलों की जिला-परिषदों से कह ही सकता हूँ कि उसके छपने पर वे अपने प्रत्येक प्राईमरी और जूनियर हाईस्कूल के लिए उसकी एक-एक प्रति मँगायें । हिन्दी संस्थाओं और प्रत्येक जनपद के हिन्दी-हितेपी सज्जनों से भी सहायता मिलनी चाहिए । बहुत से साहित्य प्रेमी लोग यदि चाहें तो, कोशों के लिए अग्रिम मूल्य भेज कर मण्डल का उत्साह वर्द्धन कर सकते हैं यह कार्य एक दो वर्षों का नहीं है । उसके पूरे होने में कई वर्ष भी लग सकते हैं । किन्तु मुझे आशा है कि उसमें किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं आने पायेगी और वह पूरा होगा ।



स्थानीय-भाषाओं का वृहद्-संग्रहअत्यंत महत्वपूर्ण योजना

(गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर भांसी')

लोक-सेवा कालपी के अङ्क ३६ में प्रकाशित पद्मभूषण डा० श्री वृन्दावन लाल वर्मा के लेख से यह शुभ-समाचार विदित हुआ कि अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल मथुरा ने ऐसी योजना बनाई है कि देश में बोली जाने वाली भाषाओं (बोलियों) जैसे ब्रजभाषा, बुन्देली, वाघेली, नीमाड़ी, राजस्थानी आदि आदि बोलियों के शब्द-कोष और व्याकरण विभिन्न-विभिन्न विद्वानों से तैयार करवा कर प्रकाशित किए जायेंगे।

लेख से यह भी पता चलता है कि 'मण्डल' के सुयोग्य कार्य-कर्ताओं ने इस कार्य को प्रारम्भ भी कर दिया है। 'मण्डल' इस सम्बन्ध में समस्त हिन्दी भाषा-भाषियों की ओर से बधाई का पात्र है। 'ब्रज-भारती' में प्रकाशित श्री कृष्णानन्द गुप्त के पत्र मुझे देखने को नहीं मिले किन्तु मैं उनसे इस विषय में सर्वथा सहमत हूँ कि सब ही शब्द-कोष एक ही ढाँचे के तैयार होना चाहिये जिससे विश्व-कोष की भाँति उनके द्वारा प्रत्येक शब्द का अर्थ उसके व्यवहार करने की स्थान-स्थान की शैली का बोध मिल सके। आचार-विचार, रहन-सहन, वेष-भूषा से सम्बन्धित शब्दों का भली प्रकार विश्लेषण कर देना आवश्यक है।

शब्द-कोष और व्याकरण सम्बन्धी कुछ कार्य यत्र-तत्र हो भी चुका है उसकी भरपूर जानकारी उपलब्ध कर लेना आवश्यक है। सागर विश्व विद्यालय के हिन्दी-विभाग में साहित्याचार्य श्री लोकनाथ द्विवेदी हैं उन्होंने बुन्देली-भाषा का व्याकरण तैयार किया था। जून १९६६ ई० में श्री लक्ष्मीचन्द्र नुना बी० ए०, बी-एड०, टीकमगढ़ ने 'बुन्देलखन्डी-भाषा, बुनियादी शब्द-भण्डार और व्याकरण' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी।

सागर विश्व-विद्यालय (हिन्दी-विभाग) के डा० कृष्णलाल हंस एम. ए., पी-एच. डी. निमाड़ी और बुन्देली के तुलनात्मक अध्ययन पर कार्य कर रहे हैं जिससे डी लिट् की उपाधि प्राप्त हो सके। निमाड़ी-भाषा के शोध-प्रबन्ध पर उनको पी-एच-डी की उपाधि हो चुकी प्राप्त है।

सागर विश्व-विद्यालय तथा यत्र-तत्र और भी कितने ही शोध-शास्त्री इस सम्बन्ध में शोध कर रहे हैं अतएव यह आवश्यक है कि सम्पादन करने के पूर्व उन सब महानुभावों से जिनने अपने-अपने क्षेत्र में शब्द कोष, व्याकरण और भाषा-विषयक ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, सम्पर्क स्थापित किया जाय। इसमें संदेह नहीं कि इस योजना से हिन्दी-संसार के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति होगी और उसके द्वारा राष्ट्र-भाषा हिन्दी की नींव भली प्रकार सुदृढ़ हो जाएगी।

इन दिनों भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने वालों के समक्ष यही कठिनाई उपस्थित होती है कि वे प्रमाण स्वरूप कोई भी ग्रंथ स्थानीय भाषाओं के प्राप्त नहीं कर सकते और उनके द्वारा प्रस्तुत की गई उपलब्धियाँ ठीक होते हुए भी प्रामाणिक-ग्रन्थों के अभाव में संशय की दृष्टि से देखी जाती हैं। इस आयोजना को पूरी करने में हमारे हिन्दी भाषा-भाषी और देश वासी भरपूर सहयोग दें तो उत्तम हो। जन प्रिय प्रादेशिक और केन्द्रीय-सरकारों से भी आधिक-सहायता मिलने की संभावना है क्योंकि यह उनका ही कार्य है जो 'मण्डल' कर रहा है।



खड़ी बोली के युग में व्रजभाषा का महत्व

(श्री प्रेमनारायण मिश्र एम० ए० साहित्यरत्न दत्तिया)

किसी भी भाषा का ठोस साहित्य कभी पुराना नहीं होता । युगों पश्चात् भी साहित्य प्रेमियों को उससे मार्ग दर्शन के साथ-साथ नित्य नवीनता मिलती है । इस खड़ी बोली के युग में व्रजभाषा का महत्व मधुरता और उत्कृष्ट साहित्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है । आज भी व्रजभाषा के प्रेमी तथा साहित्य निर्माता अपनी लेखनी से अमूल्य निधियाँ साहित्य जगत को दे रहे हैं । दत्तिया के वयोवृद्ध कवि श्री शम्भुदयाल 'व्रजेश' व्रजभाषा के प्रेमी और कवि इसी कोटि में आते हैं । इनके पास चिन्तामणि कवि कृत 'छन्दसार', तिलोकचन्द द्वारा संकलित 'सूरमंजरी' आदि अनेक ग्रन्थ सुरक्षित हैं ।

श्री व्रजेश का काव्यारम्भ व्रजभाषा से ही हुआ था और उसकी चरम सीमा 'कंस-वध' नामक प्रबन्ध काव्य है जो भविष्य में व्रजभाषा की अमूल्य निधि सिद्ध होगा ।

मैंने 'कंस-वध' की पाण्डु लिपि साद्योपान्त देखी । ग्रन्थ में कंस के सम्पूर्ण जीवन चरित्र के साथ भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भावपूर्ण भाषा में किया गया है । प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी सभी विषयों का समावेश किया गया है ।

ग्रन्थ का आरम्भ रानी पवन रेखा के गर्भावान से किया गया है । भगवान् कृष्ण के नेतृत्व में उदंड एवं क्रूर नरेश कंस की तानाशाही के विरुद्ध व्रजवासियों का संगठन मुख्य उद्देश्य है । उग्रसेन से राज्य छीनने के पश्चात् कंस की नीति कैसी थी इसका वर्णन देखिये—

जो हों भाखहुँ सोई साची नीति धरम है ।

तेहि विपरीत विचार प्रजा कर वड़ अकरम है ॥

वास्तव में राजा लोग अपनी कही हुई बात को विधान कहते थे और स्वयं को अवतार मनवाते थे । कंस भी अनुचित आदेशों का पालन करवाने में कठोरता का आश्रय लेता था ।

मम विरोध जे करहि डारियो कारागारै ।

लीजो रसना काटि अटपटो वचन उचारै ॥

भेदभाव की नीति राज काजहि अपनावहु ।

जो नहि मानहि ताहि तुरत जमलो क पठावहु ॥

इस नीति का पालन भी किया गया । उस तानाशाही की आलोचना करते हुये कवि ने प्रजा के शब्दों में राजा-प्रजा का सम्बन्ध रूपक द्वारा वर्णित किया है—

हम परजा रथ सरिस प्रेम नय हय जेहि जोरे ।

नरपति सारथि सुमति रज्जु साधहि कटु थोरे ॥

सुगम निरखि मग हाकि चलहि कछु विघनन आवहि ।

अधिक प्रताड़ित कुपित होय अटपट गति धावहि ॥

प्रजा का संगठन राज्य को बनाने बिगाड़ने में समर्थ होता है । श्रीकृष्ण के शब्दों में संगठन की महिमा देखिये—

जन संगठन सदैव महा परवत सम जानहु ।
 इक कांकरि नहि फोर सकहि अस निहचै मानहु ॥
 कितहु दमन की चाल सफलता नाहि थिरानी ।
 सागर सी मरजाद लहहि नहि सरिता पानी ॥
 परजा मन की द्वेष-अग्नि बल तें न बुझाई ।
 अनाचार कर पवन परसि दिन दिन सुलगाई ॥
 उठै ज्वाल जब तबै महापरताप जराहीं ।
 अनाचार तरु मूरि भसम ह्वै गये बुझाहीं ॥

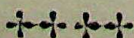
वास्तव में संगठन की शक्ति अपार और अदम्य है । मथुरा की जनता को कंस के शत्रु श्रीकृष्ण का स्वागत और सराहना करना राज्य का अहित समर्थन है । इस पर कवि ने अपनी धारणा एक छन्द में व्यक्त की है ।

जेहि देस नरेस के सत्रुन को
 परजा जन आदर देय बुलावैं ।
 जेहि के गुन रूप सरूप लखैं
 सबही हरखैं विरुदावलि गावैं ॥
 जेहि के मृदु बोलन चालन तें
 चिरजीवन हीय सिहाय मनावै ।
 तेहि राज को नाहि उवार कवों,
 दल संजुत वीरप्रताप नसावैं ॥

कवि ने प्रत्येक रस का वर्णन संक्षिप्त तथा मार्मिक शब्दों में किया है और कंस के जीवन चरित्र को आधार मानकर ब्रजभाषा साहित्य को एक नई निधि प्रदान की है । ग्रन्थ का प्रधान नायक कंस को मान कर प्रबन्ध काव्य सम्बन्धी सभी अंगोंपांगों का समुचित समावेश किया गया है । ग्रन्थ १७ सर्गों में है प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन भी किया गया है । इति वृत्तात्मक ढंग से निर्मित यह काव्य प्राचीन चरित्र की नवीनता प्रदान करने में समर्थ हो सकेगा । ग्रन्थ प्रेस में है ।

इस सांगोपांग प्रबन्ध काव्य पर जिसे महाकाव्य कहा जा सकता है धुरन्धर विद्वान् डा० वृन्दावन लाल वर्मा, डॉ० शिव शरण शर्मा, साहित्य महोपाध्याय डा० भगवानदास माहौर तथा श्रीहरि मोहन श्रीवास्तव ने अपनी सम्मतियों द्वारा ग्रन्थ को महत्त्व प्रदान किया है ।

दत्तिया के इतिहास में यह प्रथम महाकाव्य ५५ वर्षीय वयोवृद्ध कवि श्री ब्रजेश द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिसे साहित्य संसार में उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा ऐसा मेरा विश्वास है ।



सूरसागर की एक दुर्लभ प्रति

(श्री उदयशंकर 'शील' एम. ए. दतिया)

सूरदास ने अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णन मधुर कंठ द्वारा विभिन्न राग-रागिनियों में ऐसा गाया कि वह मानस पटल पर आज पूर्ण अंकित हो चुका है। दृष्टिहीन होने से वे अपने भावों को स्वयं लिपिवद्ध करने में असमर्थ थे। अतः उनके भावों को लिपिवद्ध करने का कार्य तत्समय के काव्य प्रेमियों ने किया। यह एक महान कार्य था। विवादग्रस्त विषय है कि सूरदास ने 'सवा लाख' पदों की रचना की, किन्तु अब तक उनके इतने पद उपलब्ध नहीं हो सके हैं। सूरसागर की ख्याति से उसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार की गईं जिनमें से कुछ आज प्राप्त भी हैं। इन्हीं प्राप्त प्रतियों को आधार मानकर विभिन्न विद्वानों द्वारा सूरसागर का संपादन और प्रकाशन हुआ है। इसी संदर्भ में सूरसागर की एक हस्तलिखित प्रति^१ की हम चर्चा करेंगे जो अनुपलब्ध थी और अब तक ज्ञात^२ प्रतियों में जिसका विशिष्ट स्थान होना चाहिए।

प्रति का आकार प्रकार

'सूरसागर' की इस प्रति का आकार १२" × ८" ३" है। कुल पत्र संख्या ३९७ है। प्रति आद्यंत एक स्याही (चमकीली काली) से लिखी गई है। बीच बीच में राग एवं कथा प्रसंगों के अनुसार लाल स्याही का भी प्रयोग है। संपूर्ण प्रति में लिपिकर्ता ने कहीं कांट-छांट नहीं की है। यह प्रति की अपनी विशेषता है और इससे लिपिकर्ता की कुशलता का भी बोध होता है। आरंभ से अंत लिखावट समान है। यह फूलदार रेशमी कपड़े की सुन्दर जिल्द में आवद्ध है और पेटी की भांति बंद की जा सकती है। जिल्द हरे रेशम की बनी है जिस पर सुनहले और हरे तथा लाल रेशम के तारों की पन्चीकारी है।

प्रारम्भ में 'मङ्गलाचरण' के दो पद अलग हैं। पुनः समस्त सूरसागर की कथा विधिवत ढंग से लिखी गई है। यत्र तत्र एक दो पदों को पूर्ण न लिखकर किसी कारण वश स्थान रिक्त है।

लिपिकाल

प्रस्तुत प्रति 'रतनहजारां' और 'रससागर' जैसे रसमय काव्य ग्रंथों के प्रणेता महाराज पृथ्वीसिंह जू देव^३ उपनाम 'रसनिधि' के राजत्वकाल में और उन्हीं की राजधानी सेवड़ा में तैयार

१—सूरसागर की यह प्रति लेखक के संग्रह में सुरक्षित है।

२—द्रष्टव्य-सूरसागर-प्रथम खंड, संपादक—श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी।

३—पृथ्वीसिंह जू देव 'रसनिधि' वर्तमान सेवड़ा जो मध्य प्रदेशान्तर्गत दतिया जिले में पड़ता है के राजा थे। इनके द्वारा बनवाया गया सेवड़ा का किला तथा उसके अन्दर स्थापित उनके आराध्यदेव 'नन्दनन्दन' की मूर्ति आज भी रसनिधि की याद दिलाते हैं। रसनिधि के समय के संबंध में विद्वानों में मतभेद नहीं है। किन्तु उपलब्ध नई सामग्री के आधार पर उका जन्म संवत् १७३४ वि० में हुआ था और वे १८ वीं शताब्दी के अन्त तक वर्तमान थे। लेखक को यह सूचना दतिया निवासी श्री बाबूलालजी गोस्वामी से जो दतिया नरेशों के राज पुरोहित हैं, प्राप्त हुई थी अतः लेखक उनके प्रति आभारी है।

की गई थी । इस बात की पुष्टि के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ की 'पुष्पिका' द्रष्टव्य है—
 "संवत् १७८३ व्रषे वैसाख सुदि ७ बुध वासरे सुभ स्थान मिहुडौ राज्य श्री महाराजाधिराज श्री
 महाराजा श्री राजा प्रथीसिंघ जु देव पठनार्थे श्री लाला महिमासाहि जू लिपतं बसीधर ग्याति
 काइस्थ श्रीवास्त भडैरिहा जु कोऊ वाचै सुनै ताकौ ॥ सुभं ॥"^१

आज से २४२ वर्ष पूर्व संवत् १७८३ बि० (सन् १७२६ ई०) में यह प्रति श्री वंशीधर
 कायस्थ ने लाला महिमासाहि के पठनार्थ सिहुडौ^२ नामक स्थान में तैयार की थी । प्रारम्भ से
 अन्त तक लेखनी की एकरूपता लिपिकर्ता के श्रम और प्रयास की ओर इंगित करती है और ऐसा
 अनुमान होता है कि लाला महिमासाहि ने लिपिकर्ता को इस परिश्रम का उचित पारितोषिक भी
 प्रदान किया होगा ।

अद्यावधि उपलब्ध सूरसागर की हस्तलिखित प्रतियों से प्रस्तुत प्रति की अपनी अलग
 विशेषताएँ हैं—

संक्षिप्त रूप

प्रति की सबसे बड़ी विशेषता उसका अत्यन्त संक्षिप्त होना है । इसमें कुल सत्रह सौ
 एकानवे (१७९१) पद संग्रहित हैं । अतः इसको संक्षिप्त सूरसागर की श्रेणी में रखना उचित है ।
 वर्तमान प्रकाशित 'संक्षिप्त सूरसागरों' की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी है जिसका कारण सरल पदों
 का चयन, कथा का प्रवाह तथा अत्यधिक आवश्यक तथा श्रेष्ठ पदों का संकलन है । अब तक
 उपलब्ध प्रतियों में ऐसी कोई प्रति नहीं है जो इतनी संक्षिप्त हो और उसमें सभी स्कंधों की कथा
 का समावेश हो ।^३ इस दृष्टि से भी इस प्रति का अपना महत्व है ।

स्कंधों का विभाजन

'मंगलाचरण' के दो पदों को छोड़कर समस्त प्रति प्रारम्भ से अन्त तक द्वादश स्कंधों में
 विभक्त है । स्कंधानुसार पदों की संख्या निम्न है—

मंगलाचरण	पद संख्या
(स्कंध)	२
प्रथम स्कंध	१०२
द्वितीय ,,	४०
तृतीय ,,	१०
चतुर्थ ,,	१२
पंचम ,,	४
षष्ठम ,,	२

१—सूरसागर-हस्तलिखित प्रति, पत्र संख्या ३६७ ।

२—वर्तमान सेवड़ा जो दतिया से ४२ मील उत्तर सिंध (काली) नदी के तट पर स्थित
 है । इसका प्रारम्भ में नाम 'सिहुडौ' या 'सेहुडा था । प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में 'सिहुडौ' नाम
 ही लिखा मिलता है ।

३—द्रष्टव्य हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, द्वितीय खण्ड, पृ०
 ५८३—५८६ । नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।

मंगलाचरण	पद संख्या
सप्तम ,,	८
अष्टम ,,	११
नवम ,,	२३५
दशम ,,	१३५७
एकादश ,,	३
द्वादश ,,	५

कुल पद संख्या = १७८६ + २ = १७८८

इस प्रति की सबसे बड़ी विशेषता यह देखने में आती है कि अब तक दशम स्कन्ध के प्राप्त प्रतियों में पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध या प्रारम्भ से अन्त तक कथा को एक ही सूत्र में समाप्त कर दिया गया है, किन्तु प्रस्तुत प्रति में इस स्कन्ध की कथा को नव्वे (९०) विभिन्न अध्यायों में विभक्त किया गया है। इन अध्यायों का क्रम कथाओं के आधार पर है। अध्यायों का विभाजन या तो स्वयं लिपिकर्ता ने अपनी सूझ से किया हो या जिस प्रति से उसने प्रतिलिपि तैयार की हो, उसी का देन हो। षष्ठम स्कन्ध सबसे छोटा है और इसमें मात्र दो पदों का चयन हुआ है।

यहाँ प्रथम और दशम स्कन्ध में वर्णित कथाओं का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है—

प्रथम स्कन्ध

“अथ श्री भागवत वर्णनं, व्यास सुक संवाद, पुनः भागवत वरनन, व्यास-संवाद-व्यास अवतार वर्णन, नाम महात्म वर्णन, भगवान पद अनुग्रह-भोजन करन, श्री भगवान जर जोधन संवाद, द्रोपदी सहाइ कथा, पंडौ कथा वर्णनं, कथा राज राजा युदिस्टिल, जर जोधन वचन भीषम प्रति, श्री भगवान वचन, अर्जुन भीषम संवाद, भीषम देह त्याग प्रसंग, भीषम संवाद, राजा दुदिस्टिल भगवान द्वारिका गवन, राज्य वैराग्य वरनन, राज त्यागहरि वियोग-पांडव, निरगुन वर्णन, श्री भगवान परीछन रवना, परीछन-जनम वर्णन, राजा परीछत कथा, मन प्रबोध ॥”^१

“इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम असकंधे संपूरन समापतं ।”

इसी प्रकार अन्य स्कंधों की कथा को विभाजित किया गया है। नवम स्कंध में वर्णित राम कथा सप्त कांडों में विभक्त है। नागरी प्रचारिणी सभा-काशी से प्रकाशित सूरसागर में उत्तर-कांड की कथा को अलग न कर उसे लंकाकांड के साथ जोड़ दिया गया है।^२ लंकाकांड और उत्तर कांड की कथाएँ अलग अलग हैं अतः उन्हें अलग रखा गया होता तो असंगति न आ पाती।

दशम स्कंध

इस स्कंध की संपूर्ण कथा ९० विभिन्न अध्यायों में विभक्त है। दशम स्कंधांतर्गत दो-एक अध्यायों का विवरण ही पर्यप्त होगा—

१—यहाँ शब्दों में रंच मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है। प्रति में जैसा लिखा गया है—शब्द और वाक्य ज्यों के त्यों यहाँ उद्धृत हैं, यथा—दुदिस्टिल का शुद्ध रूप युधिष्ठिर है किन्तु प्रति में दुदिस्टिल ही लिखा गया है।

२—दृष्टव्य—सूरसागर-पहला खंड-विषय सूची-पृ० ५ तथा नवम स्कंध लंका कांड पृ० २२६—२५४। ना० प्र० सभा काशी।

अथ नौम अध्याइ

‘गोपिका वचन, वलभद्र वचन, जसुमति वचन, कलेवा भोजन, खेलन कृष्ण दूरनि, चोगन खेलन, ब्राह्मण भोजन करावन, भौरा चकई खेलन, माथी खान समै । इति श्री भागवते महापुराने दसम अस्कंधे नौम अध्याइ संपूरन समावता ॥६॥”

कहीं कहीं दो-दो, चार-चार अध्यायों की कथा का वर्णन एक साथ है किन्तु अन्त में ‘पुष्पिका’ में अध्यायों की संख्या निर्दिष्ट है यथा—

अथ भवरगीता

“श्रीकृष्ण वचन ऊधौ प्रति, ऊधौ ब्रज आगमन, जसोदा वचन, ऊधौ वचन, जसुमति वचन, उधव प्रति, ऊधौ वचन, गोप सषा वचन, श्रीराधिका सगुन विचार, गोपिका वचन परसपर, गोपिका वचन ऊधौ प्रति, गोपिका वचन भवर प्रति, ऊधौ वचन, गोपिका वचन परसपर, गोपिका वचन ऊधौ प्रति, विस्तरत भवरगीता— गोपिका वचन परसपर, ऊधौ वचन, गोपिका वचन, ऊधौ वचन, गोपिका वचन ऊधौ प्रति, गोपिका वचन परसपर, गोपिका वचन ऊधौ प्रति, ऊधौ वचन, गोपिका वचन, ऊधौ वचन, गोपी उत्तर, ऊधौ वचन, गोपिका उत्तर, ऊधौ वचन, गोपिका वचन, उधव प्रति, ऊधौ वचन, गोपिका वचन, ऊधौ वचन, जसुमति संदेस, ऊधौ वचन श्री भगवान प्रति, श्री मुख वचन ।”

“इति श्री भागवते महापुराने दसम अस्कंधे भवर गीता वरनन छयालीस सैतालीसमो अध्याइ ॥४६॥४७॥”

पाठभेद

हस्तलिखित होने के कारण प्रतियों में पाठभेद होना स्वाभाविक बात है किन्तु प्रस्तुत प्रति में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पाठान्तर हैं जिन पर विचार करना अति आवश्यक है। सभी पदों में आये पाठभेदों का विवेचन यहाँ इष्ट नहीं है अतः दो-चार पदों का पाठान्तर प्रस्तुत है—

राग मलार

वीर बटाऊ पाती लीजौ ।

जब तुम जाउ देस द्वारिका हमरी रिसाल^१ गुपालै दीजौ ॥

रंगभूमि रवनीक मधुपुरी पाच चढाइ सुधि कीजौ ।

खार समुद्र छांडि किनि आवत निरमल जल जमुना कौ पोजौ ॥

या गोकुल की सकल ग्वालिनी देति असीस बहुत जुग जीजौ ।

सूरदार प्रभु हमरे को तै नंद नदन के पाइ परीजौ ॥

(ह० प्र०)^२

राग मलार

वीर बटाऊ पाती लीजौ ।

जब तुम जाहु द्वारिका नगरी, हमरे रसाल गुपालहिँ दीजौ ॥

रंगभूमि रमनीक मधुपुरी, रजधानी ब्रज की सुधि कीजौ ।

१—रिसाल-अन्य स्थानों से वसूल करके राजधानी भेजा जाने वाला कर, द्रष्टव्य-संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर-ना० प्र० सभा-काशी, पृ० ११५६ ।

२—हस्तलिखित प्रति, पद संख्या १६३७ ।

या गोकुल की सकल ग्वालिनो, देतिँ असीस बहुत जुग जीजौ ॥
 सूरदास प्रभु हमरे कोतैं, नंद नंदन पाइ परीजौ ॥
 (मु० प्र०)^१

उपरोक्त वाक्य विचारणीय हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित सूरसागर में द्वितीय पंक्ति में 'रसाल' शब्द है किन्तु हस्तलिखित प्रति में 'रिसाल' पाठ उपलब्ध है। प्रसंग को देखते हुए 'रिसाल' पाठ शुद्ध हैं। हस्तलिखित प्रति में "खार समुद्र को पीजौ ।" पंक्ति अधिक है। मुद्रित प्रति में उक्त पंक्ति नहीं है।

राग धनाश्री

अति मलीन व्रपभांन कुमारी ।
 हरि स्रम जल भीज्यौ उर अंचल तिहि लालच न धुवावति सारी ॥
 उध मुष रहति अंत नहि चितवनि गथ गअैं जैसैं थकित जुवारी ।
 छुटे छोर वदन कुम्हिलानैं ज्यौ नलिनी हिमकर की मारी ॥
 सुनि संदेस वह सहज मृतक भई करि अदेस दूजे अलिचारी ।
 सूर स्याम बिन कैसें जीवैं ब्रज वनिता बिन स्याम दुखारी ॥
 (ह० प्र०)^२

राग धनाश्री

अति मलीन वृषभानु कुमारी ।
 हरि स्रम जल भीज्यौ उर-अंचल तिहिँ लालच न धुवावति सारी ॥
 अध मुख रहति अनत नहिँ, चितवति ज्यौँ गथ हारे थकित जुवारी ।
 छुटे चिकुर वदन कुम्हिलाने, ज्यौँ नलिनी हिमकर की मारी ॥
 हरि संदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक विरहिनि, दूजे अलि जारी ।
 सूरदास कैसें करि जीवैं, ब्रज वनिता बिन स्याम दुखारी ॥
 (मु० प्र०)^३

पंक्तियों के क्रम में परिवर्तन

राग मलार

नैना भये अनाथ हमारे ।
 मदन गुपाल इहा ते सजनी सुनियत अंत सिधारे ॥
 मथुरा वसत आस दरसन की देषि देषि मग हारे ।
 हम चातक वे जलध स्याम घन प्राति सुधा रस प्यारे ॥

१—मुद्रित प्रति-नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, पृ० १६९९-१७००, पद सं० ४८८३ ।

२—हस्तलिखित प्रति, पद सं० १५३५ ।

३—मुद्रित प्रति-नागरीप्रचारिणी सभा-काशी, पृ० १६१३, दूसरा खंड, पद

वे समुद्र हम मीन वापुरी कैसे जीवें न्यारे ।
 सूरदास हमकों उलटी विधि मृतकहू पै मारे ॥
 (ह० प्र०)^१

राग धनाश्री

नेना भये अनाथ हमारे ।

मदन गुपाल उहाँ तैं सजनी, सुनियत दूरि सिधारे ॥
 वै समुद्र हम मीन वापुरी, कैसें जीवें न्यारे ।
 हम चातक वै जलद स्याम-घन, पियति सुधा रस प्यारे ॥
 मथुरा बसत आस दरसन की, जोइ नैन मग हारे ।
 सूरदास हमकों उलटी विधि मृतकहू तैं पुनि मारे ॥

(मु० प्र०)^२

प्रस्तुत पद में जहाँ एक दो पाठांतर हैं वही राग में भी विषमता है । हस्तलिखित प्रति में राग मलार है और प्रकाशित प्रति राग धनाश्री है । हस्तलिखित प्रति की तीसरी पंक्ति 'मथुरा वसत.....मग हारे ।' मुद्रित प्रति में इसका स्थान पाँचवी पंक्ति में है ।

'सूरसागर' पर अत्यधिक श्रम और मनोयोग पूर्वक कार्य करने वालों में श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । श्री चतुर्वेदी जी के श्रम की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है । हम यहाँ पर कुछ पदों का तुलनात्मक पाठ श्री चतुर्वेदी जी द्वारा संपादित 'सूरसागर' से उद्धृत कर रहे हैं क्योंकि इसमें हमें कई प्रतियों का पाठ एक साथ उपलब्ध हो जाता है—

राग आसावरी

आजु वन कोऊ जिनि जाइ ।

अपनी अपनी गऊ बछनि सग सब कोऊ देउ छुडाइ ॥
 बालकु आजु भयौ है महरि कै कहत सुनाइ सुनाइ ।
 सबही घोष मै भयौ कुलाहल आनन्द उर न समाइ ॥
 कितहौ गहुह करत वे काजै वेगि चलौ उठि धाइ ।
 अपने अपने मन कौ चीतौ सब कोऊ देखौ आइ ॥
 एक भरत दधि दूब धरत सिर एक हसत गहि पाइ ।
 ऐकैं हसि हसि देत बघाई ऐक हसत उठि गाइ ।
 बालक ब्रध तरुन नर नारी भयौ चौगुनो चाइ ।
 सूरदास सब प्रेम मुदित भए आनन्द उर न समाइ ॥

(ह० प्र०)^३

१—हस्तलिखित प्रति, पद सं० १६३१

२—मुद्रित प्रति-ना० प्र० सभा-काशी, पद संख्या ४८७०, पृ० १८९६, द्वितीय खंड ।

३—हस्तलिखित प्रति-पत्र सं० ८८, पद सं० ३१

परस्पर ब्रज-वासिन्ह उक्ति:

आज बँन कोहू—‘ऐ’ ‘जिन्ह’ जाइ ॥ १ वै. जनि

सब ‘गैयँन्ह’ बछरँन्ह सँमेत ‘घर’, ‘लाओ’ ‘चीत’ बनाइ ॥ २

(गाइन, लै, आँनहु चित्र—)

ढोटा ‘भयौ जु नन्द’ मैहेर कें, कहत सुँनाइ-सुँनाइ ॥ ३ है रे भयो—,

‘सभी’ घोख में भयौ कुलाहल, आँनद उर न सँमाइ ॥ ४ सबहि—

‘कित’ हो गैहेर करत ‘मेरे भैया’, बेग चलौ उठ धाइ ॥ ५ कत, बिन काजें,

अपने-अपने मन कौ चीत्यौ, नँनन्ह ‘निरखौ’ आइ ॥ ६ देखौ,

एक फिरत दधि-दूभ धरत सिर, एक रहत गहि पाँइ ॥ ७

एक परसपर देत बधाई, एक उठत हँसि गाइ ॥ ८

बाल-बिरध-‘नर नारिन्ह’ के मन ‘भयौ’ चौगुँनों चाइ ॥

(बालक वृद्ध तरुन नर नारिन्ह, बढ्यौ—)

“सूरदास” ‘प्रमुदित ब्रज-बासी’, ‘गिनत’ न राजा राइ ॥ १० ॥ १

(सब प्रेम-मँगन भए, गँनन—)

—देवगंधार, आसावती, बिलाबल

पाठांतर के लिये रेखांकित शब्द दर्शनीय हैं। यहाँ हस्तलिखित प्रतियों में जो पाठ मिलते हैं और जिन्हें श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी ने अपने द्वारा सम्पादित सूरसागर में प्रस्तुत किया है उसे भी उद्धृत कर देना आवश्यक है—

(आग०) आज —, कोऊ री —। (नव०) —, कोऊ बेगि न —। (वे०) —, कोऊ जिन —। (दि०) —, कोऊ रे जनि —। (मथु० गो०) — कोऊ जिन —। (वर्ष०) —, कोऊ हो —। (वर्ष०-अ) —, कोऊ बहु जिन —। (अहि०) —, कोऊ हे —। (है०) आज कोऊ बन कों जिन —।

(आग०) सब गायँन्ह बछरँन्ह सँमेत अब लाओ चित्र —। (नव०) सो गैयाँ बछरा सँमेत सब, आवहु चित्र —। (वे०) सब गाय और बछरा लै आँनहु चित्र —। (दि०) सब गाइ बछरा सँमेत ब्रज, ल्यावहु —। (मथु० गो०), लै आवहु भोव —। (वर्ष०) सब गायँन बछरा —, लावौ चित्र —। (अहि०) (है०) —, ल्यावहु —। (ज०) सब गायँन बछरँन्ह सँमेत लै, आनों भले बनाइ ।

इस पंक्ति का पाठ हस्तलिखित प्रति में उपयुक्त सभी प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों से भिन्न है।

(आग०) बालक आज भयो है मैहेर कें, —। (नव०) (वे०) ढोटा—है रे भयो मैहेर कें, —। (दि०) बेटा है घर भयो नंद कें, —। (मथु० गो०) ढोटा है ब्रज भयो नंद कें, —। (वर्ष०) (वर्ष० अ) ढोटा हो ब्रज भयो राइ कें, —। (अहि०-२) (है०) ढोटा आज जो भयो राइ कें, —। (सभा० हि०) बेटा है—रे भयो मैहेर कें, —। (सभा० हि० २) बालक भयो —। (का०) ज) ढोटा भयो नंद बाबा कें, —।

(आग०) सगरे घोरव... । (वें०) सबहि खोरव... । (दि०) (वर्षो०) (वर्षो०-अ०) चहुँदिसि घोख यहै कोलाहल, ... । (मथु० गो०) सब मिल कोलाहल करौ ब्रज-जैन, ... । (अहि०) (है०) चहुँदिस घोख यहै जु कुलाहल, उर आनंद... । (है०-२) चहुँ दिन घोख महै कोलाहल... (ज०) सब मिल करौ कुलाहल ब्रज-जैन, ... । (यह चरण 'नवल किशोर' में नहीं है ।)

(आग०) कित हो गैहैर करन बिन करने, ... । (वें०) (सभा-ठि०) कत हो गैहैर करत रे भै, ... । (दि०) ... वेकाजें, ... । (मथु० गो०) कत हो गैहैर करसै वे काजें, ... । (वर्षो०) (अहि०) (है०) कित हो बिलम करत बिन काजें, ... । (ज०) कित अब करत गैहैर वे काजें, चलौ वेगि... । (प०), आग्री वेगि... । यह चरण 'नवल किशोर' में नहीं है ।

(आग०) सब कौख देखी... । (नव०), नैनन देखी आई । (दि०) आयी अपने मन की ची०... । (वर्षो०) ... मन के चीते, ... । (अहि०-२), ... आई । (ज०) अपने मन की निरखी, नैन सुफल करि आई ।^१ (नव०) एक फिरत दधि-दूध बंदवन, एक चलत उठि धाई । (वें०) एक फिरत दधि दूध बँधावत, ... । (दि०) एक फिर दधि-दूध देति हँसि, ... । (मथु० गो०) एक रहत सिर दूध देति दधि, एक उठत हँसि गाइ । (वर्षो०) ... दूध देति हैं, ... । (अहि०-२) ... दूध देति सिर, ... । (सभा-दि०) ... दूध लिएँ कर...

(आग०) एकहि हँसि-हँस देत बधाई, एक हँसत उठ गाइ । (नव०) ... कहत बधाई, आनंद उर न समाई । (वे०) ... करत बधाई, ... । (दि०), एक हँसत उठ गाइ । (मथु० गो०) एन बसँत, पसु देत परसपर, एक रहत गहि गाइ । (वर्षो०) एक बसँत पठ देत बधाई, ... । (अहि०-१) एक बसँत बहु देति बधाई, ... । (अहि०-२) ... और उठत हँसि गाई । (ज०, प०) मिलें परसपर देति बधाई, आतुर उठि-उठि धाई ।

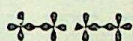
(आग०) बालक विरध तरुन नरनारी, भयौ जु कीन्हों जाइ । (नव०) तरुण, किशोर, कोमल अरु बालक, चढ़े चौगुने वाई । (वे०) तरुन, किशोर, विरध अरु बालक, बैठ चौगुने ... । (दि०) बालक विरध और नर नारी, भयौ ... । (वर्षो०) भए चौगुने ... । (ज० है०), ... बड़े चौगुने ... । (प०) बढ्यौ चौगुनों ... ।

(आग०) 'सूरदास' प्रेम-मुदित भए, ... । (नव०) ... प्रभु गोकुल जैनमे जानत न राँनों रई । (दि०) 'सूर' सकन अति प्रेम-मँगन-मन, गँनत ... । (मथु० गो०) 'सूरदास'-प्रभु प्रेम मँगन-मन, गँनत ... । (वर्षो०) (अति०) ... गँनन ... । (अति०-२), ... राई ।^२

१-सूरसागर-प्रथम खंड-सं० जवाहर लाल चतुर्वेदी, पृ० ११ ।

२- " " " " " " " पृ० १२ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह हस्तलिखित प्रति अपनी संक्षिप्तता, वर्तनी की एकरूपता, पदों के चयन का उचित पाठभेद आदि कारणों से विशेष महत्वपूर्ण है। साथ ही इस प्रति से यह भी ज्ञात होता है कि आज से बहुत पूर्व 'सूरसागर' संक्षिप्त रूप देने की प्रक्रिया साहित्य अध्यात्मियों में वर्तमान थी। इस प्रति को देखने से ज्ञात होता है कि पूर्व निश्चयानुसार यह विधिवत सम्पादित करके तब तैयार की गई थी। रहा स्कंधात्मक रूप, वह सूरसागर को प्रबन्ध काव्य बनाने की दृष्टि से और उसमें भागवत के अनुसार कथा को एक रूप देने के लिये किया गया। इसकी अतिम और प्रशंसनीय विशेषता है कि यह 'रसनिधि' जैसे काव्य प्रेमी राजा के राजत्वकाल तथा राज्य में तैयार की गई। 'संक्षिप्त सूरसागर' के लिखने की परम्परा की ओर भी यह प्रति निर्देश करती है।



बुन्देलखण्ड की भारतीय हिन्दी रंगमंच को देन

(डा० गनेशीलाल बुधौलिया राठ (हमीरपुर)

आज जिस हिन्दी रंगमंच की चर्चा हो रही है उसकी स्थापना आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व चरखारी की रायल ड्रामेटिक सोसायटी के रूप में चरखारी में हो चुकी थी। चरखारी ब्रिटिश शासन काल में बुन्देलखण्ड की एक छोटी सी रियासत थी। महाराज छत्रसाल के वंशजों की इस रियासत को यह श्रेय मिला था। श्रेय दिलाने वाले थे चरखारी के तत्कालीन महाराज अरिमर्दनसिंह जू देव। महाराज सन १९२२ में चरखारी की गद्दी पर बैठे थे और एक वर्ष पश्चात् उन्हें प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हो गए थे। महाराज अपनी शान शौकत के निराले आदमी थे उनकी आखेट और भ्रमण में विशेष रुचि थी। इसी सम्बन्ध में महाराज एकबार कलकत्ता गए और वहाँ पर एक दिन न्यू अल्फ्रेड कम्पनी (कोरन्थियन कम्पनी) देखने गये। किसी बात पर महाराज का कम्पनी के मैनेजर से वादविवाद हो गया, महाराज के स्वाभिमान ने इसे सहन नहीं किया और उन्होंने कम्पनी के मालिक से जो एक पारसी सज्जन थे कम्पनी को ३ वर्ष के लिए ठेके पर ले लिया और इस प्रकार वह नाटक कम्पनी चरखारी में आ गई।

आगाहश्च काश्मीरी इस कम्पनी के नाटककार थे इस कारण वे महाराज के सम्पर्क में आये। आगाहश्च की ग्रेट शेक्सपियर कम्पनी के नाम से एक अपनी नाटक कम्पनी थी जिसके वे स्वयं संचालक थे। ठेके की अवधि समाप्त होने पर महाराज ने आगाहश्च की कम्पनी को चरखारी मेले में अपने खेलों का प्रदर्शन करने के लिए प्रेरणा दी यह मेला भगवान गोवर्द्धननाथ की पुन्य स्मृति में प्रतिवर्ष लगता है। बुन्देलखण्ड का यह बहुत बड़ा व्यापारिक मेला है जो पन्द्रह दिन लगता है। मेले के अवसर पर आगाहश्च के छोटे भाई आगा महमूद के नेतृत्व में कम्पनी नवम्बर १९२६ में आई जिसने पन्द्रह खेलों का प्रदर्शन किया, यहूदी की लड़की, पति सेवा, शीरी फरहाद, श्रीमती मन्जरी, बन्देवी आदि। टिकट की दरें चार आने से लेकर पांच रुपये तक थी। मेले की समाप्ति पर कम्पनी वापिस कलकत्ता लौट गई, परन्तु महाराज ने उसके कुछ कलाकारों को चरखारी में रुक जाने को प्रेरित किया जिनमें हारमोनियम मास्टर दाउद खां का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इनके सहयोग से महाराज ने जनवरी फरवरी १९२७ में रायल ड्रामेटिक सोसायटी की स्थापना की। प्रारम्भ में ग्रेट शेक्सपियर कम्पनी कलकत्ता (आगाहश्च वाली) की समस्त साज सज्जा चरखारी आई थी।

वर्तमान रंगमंच (थियेटरहाल) नवम्बर २७ के पूर्व बन कर तैयार हो गया था। इस नये थियेटर हाल में नवम्बर सन १९२७ में मेले के अवसर पर इस कम्पनी ने तीन खेल खेले मधुर मुरली, तुर्की हूर, आंख का नशा जो बड़े लोक प्रिय सिद्ध हुए। कुछ समय पश्चात् महाराज कलकत्ता गए तथा आगाहश्च को अपने साथ चरखारी लाए। आगाहश्च पर महाराज पन्द्रह सौ रुपया मासिक व्यय करते थे और उनकी व्यक्तिगत सुविधाओं का बड़ा ध्यान रखते थे। और अपने उस प्रिय कलाकार का बड़ा सम्मान करते थे। आगाहश्च ने अपने चरखारी प्रवास में अपना प्रसिद्ध नाटक सीता बनवास लिखा उनका यह नाटक मास्टरपीस है। इस नाटक का निर्देशन स्वयं आगाहश्च ने किया था। चरखारी की रायल ड्रामेटिक सोसायटी का यह सबसे अधिक लोकप्रिय नाटक था। इस नाटक के देखने के लिए जनता उमड़ पड़ती थी। बुकिंग पर अपार भीड़ होती और थियेटर हाल के द्वारों की सीढ़ियों पर दर्शक संध्या से ही अपना अड़्डा जमा लेते थे। नाटक के दृश्य जितने भव्य और दिव्य होते थे कि उनकी मधुर स्मृति से आज भी उन दर्शकों के मन मुग्ध हो जाते हैं जिन्होंने उस नाटक को देखा है। नाटक के पात्रों का अभिनय, गीत, नृत्य, साज सज्जा, सीन सीनरी, सम्वाद आदि एवं रामायण कालीन संस्कृति की पावन भांकी इस नाटक के माध्यम से दर्शकों को मिलती थी। रंगमंच की भव्यता का आकर्षण न जाने कितने दूर तक के दर्शकों को खींच लाता था। इनमें अतिथि छत्तरपुर विजावर, पन्ना टीकमगढ़ आदि रियासतों के महाराज प्रायः देखने आते थे जिनमें टीकमगढ़ के महाराज विशेष रुचि रखते थे क्योंकि वे साहित्यिक व्यक्ति थे। सीता बनवास के अतिरिक्त इस नाटक सोसायटी के प्रसिद्ध खेल थे भीष्म प्रतिज्ञा, तुर्की हूर, रूतम सोहराब, आंख का नशा, मधुर मुरली आदि।

आगाहश्च ऐसे नाटककार थे कि नाटक चरखारी के भव्य हिन्दी रंगमंच पर जब अभिनीत होते थे तब दर्शक मंत्र मुग्ध होकर लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करते थे। तुर्की हूर, नाटक के एक दृश्य में कांच की इतनी मूल्यवान वस्तुएँ टूट जाती थी कि दर्शक देखकर सिहर उठता था। उस दिन उस नाटक के प्रदर्शन में सैंकड़ों रुपया खर्च हो जाता था कलाकारों की पोशाकें बड़ी मूल्यवान होती थी और उनकी वेशभूषा पर भी बड़ा खर्च होता था। राजा महाराजाओं का काम ठहरा रियासत की आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा इस सोसायटी पर खर्च होता था इसी कारण कम्पनी एक बार पोलिटीकल एजेंट की आपत्ति पर सन् ३०, ३१ में बन्द रही क्योंकि कम्पनी पर प्रतिवर्ष लगभग साठ हजार रुपया व्यय होता था जो स्टेट की आय का हिस्सा था। महारानी नेपाल (चरखारी की रानी) ने अपने पैसे से कम्पनी को चलाने के लिये जब कहा तो नवम्बर १९३२ में मेले में फिर कार्य आरम्भ हुआ। इस बार डायरेक्टर थे श्री चमनलाल गुजराती नाटक इतने स्वाभाविक वातावरण में प्रदर्शित होते थे कि कहीं भी कुश्चि या अरुचि नहीं होने पाती थी।

रंगमंच—रायल ड्रामेटिक सोसायटी चरखारी का स्थान उस समय उत्तर भारत में तीसरा था उसका भवन (रंगमंच) ६४ फीट ऊँचा ३६ फीट चौड़ा तथा काफी लम्बा है रंगमंच के सामने विशाल दर्शक हाल हैं। स्टेज के पास ४ बालकोनी हैं जिनमें उस समय महाराज उनकी

रानियां और विशिष्ट अतिथि बैठते थे। सारा रंगमंच लकड़ी के तख्तों से पटा हुआ है। क्योंकि ड्राप सीन वाले परदे को छोड़ कर शेष परदे लकड़ी के फ्रेम में फिट थे जो सीधे ऊपर जाते थे या नीचे गिरते थे, लिफ्टते नहीं थे। पार्श्व के परदे भी इसी ढंग के थे। परदे इतने सुन्दर दृश्यानुकूल तथा मूल्यवान् थे कि दर्शक मंत्र मुग्ध होकर उन्हें देखता रह जाता था। विद्युत् प्रकाश के योग से परदे वास्तविक रूप धारण कर लेते थे। यदि वन उद्यान, नदी या नगर की किसी सड़क का दृश्य है तो यह नहीं प्रतीत होता था कि यह परदे पर है। यथार्थ का भ्रम हो जाता था दृश्य बदलने के लिए ३० कुशल व्यक्ति (सीन शिफ्टर) नियुक्त थे। इस कार्य के मुख्य प्रबन्धक श्री उम्मेदराम मिस्त्री थे।

परदे—परदों को तैयार करने के लिये तीन कुशल व्यक्ति दिल्ली के थे और दो चरखारी के ही थे। एक श्री गिरजा प्रसाद श्रीवास्तव जो आजकल राजकीय हायर सेकेन्ड्री स्कूल नौगांव में कला अध्यापक हैं, और दूसरे श्री पुरुषोत्तम चित्रकार जो जयपुर में किसी कम्पनी में पेन्टिंग का कार्य करते हैं।

प्रकाश—प्रकाश की व्यवस्था का ढङ्ग कम्पनी का निजी था। प्रकाश के लिए पृथक् से एक जनरेटर था जो थियेटर हाल के पीछे लगा रहता था। यह इन्जन ५० हार्स पावर का था जिससे केवल थियेटर के प्रकाश की व्यवस्था होती थी। रंग विरंगा प्रकाश करने के लिये प्रयोग किये जाते थे। प्रकाश की व्यवस्था का पूर्ण दायित्व श्री अल्लाफ हुसैन पर था।

वाद्य तथा वादक—रंगमंच के नीचे वाद्य मन्त्रों के साथ कुशल वादक बैठते थे। वाद्यमन्त्रों में पियानो हारमोनियम, तबला, वेन्जो बायलन, क्लानेट आदि थे।

हारमोनियम मास्टर : जयशङ्कर गुजराती

तबला मास्टर : कुंवर पृथ्वीसिंह चरखारी

वेन्जो : मास्टर मुहम्मद खां

बायलन : दुर्गादत्त चटर्जी

क्लानेट : मुहम्मद हुसैन खां

वेशभूषा—कपड़े पहनाने वाले रामगोपाल चीवे, बापे, मुन्नी बाबू

कलाकारों की वेशभूषा फूलखां

बनाने वाले

सीनसीनरी फिट करना मौलाना नूरुल हसन तथा माधव ।

अभिनय का ढंग—समस्त नाटकों में ३ ड्राप होते थे। प्रायः प्रथम ड्राप में ७ सीन, दूसरे ड्राप में ६ और तीसरे में ५ होते थे।

नृत्य—३२ नर्तक इस कार्य के लिए थे। दो या तीन को छोड़कर शेष चरखारी के ही थे।

डान्स मास्टर श्री नर्मदा शंकर थे

नृत्य के प्रकार गिज्जाली नृत्य तुर्की दूर में

ईरानी, तूरानी नृत्य रस्तम सोहराब में

माड नृत्य

मारवाड़ी

गर्वा नृत्य

गुजराती। इन नृत्यों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के नृत्य

अत्रसर के अनुकूल होते थे। मयूर नृत्य तो इतना भव्य होता था कि ऐसा लगता था मानो नव नीरद की कलकांति पर मुग्ध होकर कोई मयूर नाच उठा हो।

रंगमंच के नियन्त्रण की व्यवस्था

१. प्रोप्राइटर, मालिक— मुहम्मद अहिंया अलवी

२. जनरल मैनेजर कामता प्रसाद सक्सेना

(सामान्य देखरेख)

३. मैनेजर पं० शङ्करलाल त्रिपाठी (टिकट व बैठक)

४. मैनेजर जुगलप्रसाद श्रीवास्तव साज सामान वेशभूषा

५. डायरेक्टर १. वाहिद अली

२. चमनलाल

वाहिद अली के चले जाने के बाद चमनलाल डायरेक्टर बने

६. प्रोम्टर गोकुल प्रसाद देहलिया

नाटककार आगाहश् काश्मीरी

७. मुख्य अभिनेताओं के नाम, वाहिद अली, श्यामराव, मु० यूसूफ चमनलाल, अयोव्याप्रसाद, गंगा प्रसाद सरछारिया, मोतीलाल शर्मा, रामदास नगायच, मोहन, भोला शङ्कर, बशीर अली, जगन्नाथप्रसाद गुरु, जगन्नाथ खजांची, मुहब्बत खां, लतीफ खां बाबुलाल पांडेय, राम-भरोसे आदि । समय समय पर बाहरी कलाकार भी बुलाये जाते थे जिनके नाम निम्न प्रकार हैं ।

आगा महमूद, मास्टर मनहर बर्वे, मिस शरीफा, मिस शीरी, मिस मैना, मिस वेगम, फीरोजी, मिस शैल कुमारी आदि इस प्रकार इस नाटक सोसायटी में २२ नर्तक, ३० सीन शिफ्टर लगभग २० अभिनेता, आधा दर्जन अभिनेत्रियाँ आधा दर्जन से अधिक वादक तथा प्रबन्ध समिति के सदस्यों को मिला कर कोई सवा सौ व्यक्ति थे । जिन पर लगभग साठ हजार रुपया वार्षिक व्यय होता था यह उस समय की बात है जब सिनेमा का शिशु अभी घुटनों के बल चलना सीखने रहा था तब बुन्देलखण्ड की यह सोसायटी भारतीय हिन्दी रंगमंच की कीर्ति कौमुदी अप जनपद में फेला रही थी । वैन्द्रीय स्थान में न होने के कारण इसकी ख्याति बाहर न हो सकी नहीं तो कलकत्ता और बम्बई की अल्फ्रेडों से यह किसी प्रकार कम न थी ।

इस सोसायटी का भारतीय हिन्दी रंगमंच की स्थापना में उसके विकास में और उसके उत्थान बहुत बड़ा हाथ है । सीता बनवास ऐसा हिन्दी का अद्वितीय नाटक इसी सोसायटी की देन है । न महाराज आगाहश् को कलकत्ता से अपने यहां लाते और न सीता बनवास लिखा जाता । आगाहश् पर महाराज उस जमाने में पन्द्रह सौ रुपया माहवार खर्च करते थे और इस नाटक की तैयारी में लगभग पचासी हजार रुपया खर्च हुवा था आज के हिसाब में लाखों रुपया । नाटक का काफी राइट होने के कारण उसका प्रचार बाहर नहीं हो सका नहीं तो साहित्यिक दृष्टि से भी वह हिन्दी की एक अमूल्य कृति है । जो नाटक सोसायटी कई वर्ष तक अपने मंच से कई नाटकों का सफल भव्य प्रदर्शन करती रही और लाखों दर्शकों का मनोरञ्जन करती हुई चरखारी के मेले का आकर्षण केन्द्र बनी रही उसका ऐसा करण अन्त हुआ जैसा स्वयं उसके संस्थापक महाराज का और उनकी रिसायत का ।

सोसायटी का थियेटर हाल आज भी अपने उसी रूप में खड़ा है मेले के मैदान के बीच में अपने गौरवमय अतीत की गौरव गाथा गाता हुआ बाहर से वही भव्यता भीतर से सर्वथा

ऐश्वर्य विहीन लुटा हुआ, खोखला सा सैकड़ों मूल्यवान पदों जिन पर हजारों रुपया खर्च हुआ था, और उसका सारा साज सामान कौड़ियों के भाव विक गया। उसके कलाकार मारे मारे फिरे। श्यामराव ऐसा अभिनेता मामूली शराब के लिये पैसा मांग मांग कर मर गया वह श्यामराव जिसकी विलौर के प्याले में भरी हुई मूल्यवान सुरा प्रतीक्षा किया करती थी। प्रसिद्ध बेलावादक मुहम्मद खां को जिसको महाराज ने जयपुर और कलकत्ता में यंत्रों के वादन का प्रशिक्षण दिलाया था उसको एक स्कूल में ६० रुपया मासिक पर नौकरी बड़ी मुश्किल से मिली। रजवाड़ों के पतन के साथ कला और संस्कृति का बड़ा ह्रास हुआ और कलाकारों के संरक्षण में भी बहुत कमी आई गोवर्द्धननाथ का मेला चरखारी में आज भी लगता है उसी मैदान में उतने क्षेत्रफल में। पहले रियासत की ओर से लगता था आज जिला परिषद की ओर से लगता है। पर तब से अब में कौड़ी मुहर का फर्क है। और इस अन्तर का मूल कारण है रायल ड्रामेटिक सोसायटी का अभाव।



मथुरा-महिमा

(डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी शीतला गली आगरा)

मथुरा का नाम लेते ही मथुरा में जन्म लेने वाले काली मर्दन, कंस निकन्दन, देवकी-नन्दन की बांकी मुखछवि हमारी आँखों के सामने नाचने लगती है। उस टेढ़ी टाँग वाले की टेढ़ी मुरली की तान का स्मरण करके मथुरा के नर-नारी आज भी यह प्रभाती गाते सुने जा सकते हैं—

राधे खोलौ भवन-किवार, तुम हो कौन जगाने वाले ।
हम हैं गोप-कुमार, जाओ गऊँ चराने वाले ॥
हम हैं नन्द कुमार, मोसों चूक भई रार ।
अब ही खोलौ भवन-किवार, आओ मो मन भाने वाले ॥

मथुरा भगवान श्रीकृष्ण की लीला स्थली ब्रज मण्डल का केन्द्र स्थान है। इस कारण ब्रज मण्डल को माथुर मण्डल भी कहा जाता है। कहते हैं कि मथुरा को दशरथनन्दन रामानुज शत्रुघ्न ने बसाया था। मधु के पुत्र लवण नामक राक्षस ने बड़ा उत्पात मचा रखा था। उसी का वध करके जनता का उद्धार करके इस महानगरी को बसाया था—

हत्वा च लवणं रक्षो मधु पुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥

मथुरा की महिमा जग जानी, देश बखानी है। इसका इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं महिमा मण्डित है। अनेकानेक प्राचीन ग्रन्थों एवं संस्कृत अभिलेखों में इसका इतिहास सुरक्षित है। वह हमारे अतीत गौरव का रेखा प्रस्तर है। गरुड पुराण में मथुरा की गरुना मोक्षदायिनी सात पुरियों में की गई है—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अबंतिका ।
पुरी द्वारावतीं चैव सप्तैता मोक्षदायकाः ॥

भागवत पुराण में मथुरा मथुरा ही है। भगवान ने यद्यपि अन्य पुरियों के महत्व को भी स्वीकार किया है, तथापि सेवन योग्य केवल सनातन पुरी मथुरा को ही बताया है। उनका

कथन है कि यह पुरी धन्य है । यहाँ यदि भक्तगण यावज्जीवन ब्रतादिकों का अनुष्ठान करते रहें तो मृत्यु दाह आदिक व्याधियाँ उन्हें नहीं सताती हैं—

काश्यादयो यद्यपि संति पुर्यस्तासां तु मध्ये मथुरेव धन्या ।
यज्जन्मयो जीवतमृत्युदाहेर्नृणां चतुर्धाविदधाति मुक्तिम् ॥^१

प्रमाण यह है कि मथुरा में भगवान की आराधना करके भक्त ध्रुव ने बाल्यावस्था में ही परम शुद्ध पितामह ब्रह्मा के लोक को प्राप्त किया था—

बालकोऽपि ध्रुवौ यत्र ममाऽराधनतत्परः ।

प्राय स्थानं परं शुद्धं यन्न युक्तं पितामहैः ॥^२

वाराह पुराण में मथुरा का और भी अधिक विशद एवं मनोहारी वर्णन मिलता है । भगवान वाराह जब पृथ्वी का उद्धार करके ला रहे थे, तो धरिणी ने एक सुशोभित नगरी को देखा । उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि यह कौनसी नगरी है जो अन्य भूखण्डों की भाँति प्रलयगर्भा नहीं हुई और ऐसा क्योंकर सम्भव हुआ । भगवान ने उत्तर दिया कि यह तीन लोक से न्यारी मथुरा है । यह मेरी जन्मभूमि है । इस वसुन्धरा में मुझे मथुरा पाताल अथवा अन्तरिक्ष से भी अधिक प्रिय है । हे देवि वसुन्धरे, सुनो—“सारम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम ।” यही मथुरा मेरा मण्डल है—“माथुर मम मण्डलम् । माथुर मण्डल ही मेरा मण्डल । मथुरा वासी मथुरा के प्रेम में मग्न होकर आज भी बड़े चाव के साथ उसकी महिमा का इस प्रकार गायन करते हैं—

तीन लोक से न्यारी प्यारी वेदन मथुरा गाई ।

भूतेश्वर कोतवाल यहाँ के संग चंचिका माई ॥

मथुरा सचमुच एक खानदानी व्यक्ति के समान सब प्रकार बड़ी नगरी है । यहाँ की हर चीज बड़ी और अपनापन लिए हुए है । उसकी सृष्टि निश्चित रूप से अपौरुषीय है, वह स्वयं विश्वकर्मा के हाथों संवारी गई है ।

जै जै श्री मथुरा सुखकारी ।

चक्र सुदरसन-ऊपर राजति, केसव जू की प्यारी

हाटक कोट कंगूरा राजत, हीरा रतन जरे ।

मनि-पै भवन उत्तंग सुहाए, नवधा-भक्ति भरे ।

निमिष एक मथुरा कौ बासी, जननी-जठर न जावे ।

जे बड़ भागी रहे निरंतर, तिन की कौन चलावे ॥

अपने निबन्ध अष्टादश पुराणों में मथुरा का उपसंहार करते हुए श्रीभास्करनाथ मिश्र ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि इस विशाल भारतवर्ष में मथुरा का अन्यान्य तीर्थों में विशेष स्थान है । मथुरापुरी से अवकृत यह भारतवर्ष धन्य है ।

जैन ग्रन्थों में भी मथुरा को एक बहुत ही महत्वपूर्ण नगर बताया गया है । इसकी गणना भारतवर्ष की दस राजधानियों में की गई है तथा इसे वस्त्र के लिए प्रसिद्ध लिखा है । इन ग्रन्थों में मथुरा को अर्हत प्रतिष्ठित चिरकाल प्रतिष्ठित आदि रूप में उल्लिखित किया गया है । जैन सूत्रों में मथुरा को पाखंडि गर्भा कहा है अर्थात् यहाँ अनेक साधु-संन्यासी रहा करते थे ।

१—पृ० ५५९ पन्ना श्लोक ४३—४४ पद्मपुराण ।

२—पृ० सं० ६००, श्लोक ५३ वही ।

‘आवश्यक चूर्णि’ से लगता है कि यहां मूल चैत्य में गुहा नामक आर्य मंगु काल-धर्म को प्राप्त हुए और मरकर निदवण यक्ष हुए ।

मथुरा में जैन-धर्म का व्यापक प्रभाव था और अनेक ग्रन्थों में मथुरा का उल्लेख बड़े ही आदर के साथ किया गया है । बृहत्कल्प भाष्य १५३६ में कहा गया है कि जैसे धर्म-चक्र के लिए उत्तरा पथ और जीवंत स्वामी प्रतिमा के लिए कौशान प्रसिद्ध है, उसी प्रकार देव-निर्मित स्तूप के लिए मथुरा प्रसिद्ध है । पुरातत्व सम्बन्धी खोजों द्वारा यह प्रायः प्रमाणित हो गया है कि मथुरा का कंकाली टीला ही प्राचीन काल का जैन स्तूप है । मथुरा में अनेक जैन मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक आयोग पट्ट और उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं ।

प्राचीन काल में मथुरा की ख्याति विदेशों तक फैली हुई थी । आज कल भारतवर्ष आने वाला प्रत्येक जागरूक यात्री आगरा वा ताजमहल अवश्य देखना चाहता है । इसी प्रकार पहले जमाने में प्रत्येक साधन-सम्पन्न विदेशी यात्री मथुरा अवश्य आता था । हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि पुराने जमाने में आवागमन आज की अपेक्षा बहुत ही कठिन था । इसी कारण पर्यटकों की संख्या भी बहुत कम रहा करनी थी ।

मथुरा के बारे में अनेक विदेशी पर्यटकों ने महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं । इन पर्यटकों में यूनानी, चीनी, मुसलमान, फारसी और अंग्रेज मुख्य हैं । इनके लेख पढ़ कर मथुरा की महत्ता हमारी आँखों के सामने सजीव हो उठती है ।

विदेशी पर्यटकों द्वारा लिखा हुआ सबसे प्राचीन लेख यूनानी यात्री मेगस्थनीज का मिलता है, जो ई० पू० चौथी शती के अन्त में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार पटना में आया था ।

उन्हीं दिनों अनेक चीनी यात्री भी यहाँ आए थे । इन यात्रियों में फाह्यान तथा द्यूआन-चुआंग के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं । फाह्यान मथुरा में लगभग एक महीने रहा था । उसने मथुरा की सांस्कृतिक परिस्थिति के विषय में काफी लिखा है । उसके लेख के आधार पर यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि उन दिनों मथुरा में बौद्धधर्म खूब जोरों पर था । द्यूआन-चुआंग ने मथुरा की भूमि और वहाँ के निवासियों की बहुत प्रशंसा की है ।

मुसलमान आक्रमणकारियों ने मथुरा और मथुरा वालों पर बहुत अत्याचार किए । यह लोग काफी बाद में भारतवर्ष आए थे । कई मुसलमान लेखकों ने मथुरा पर किए गए हमलों और उनके द्वारा होने वाली बर्बादी का खूब वर्णन किया है । मुसलमान लेखकों में अल-उत्वी, अलदेरूनी तथा मोहम्मद कासिम फरिश्ता के नाम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । उदाहरण के लिए हम फरिश्ता के एक लेख को लेते हैं । उसने सिकन्दर लोदी के आक्रमण के समय मथुरा की बर्बादी का सजीव वर्णन लिखा है । उसकी ये पंक्तियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं:—“सिकन्दर ने मन्दिरों और घाटों को बर्बाद करके उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी कीं और आज्ञा दी कि घाटों पर कोई भी हिन्दू स्नान करने न आए तथा कोई भी नाई उनकी हजामत न बनाएँ” उसके वर्णन द्वारा एक और बात स्पष्ट होती है । उन दिनों मथुरा एक बहुत ही वैभव सम्पन्न नगर एवं सांस्कृतिक केन्द्र था । मुसलमान इतिहासकारों के अतिरिक्त यूरोपीय यात्रियों ने भी मथुरा की गरिमा एवं महिमा के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है । मथुरा के ऊपर मुसलमान आक्रमणकारियों की बहुत समय तक बक्र दृष्टि रही । परन्तु मथुरा के निवासियों ने उसे सदैव अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी समझा और तन-मन-धन सब कुछ देकर उसकी प्राणपन से रक्षा की । उन्होंने “नयने मथुरा, कण्ठे मथुरा,

हृदये मथुरा” की आवाज लगाकर मथुरा के रक्षार्थ कठिन से कठिन कसाले सहै और उसकी संस्कृति को अधुण रखने के लिए क्रूरतम यातनाएँ सहीं और कठिनतम संघर्ष किए ।

मथुरा ने चतुर्वेदी ब्राह्मणों का इतिहास वस्तुतः म्लेच्छों के विरुद्ध अनवरत संघर्ष का इतिहास है । उनका एक परिवार तो “कांजी मार” के नाम से प्रसिद्ध ही है । आज भी विवाह के अक्षर पर छत पर पहले मुगल बनाए जाते हैं, तब बारात भोजन करती है । बारात के भोजन करते समय गीत गाती हुई महिलाएँ मुगल शासनाधिकारी मौर और सैयद को ललकारती हुई सुनी जा सकती हैं । बुचईसिंह और उनकी पत्नी रानी बुचाकड़ ने अपने हाथों अपने पुत्रों का बध करके आत्म सम्मान की रक्षा की थी । अपने सतीत्व के रक्षार्थ न मालूम कितनी चतुर्वेदी वालाओं को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी । मुगल शासन के आश्रित मानसिंह आज भी चतुर्वेदियों को “कन्न खोदा” कह कर कोसते हैं । परन्तु कसाइयों के कोसने से गाय के पड़े क्या कभी मरे हैं ? उनके रक्षक स्वयं मोरमुकुट धारी गोपाल हैं ।

रावण-बध की लीला तो प्रायः समस्त भारतवर्ष में होती है । परन्तु कंस-बध की लीला केवल मथुरा में ही होती है । कार्तिक शुक्ला दसवीं के दिन मथुरा में कंस का मेला होता है । उस दिन मानों मथुरा वासी दशहरा मनाते हैं । रावण की भांति कंस का बध किया जाता है । लीला-स्थल-कंस का टीला से वापिस लौटते समय मथुरा वासी हाथों में लाठी लिए हुए नाचते-कूदते आते हैं, और गाते जाते हैं—

कंसा मारि मधुपुरिआ आए

कंसा के घर के घबराए

मार मार लठन धूर कर आए ।

उस समय इनका उत्साह और उल्लास देखते ही बनता है । “गिरा अनयन, नयन बिन वानी, वाली स्थिति को सार्थक करता है । उसे देख कर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि मथुरा वासियों ने कितने भीषण अत्याचार सहते हुए भगवान कृष्ण के अवतार की प्रतीक्षा की होगी ।

भगवान शंकराचार्य ने देश के आधार पर ब्राह्मणों के जो विभाग किए, उनमें माथुर ब्राह्मण भी हैं । इन माथुर ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण बताया गया है । बराहपुराण में स्पष्ट लिखा है—

न केशवं समं देवः न माथुरं समं द्विजाः

न विश्रातं समं तीर्थं सत्यं सत्यं वसुध्वरे ।

माथुर ब्राह्मण की भांति माथुर वैश्य और माथुर कायस्थ भी होते हैं । इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था में मथुरा का महत्वपूर्ण स्थान है तथा उसके नाम पर प्रत्येक वर्ण के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण वर्ग पाया जाता है ।

मथुरा अपने नाम मथुरा ब्रह्मविद्या के केन्द्र को सर्वथा सार्थक करती है । इसकी छटा का दर्शन और रज का स्पर्श दैहिक, दैविक, भौतिक समस्त तापों को हरने वाला है । मथुरा वास्तव में मथुरा ही है । भक्त प्रवर सूर के स्वर में स्वर मिला कर हम भी यही प्रार्थना करते हैं किः—

मथुरा-सरन सदां मोहि राखो बिनती करकें सों दीजे
सूरदास द्वारे हैं गावें, कृष्ण चरन रति कीजे ।

[सरद-सुहाई]

(श्री सुभाषी, आगरा)

दादुरनि सोर घोर रोर गयौ मोरन कौ,
चपल चकोरनु कौ जोर अधिकारी है ।
झिल्ली झनकार औ न पिक की पुकार सुनै
अमर गुँजार मनुहार मन भाई है ।
कारे धन भारे तम तोम निखारे, चन्द्र—
अमल अकास, आभा अतुल तुलाई है ।
काई गई नीर की सरीर सिथिलाई गई
पावस बिदाई भई सरद अबाई है ।

× × ×

आई है सुहाई रितु सरद, जुन्हाई जगी ।
रजत बितान सेत, अतन तनाये हैं ।
अम्बर बलित अभिराम ठाम ठाम दाम—
मंजु मुकतान से नखत लटकाये हैं ।
नीके हेम आभा सों तनाये छिति छेम छत्र ।
चन्द्र लै मरीची चारु चमर दुराये हैं ।
मानौ अगुआई रितु सरद सुहाई जानि ।
आसन अमल पाक सासन बिछाये है ।

फूले अरविन्द कुन्द केतकी कनेर पुंग
कुंज पुंज गुंजत मल्लिक मतवारे हैं ।
सौरभ समाई सुखदायिनी समीर धोर
परसि सरीर पीर हरति अपारे है ।
रजत पहार धार, कंधौ धनसार सार
तरल तुसार हार भारे धरा धारे हैं ।
मानौ जरठाई रितु पावस बिदाई जानि
सरद सुहाई सेत खेत करि डारे हैं ।



‘ब्रज’ के कुछ स्थान-अभिधान

(डा० लक्ष्मीनारायण मिश्र “नीरव” केरल)

मानव का मोह संसार में सबसे अधिक ‘स्व’ के प्रति होता है । उसके ‘स्व’ से सम्बन्धित उसका व्यक्ति नाम तथा वास-स्थान भी उसके मोह के प्रधान अंग कहे जा सकते हैं । अपने निवास स्थान से व्यक्ति अलक्षित शक्ति के प्रभाव से प्रभावित होकर प्रेम करता है, चाहे कभी-कभी उस स्थान से कष्ट ही क्यों न मिले । जननी के साथ जन्मभूमि की महानता भी सदैव स्मरणीय है—‘जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’ । जिस प्रकार हमें अपनी जननी के प्रति, जननी के नाम के प्रति श्रद्धा होती है, उसी प्रकार अपनी जन्मभूमि के प्रति, जन्मभूमि के नाम के प्रति श्रद्धा, स्नेह तथा ममता होती है । कभी-कभी अपने जन्म स्थान के नाम के प्रति मोह बहुत अधिक बढ़ जाता है और कवि लोग (विशेषतः उर्दू कवि) अपने व्यक्ति नाम के साथ अपने गाँव या नगर का नाम लिखना पसन्द करते हैं, यथाअली सिकन्दर ‘जिगर’ मुरादाबादी, ‘काका’ हाथरसी, नवाब जाफर अली ख़ाँ ‘असर’ लखनवी, ‘जोश’ मलीहाबादी । कुछ लोगों के गोत्र नाम या जाति नाम उनके पूर्व पुरुषों के मूल निवास स्थान की ओर संकेत करते हैं, यथा—कनोजिया (कन्नौज से सम्बन्धित), मैथिल (मिथिला से सम्बन्धित), माथुर या मथुरिया (मथुरा से सम्बन्धित), सारस्वत (सरस्वती प्रदेश से सम्बन्धित) ।

‘नाम’ चाहे व्यक्तिनाम हों या स्थान-नाम अथवा किसी अन्य वर्ग से सम्बन्धित स्वयं में आनन्द के नित्य स्रोत हैं । विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े, सीधे तथा अटपटे नामों को सुनकर एक प्रकार का आनन्द आता है परन्तु एक जिज्ञासु के मस्तिष्क में जब यह विचार उत्पन्न होता है कि इस नाम का रहस्य अथवा अर्थ क्या है तो वह उस रहस्य का पता लगाने का प्रयास करते समय तथा पता लगा लेने पर एक अपूर्व आनन्द और सन्तोष का अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है । प्रत्येक स्थान-नाम के पीछे कोई न कोई रहस्य होता है तथा उसका कुछ अभिप्राय भी होता है । इसी रहस्य तथा अभिप्राय को जानने के लिए स्थान नाम का अध्ययन किया जाता है, परन्तु उसकी व्याख्या के लिए भाषा का गूढ़, वैज्ञानिक ज्ञान आवश्यक है, साथ ही ध्वनि परिवर्तन, उसके विभिन्न रूपों एवं कारणों, नियमों की जानकारी तो और भी अधिक आवश्यक है जो प्रायः सामान्य व्याख्याताओं में नहीं पाई जाती । भारतीय स्थान-नामों के अध्ययन से भारतीय समाज की भिन्न-भिन्न जातियों, भाषाओं, संस्कृतियों, ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अवस्थाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है क्योंकि भारत में पूर्व वैदिक युग से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न संस्कृतियों, सभ्यताओं तथा भाषाओं का संगम हुआ है ।

‘ब्रज’ के कुछ स्थान-अभिधानों पर यहाँ प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है ।

ब्रज के कुछ आवास, गिरि, वन तथा जलधर्मीय अभिधानों का

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवरण

१. अक्रूर (म०) । सं० । धीरेरा का यह नगला लगभग ४५० वर्ष प्राचीन कहा जाता है । यहाँ ‘भतरौड़’ नामक बिहारी जी का प्राचीन मन्दिर है । पास ही पूर्व की ओर ‘अक्रूर घाट’

है। किंवदन्ती है कि यहाँ कृष्ण-बलराम को ब्राह्मण स्त्रियों ने भात खिलाया था^१। कार्तिक पूर्णिमा को भतरोड़ का मेला होता है। ग्राम-अभिधान ‘अक्रूर’ जी की स्मृति दिला रहा है। किंवदन्ती के अनुसार मथुरा जाते समय भगवान ने यमुना-स्नान के समय अक्रूर जी को यहाँ अपना वैभव दिखाया था।^२ चैतन्य महाप्रभु लगभग ४४५ वर्ष पूर्व अपनी व्रज-यात्रा के समय यहाँ आये थे।

२. आन्योर (म०)। हि० + हि। इसे ‘आन्यौर’ भी कहते हैं। यहाँ चौसरस के कुछ लोग आकर रहने लगे हैं। श्रीनाथजी का यह प्राकट्य-स्थल है। अनुश्रुति है कि बल्लभाचार्य जी के समय ‘नरो’ नामक बुढ़िया श्रीनाथजी की सेवा में रही थी जिसे नाथजी ‘आ नरो’ कह कर पुकारते थे अतः इस गाँव को आनरो कहा जाने लगा जिसका विकृत रूप आन्योर (७ आन्यौर) है। किंवदन्ती ग्राम-नाम तथा ग्राम की प्राचीनता (श्रीनाथजी की स्थापना १५५६ वि०) की ओर संकेत करती है। गाँव गिरिराज की दूसरी ओर एक छोर पर बसा हुआ है, अतः अन्य (> आन) + ओर से ग्राम-अभिधान आन्योर (७ आन्यौर ७ आनोर) हुआ है। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार गोवर्धन पूजा के समय कृष्ण एक अन्य स्वरूप में प्रकट होकर समस्त भोज-सामग्री को खाते समय ‘आनो और—आनो ओर’ कहते जाते थे जिससे यह स्थल ‘आनोर’ हुआ है। यहाँ गोविंद स्वामी कुण्ड, गोविंददेव तथा बलदेव-मन्दिर हैं। यहाँ पिंड-दान करने का बड़ा महत्त्व कहा जाता है। यहाँ बल्लभाचार्यजी की वंठक है। व्रज भक्त कवि चतुरा नागा, चतुर्भुजदास जी, कुम्भनदास जी की यहाँ समाधियाँ हैं।

३. ऊवा (छा०)। हि०। माधवराव सिन्धिया ने इस गाँव को शेषमल मिश्र को सदाव्रत के लिए प्रदान किया था। यहाँ रूपराम कटारा का वनवाया हुआ बलदेव मन्दिर है। कोई-कोई इसे ऊवो (७ ओवो) भी कहते हैं। यह गाँव यमुना के ऊँचे धरातल पर बसा है। लगभग १०० वर्ष पूर्व यमुना की मुख्य धारा इसके बिलकुल नीचे होकर बहती थी। वृन्दावन के गोविन्द जी के मन्दिर से यह गाँव लगा हुआ है। यहाँ चैत बदी ५ को फूलडोल का मेला लगता है तथा सावन सुदी ५ को हिंडोला-मेला लगता है। यमुना का बहाव यहाँ कुछ उत्तर-पूर्व की ओर है। गाँव को लगभग ४५० वर्ष प्राचीन कहा जाता है। ग्राउज ने ग्राम-अभिधान का सम्बन्ध ‘उत्तर वह’ शब्द से जुड़ा हुआ माना है।^३ मथुरा जिले में यमुना का उत्तर, उत्तर-बाही रुख भंडीपुर, नगला अकोस, सेहत आदि कई स्थलों पर है। किंवदन्ती है कि बलदेवजी के रास में जब यमुना नहीं आई तो उन्होंने उसे हल से खींचा

१. ‘गाय चरावत ग्वाल सँग, भूख लगी हिय ओड़।

यज्ञ पत्नी ओदन दियो, भयो तब भतरोड़॥ ‘जगता०’ पृ० ४८

२. (अ) ‘निज गोपी वैकुण्ठ को दरस दियो भरपूर।

ताहि ठौर गोपाल कों लखि लीने अक्रूर॥’ ‘जगता०’ पृ० ४७

(आ) भाग० १०। ३६। ४०—५५

था^१ जिससे यमुना का प्रवाह उलटा हो गया है । ग्राम-अभिधान स्पष्ट ही 'ऊभा' (= ऊपर उठा हुआ) शब्द का विकसित रूप है । जिला मानचित्र में इसे 'ओवा' लिखा गया है ।

४. कमई (छा०) । हि० । यह ब्रजयात्रा का पड़ाव-स्थल है । यहाँ भादों सुदी ६ को रासलीला होती है तथा चैत वरी ५ को फूल-डोल मेला होता है । यहाँ चार छोटे-छोटे मन्दिर तथा हरिकुण्ड, बलभद्र कुण्ड हैं । इसे विशाखा तथा कमई नामक सखियों से सम्बन्धित कहा जाता है । कहते हैं कि यहाँ पहले वन था जिसे कामना वन^२ कहते थे । यहाँ की कदमखंडी में मुचकुन्द ऋषि^३ की गुफा तथा तपस्या का स्थल बताया जाता है । इसे कोई-कोई 'कामई' भी उच्चारण करते हैं । ग्राम को १५०० वर्ष से अधिक प्राचीन कहा जाता है । ग्राम-अभिधान 'कर्ममही' (> ❀ कम्मई > कामई ७ कमई) का विकसित रूप प्रतीत होता है ।

५. कारव (सा०) । हि० + हि० । यहाँ एक छोटे-से मन्दिर के पास कुछ समय पूर्व तक पीपल के बड़े-बड़े वृक्ष थे जिन्हें बरेल वन कहते थे । कोई-कोई उसे बरेली भी कहता था । पहले यह काफी बड़ा वन था । अब पीपल के पेड़ भी लगभग समाप्त हो गए हैं । यहीं पास ही मुख्य सड़क के पास शीतला की एक छोटी-सी मूर्ति है । ग्राम लगभग ६५० वर्ष प्राचीन कहा जाता है । पहले यहाँ कलार रहते थे जो ब्राह्मणों को सताया करते थे । यहाँ का महादेव जी का मन्दिर ३०० वर्ष प्राचीन है । बताया जाता है कि पहले यहाँ चारों ओर १½ फुट १½ फुट लम्बी तथा ककैया ईंटों की लगभग एक गज चौड़ी दीवार थी जो कुछ वर्ष पूर्व तक कहीं कहीं भूमि में डेढ़, पौने दो गज नीचे लगभग एक फर्लांग तक देखी गई थी । १६१४—१५ ई० के लगभग एक ईंट लगभग डेढ़ फुट चौड़ी, पौन गज लम्बी तथा चार इंच मोटी मिली थी जिस पर एक बहुत बड़े हाथ का पंजा ईंट थापते समय का प्रतीत होता था जिसकी हथेली, उज्जलियाँ लगभग पाँच-पाँच इंच की थीं । ग्राम-अभिधान 'कारावपु' का विकास प्रतीत होता है । अनुमान है किसी युग में यहाँ किसी राज्य का कारागार रहा होगा ।

६. अंजन-शिला (अँजनोक) । सं० + सं० । आँजनोक गाँव के पास यह स्थल है । किंवदन्ती है कि इस शिला पर उंगली रगड़ कर श्रीकृष्ण ने राधिकाजी के अंजन लगाया था । शिला का रंग श्याम होने से ही यह नाम पड़ा है । इसे 'अंजनी शिला' भी उच्चारण करते हैं ।

७. गिरिराज-जिह्वा (राधाकुण्ड) । सं० + सं० + सं० । राधाकुण्ड ग्राम में यह स्थल है जहाँ से गोवर्धन पर्वत का आरम्भ माना जाता है । पर्वत में मानवीकरण (गोवत्) भावना के कारण यह नामकरण हुआ है ।

८. पूँछरी (पूँछरी) । हि० । इसे पूँछरी भी उच्चारण किया जाता है । गोवर्धन पर्वत में मानवीकरण (गोस्वरूप) की भावना से ब्रज भक्त उसका मुख (जिह्वा) राधाकुण्ड में तथा पूँछ, पूँछरी में मानते हैं । यहाँ पर्वत का अन्तिम भाग है । यहाँ एक छोटा-सा मन्दिर तथा

१. भाग० १० । ६६ । २३ (यमुना-कर्षण की घटना यदि सत्य मानी जाए तो उसे वैज्ञानिक दृष्टि से देखना ही उचित होगा । सम्भव है बलदेव जी ने तत्कालीन इञ्जीनियरों द्वारा सिंचाई आदि के लिए यमुना का रुख मुड़वाया हो । —लेखक)

२. ब्रज० विज्ञास ११।१५

३. भाग० १०।५।१३२—३३

पत्थर की एक बड़ी-सी मूर्ति है जिसे "पूँछरी की लौठा" कहते हैं। किंवदन्ती है कि यह स्वामी विठ्ठलनाथजी के समय 'नाथजी' की गायों का ग्वारिया था जो चोरी छिपे गायों का दूध कभी कच्चा, कभी औटा कर पी जाता था। एक बार किनी के कहने पर जब स्वामी जी तथ्य का पता लगाने आए तो लौठा को किसी प्रकार पता लग गया और वह गिरिराज जी को प्रणाम कर गर्म दूध ही पी गया। स्वामी जी को बाद में भेद का पता चला, तब से श्रीनाथजी के ग्वारियों को भरपेट दूध दिया जाने लगा। हाथरस के गौरीशंकर का बनाया हुआ इससे सम्बन्धित एक छन्द^१ व्रज में प्रसिद्ध है। व्रज यात्रा के समय यात्री गए इसी प्रकार की दो-तीन पंक्तियाँ^२ खूब ऊँची आवाज में गाते हुए चलते हैं। अनुमानतः सिद्धर-चर्चित यह देव-मूर्ति किसी प्राचीन बौद्ध प्रतिमा का परिवर्तित रूप है।

६. साँकरी खोर (बरसाना)। हि०+हि०। बरसाना के पास की छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच एक अति तंग रास्ते को खोर (५ साँकरी खोर) कहते हैं। जनश्रुति है कि जब राधा अपनी सखियों सहित दधि-मटकी लिए उधर से निकलती थीं, कृष्ण उनका मार्ग रोक कर गोरसानन्द लिया करते थे। व्रज-यात्रा के अवसर पर यहाँ अति मनहर दान-लीला^३ होती है।

१०. अरिष्ट वन (राधाकुण्ड)। सं०+सं०। राधाकुण्ड के पास का यह वन कंस-प्रेषित वृषभ वेशधारी अरिष्टासुर के संहार की स्मृति दिलाता है। अनुमानतः पूर्वकाल में इधर रीठे के वृक्ष रहे होंगे। ग्राउज के समय में सतोहा में रीठे का एक वृक्ष था।^४ नीम वृक्ष का नाम भी अरिष्ट है।^५ परन्तु व्रज में नीम के लिए अरिष्ट शब्द व्यवहार-शून्य है। जगतानन्द ने इसे अराठवन^६ लिखा है।

१. गिरवर के निकट गाँव आन्योर जतीपुरा बसे,
लोग अलमस्त जहाँ के परे जो सिलौटा हैं ।
मन्दिर अनेक बने ताल बहु भाँति भरे
न्हावें व्रजवासी जहाँ बाँधि कें लँगोटा हैं ।
गौरीशंकर थकित भए व्रज की छवि निरखत में,
अति रमणीक भूमि खेल्यो नंद जू को ढोटा है ।
पास धर्यौ सोटा, दूध पीयो है अधौटा, देखो,
गिरवर के बगल में एक पूँछरी की लौठा है ॥

२. घनि तोई यै पूँछरी के लौठा ।

अन्न खाइ नहि पानी पीवै, अरे तोऊ तू तो पर्यो है सिलौटा ।
दूध न छोड़ै, दही ऊ न छोड़ै, अरे तू तो पी गयो छाछ कठौता ॥

३. यथा—लै लकुटी ठाड़े भए हो जानि साँकरी खोरि । मुसकि ठगोरी डारिकें
प्यारे सकति लई रति जोरि ॥ मोहन जान दे—

लिए जाति हौ श्रीफल-कंचन कमल-वसन सौं ढाँक । दान जु लागति
ताहि को तुम दै करि जाउ निसाँक ॥ नागरि दान दे —

४. M. M. p. ४६५

५. अमर० २।४।६२

६. जगता० पृ० ३३

११. एकान्त वन (अकाता) । सं०+सं० । अकाता के पास यह वन है । कहते हैं कि प्राचीन काल में यह एकान्त स्थल था जहाँ कृष्ण ने छिपे हुए राक्षसों को मारा था । अनुमान है कि पाण्डव लोग काम्यवन में रहते समय इसे एकान्त देखकर इधर भी रहे हों । इसे एकान्त वन भी उच्चारण करते हैं ।

१२. कुमुदवन (नवीपुर) । सं०+सं० । नवीपुर के पास यह स्थल है जहाँ विहार कुण्ड है । इसे ब्रज भक्ति विलास में पद्मकुण्ड कहा गया है ।^१ वराह पुराण में इस वन को कुन्दवन लिखा है ।^२ इसके अनुसार कपिल मुनि ने यहाँ तपस्या की थी और वराह भगवान की मूर्ति की स्थापना की थी ।^३ गर्ग संहिता में ब्रज-वन विवेचन प्रसंग में इसे कुमुदवन ही कहा गया है ।^४ ब्रज के प्रमुख १२ वनों^५ में से यह एक है । इसे कमोदवन, कुदरवन भी कहते हैं । कुदर शब्द कुड़मल का विकसित रूप प्रतीत होता है । अनुमानतः यहाँ कभी कुमुद पुष्प विकसित होते रहे होंगे ।

१३. गोपाल बाग (मथुरा) । सं०+फा० । मथुरा में कंस टीला के पास यह बाग है । किंवदन्ती है कि कार्तिक शुक्ला गोपाष्टमी को कृष्ण-बलदेव यहाँ गाय चराने गए थे । अब भी यह रासलीला यहाँ की जाती है । वास्तव में मथुरा के गोपाल सेठ का लगवाया हुआ यह प्राचीन बाग है ।

१४. अंजनोखर (अंजनोक) । हिं०+हिं० । अंजनोक की इस पोखर को अंजनकुण्ड भी कहा जाता है । स्पष्ट ही दोनों नाम गाँव के पास की अंजनशिला से सम्बन्धित हैं । अंजनोखर 'अंजन पोखर (<पुष्कर) का विकास है ।

१५. अष्टसखीकुण्ड (राधाकुण्ड) । सं०+सं०+सं० । राधाकुण्ड के एक बड़े से बट वृक्ष के आस-पास राधा की आठ सखियों^६ के कुण्ड बताए जाते हैं जो अब खेतों में लुप्त हो गए हैं ।

१६. इमलीतला घाट (वृन्दावन) । हिं०+हिं०+हिं० । गौड़ीय सम्प्रदाय के गुसाइयों ने वृन्दावन में इमलीतला के पास यह घाट बनवाया था ।

१. ब्रज० विलास १।७३ ।

२. वराह० १५३।२६ ; १६१।६ ।

३. वराह० १५३।३० 'मनसा निर्मितातेन वाराहो प्रतिमा शुभा । कपिलो ध्यायते नित्यमार्चतिस्म दिने दिने ।'

४. गर्ग० वृन्दावन खंड ७।१८ ।

५. ब्रज० विलास १।१३—१७ के अनुसार—महावन, कामवन, कोकिलावन, तालवन, कुमुदवन, भांडीरवन, छत्रवन, खदिरवन, लोहजंघवन, भद्रवन, बहुलावन, वेलवन ।

वराह० १६१।६—६ के अनुसार—मधुवन, तालवन, कुन्दवन, काम्यवन, बहुलावन, भद्रवन, खादिरवन, लोहार्गलवन, विल्ववन, भांडीरवन, वृन्दावन ।

जगता० पृ० ३३ के अनुसार—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, कामवन, खदिरवन, वृन्दावन, भद्रवन, भांडीरवन, वेलवन, लोहवन, महावन ।

६. राधा की परम श्रेष्ठ आठ सखियों के नाम हैं—

ललिता, विशाखा, चम्पकलता, चित्रा, सुदेवी, इन्द्रलेखा, रंगदेवी, तुंगविद्या ।

—हिं० सा० कोश १ पृ० ३०६ ।

१७. कुसुमसरोवर (कुसुमसरोवर) । सं० + सं० । राधाकुण्ड-गोवर्धन के बीच सड़क के पास अति सुन्दर, विशाल तथा पक्का सरोवर है जिसे राजा सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह ने अपने पिता की स्मृति में कलात्मक रूप दिया ।^१ पास ही सूरजमल, उसकी पत्नी की सुन्दर छतरियाँ हैं । यहाँ १८६६ ई० का एक राजकीय आज्ञा-प्रस्तर लगा है जिसके अनुसार यहाँ शिकार खेलने, पक्षियों को मारने का निषेध है । कहा जाता है कि यहाँ पहले कुसुमवन^२ था । जगतानन्द ने इसे कुसुमोत्तर^३ लिखा है जिसे सं० १६७५ में वीरसिंहदेव ने तथा सं० १७७७ में राजा सूरजमल ने पक्का कराया था ।



१. M. M. p. २८५

२. भाग० १०।१५।२ ।

३. जगता० पृ० २६, ३७ ।

संक्षिप्त रूप

अमर०	—	अमरकोश	छा०	—	छाता (तहसील)
गर्ग०	—	गर्ग संहिता	म०	—	मथुरा "
जगता०	—	जगतानन्द	सा०	—	सादाबाद "
ब्रज० विलास—		ब्रज भक्ति विलास	सं०	—	संस्कृत
भाग०	—	श्रीमद्भागवतम्	हि०	—	हिन्दी
वराह०	—	वराह पुराण	पृ०	—	पृष्ठ
हि० सा० कोश—		हिन्दी साहित्य कोश	p.	—	page

बौद्ध-धर्म और उसका प्रचार

(श्री वृन्दावनदास)

ईसा से छठी सातवीं सदी पूर्व महाभारत के युद्ध के बाद भारत में एक नये आन्दोलन का समारम्भ हुआ। ये आन्दोलन भारतीय जनमानस पर तीव्र प्रतिक्रियाओं के फल स्वरूप था। ये प्रतिक्रियायें प्रचलित वैदिक धर्म और उसके विभिन्न अनुष्ठानों के प्रति थीं। भारतीय इतिहास में इस युग को बौद्ध युग कहा गया है।

इस युग में लोग वैदिक प्रक्रियाओं को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे, याज्ञिक अनुष्ठानों के प्रति उन्हें अरुचि होने लगी थी। तर्क और बुद्धि का आश्रय लेकर लोग नये धार्मिक आन्दोलनों पर भी विचार करने लगे। धर्म के नये स्वरूपों का उदय हुआ और उनमें लोगों की रुचि बढ़ने लगी।

‘भारत का प्राचीन इतिहास’ नामक अपनी पुस्तक में डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने इस समय की स्थिति का निम्नलिखित शब्दों में बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन किया है। “प्राचीन आर्य ईश्वर के रूप में एक सर्वोच्च शक्ति की पूजा किया करते थे। प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों में ईश्वर के विभिन्न रूपों की कल्पना करके देवताओं के रूप में उनकी उपासना करते थे। यज्ञ इन देवताओं की पूजा का क्रियात्मक रूप था। धीरे-धीरे यज्ञों का कर्म काण्ड अधिकाधिक जटिल होता गया। याज्ञिक लोग विविध विधानों और कर्म काण्ड को ही स्वर्ग व मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन समझने लगे। प्राचीन काल में यज्ञों का स्वरूप बहुत सरल था। बाद में बहुत बड़ी संख्या में पशुओं की बलि अग्निकुण्ड में दी जाने लगी। याज्ञिक अनुष्ठानों का विह्वल रूप भारत के बहुसंख्यक जनपदों में प्रचलित था उसके विरुद्ध उग्र आन्दोलनों का होना स्वाभाविक था। आर्यों में स्वतन्त्र विचार की प्रवृत्ति विद्यमान थी और यही कारण हुआ कि ईसा से छठी सदी पूर्व मगध के गणराज्यों में अनेकों ऐसे सुधारक उत्पन्न हुए जिन्होंने यज्ञ-प्रधान वैदिक धर्म के विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन किया और धर्म का एक नया स्वरूप जनता के सम्मुख उपस्थित किया।”

इन महान् सुधारकों में अन्धों के अतिरिक्त बुद्ध और महावीर अग्रगण्य थे। यहाँ बुद्ध के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालना अभीष्ट है।

बुद्ध के जन्म का नाम सिद्धार्थ था। आधुनिक नेपाल की सीमाओं के पास स्थित कपिल-वस्तु नामक नगर में उनका जन्म हुआ था। कपिलवस्तु शाक्य गण-राज्य की राजधानी था जिसके कि राजा [गणमुख्य] शुद्धोधन थे। शुद्धोधन की रानी महामाया की कोख से सिद्धार्थ का जन्म कुछ विवरणों के अनुसार ईसा पूर्व ५६६ और अन्य कुछ विवरणों के अनुसार ईसा पूर्व ६२४ में हुआ। जन्म की तिथि से सात दिन के भीतर महामाया की मृत्यु के रूप में एक देवी दुर्घटना उपस्थित हो गई। महामाया की मृत्यु के बाद उसकी बहिन प्रजापति ने सिद्धार्थ का पालन पोषण किया। प्रजापति भी शुद्धोधन की दूसरी रानी थी।

शुद्धोधन की इच्छा थी कि युवराज को क्षात्र धर्म की उच्च शिक्षा प्राप्त हो और क्षत्रियोचित परम्पराओं में दीक्षित होकर युवराज अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ावे और अपने गण के गौरव को ऊँचा करे। परन्तु बाल्यकाल से ही युवराज के मन पर जरा, बाह्यकर्म, मृत्यु, जन्म, मानसिक वेदनाओं के प्रति गहरी संवेदनशीलता थी। उसका हृदय विग्रह, दुर्घटना आदि से उत्पन्न क्लेशों से द्रवीभूत हो जाता था।

युवराज की परदुःख कातरता और दयार्द्रता का एक बड़ा मनोरंजक उदाहरण बौद्ध-साहित्य में उपलब्ध है। एक दिन सन्ध्या के सुहावने समय एक हंस उड़ता हुआ आया और चूँकि उसके तीर लगा हुआ था वह युवराज के सामने उद्यान में गिर गया। युवराज ने तीर को निकाल कर उसकी चिकित्सा कराई। उचित परिचर्या के फल स्वरूप वह हंस मृत्यु के मुख में जाने से बच गया। इसी बीच में देवदत्त जिसने कि तीर मारा था आया था और उसने अपने शिकार की माँग की। परन्तु युवराज ने आहत हंस को उसे देने से कतई इन्कार कर दिया अपितु देवदत्त पर एक निरपराध पक्षी की हत्या के प्रयास करने के कारण फटकार भी पड़ी।

शुद्धोधन युवराज के कोमल स्वभाव को पसन्द न करते थे। एक पिता होते हुए उनकी यह बलवन्ती इच्छा स्वाभाविक ही थी कि उनका पुत्र क्षत्रियोचित धर्म को पालन करता हुआ एक महान् सम्राट बने और उनके कुल की कीर्ति को बढ़ावे। बौद्ध साहित्य से लिखा है कि सिद्धार्थ के विषय में ज्योतिषियों ने भविष्य वाणी की थी कि यदि सिद्धार्थ को वृद्ध पुरुषों, रोगियों, मृत-शरीरों को न देखने दिया गया तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा और यदि ऐसा हुआ तो वह सन्यासी हो जायगा। इसलिये शुद्धोधन ने सिद्धार्थ को ऐसे वातावरण में रक्खा जहाँ दुःख का नाम न था, जहाँ उल्लास ही उल्लास था, जहाँ हर समय राग रंग ही था। परन्तु सिद्धार्थ को उस वातावरण से उपराम हो गया। उसे उसने अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण समझा। वह राज प्रासादों से निकल कर प्रजा में आया और वहाँ उसने अपने चारों ओर जन जीवन को देखा। उसने देखा कि जरा और मृत्यु स्त्री पुरुष आवाल वृद्ध सबको समान रूप से सताती है। सभी लोग रोष-ग्रसित होते, दुःख पाते और मरते हैं। वह प्रतिक्षण सोचना रहता कि पीड़ित मानवता का उद्धार कैसे हो और इस अनित्य संसार में लोग किस प्रकार सुखी हो। उसने यह भी निष्कर्ष निकाला कि इस समस्या के हल पर उसको सान्त्वना मिल सकती है और मानवता को भी। वह इसी का उपाय ढूँढ़ने लगा और इसी चेष्टा में रत रहने लगा।

मानवता के दुःखों के कारण की खोज सिद्धार्थ की एक धुन हो गई। शुद्धोधन के परामर्श दाताओं की सलाह हुई कि यदि युवराज का विवाह कर दिया जाय तो शायद सांसारिक स्नेह बन्धनों में पड़ कर युवराज सही रास्ते पर आ जाय। दण्ड पाणि की सुन्दर कन्या यशोधरा से उसका विवाह कर दिया गया। परन्तु विवाह से युवराज के मन पर बांझित परिवर्तन न हुआ। निस्संदेह विवाह होने के बाद कुछ दिन तक उसके चिन्तन में शिथिलता आ गई। उसके एक पुत्र भी हुआ। परन्तु जिस समय उसे पुत्रजन्म की खबर सुनाई गई तो वह यही कहता सुना गया कि उन बन्धनों में जिन्हें उसको तोड़ना है एक और बन्धन जुड़ गया।

समय यापन के साथ युवराज की उद्विग्नता बढ़ती ही गई। वह मानव दुःख का कारण और उसका इलाज जानना ही चाहता था। वह समझता था इस खोज में यदि उसके प्राण भी

चले जाँय तो कोई विशेष हानि न होगी। उसे राज्य, स्त्री पुत्र किसी में दिलचस्पी न रही और उमने अपने पिता से राजभवन छोड़ने तथा सांसारिक सुख ऐश्वर्य को त्यागने की अनुमति चाही। वह अपने मानसिक उद्वेग की शान्ति के लिए कुछ करना ही चाहता था। पिता ने उसके प्रस्ताव पर अपनी असहमति प्रकट की तथा पहरा और कड़ा कर दिया और नाचरङ्ग का दौर और अधिक बढ़ा दिया गया। परन्तु इस सबके होते हुए एक रात्रि को युवराज अपनी स्त्री और पुत्र को सोता छोड़ कर अपने विश्वस्त सारथी छंदक की सहायता से कंथक नामी अश्व पर बैठकर राजभवन से निकल गया। इस सम्बन्ध में एक बड़ी रोमाञ्चकारी घटना का उल्लेख हुआ है। राजभवन से निकलने के बाद युवराज अपने पुत्र का अन्तिम चुम्बन लेने के लिए पुनः अन्तः पुर में प्रविष्ट हुआ परन्तु पुत्र तो यशोधरा की बाँहों में लिपट कर सो रहा था और यशोधरा की निद्रा भङ्ग न हो जाय इस भय से युवराज अपने पुत्र से आखिरी आलिङ्गन भी न कर सका और सदा के लिए राजपाट और गृहस्थ-सुख का परित्याग कर घर से निकल गया।

कपिलवस्तु की सीमा से निकलते ही गौतम ने सारथी को अश्वसहित वापिस कर दिया। उसने सारथी के हाथ अपने पिता को सन्देश भेजा कि उसका निर्णय अन्तिम है। उसने सारथी से यह भी अनुरोध किया कि वह उसके वृद्ध पिता को अधिकाधिक सान्त्वना दे और उसको धीरे-धीरे समझा दे कि गौतम का निर्णय अपरिवर्तनीय है। उसने अपने राजकीय वस्त्र उतार कर सन्यासी के काषाय वस्त्र धारण कर लिये। इस घटना को बौद्ध साहित्य में 'महाभिनिष्क्रमण' लिखा है।

तपस्वी का वेप धारण करने के बाद गौतम ज्ञान की खोज में पण्डितों, विद्वानों और साधु-सन्यासियों से मिलने लगे। सबसे पहिले वे वैशाली में आलार पण्डित से मिले। वहाँ उन्होंने अनेक शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया। परन्तु यथेष्ट पठन पाठन के बाद भी उन्हें लगा कि वे जहाँ पहिले थे वहाँ ही अब भी हैं, वहाँ रह कर उन्हें अपने ध्येय-प्राप्ति के कोई लक्षण प्रतीत नहीं हुए। वे उस स्थान को छोड़कर मगध की राजधानी राजगृह पहुँचे जहाँ उन्होंने रुद्रक से दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया। परन्तु उनको शास्त्रार्थ और वाद-विवाद से शान्ति नहीं मिली। वे वहाँ से गया के पास निरञ्जना नदी के किनारे उरुवेल नामक वन में पहुँचे वहाँ उनकी पाँच सन्यासियों से भेंट हुई।

उरुवेल पहुँचने के पहिले राजगृह में एक महत्व पूर्ण घटना और हुई थी, उसका उल्लेख करना आवश्यक है। वहाँ पर सिद्धार्थ से भेंट करने सम्राट बिम्बसार पहुँचे थे। सम्राट कदाचित् शुद्धोधन के अनुरोध पर गये थे। उन्होंने गौतम को अपने वृद्ध पिता और स्वजनों के पास लौट जाने को कहा। परन्तु गौतम ने उनको समझाकर कहा कि उनका निश्चय अपरिवर्तनीय है, वे एक ऐसे ध्येय की प्राप्ति में लगे हुए हैं जिसमें सफलता प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण मानवता को लाभ होगा, उस लाभ अर्थात् उपलब्धि में वृद्ध पिता, समस्त स्वजन तथा स्वयं आप भी भागीदार होंगे। सम्राट बिम्बसार इस उत्तर से बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने युवराज को अपना काम करते रहने की सलाह दे दी तथा उनसे यह भी कहा कि यदि उन्हें अपने लक्ष्य की सिद्धि हो जाय तो वे सम्राट को न भूलें।

उरुवेल के प्राकृतिक दृश्य गौतम को बहुत सुहावने लगे। उन्होंने उस स्थान को तपस्या के हेतु उपयुक्त समझा। गौतम की जिज्ञासा देख कर वे पाँचों सन्यासी जो वास्तव में रुद्रक के शिष्य थे गौतम के साथ घोर तप करने की योजना बनाने लगे। उन सबने पास के एक ग्राम में घोर तप किया। गौतम धूप और मेंह में खड़े रहते। उन्होंने आत्मा के उत्थान के लिए शरीर को कष्ट दिया। वे एक ठठरी मात्र रह गये और ज्वराक्रान्त होकर मृत्यु आसन्न हो गये। उन्हें अनुभव हुआ कि वे अपने ध्येय प्राप्ति के तनिक भी निकट नहीं पहुँचे हैं और अभी पथ भ्रष्ट ही है। उन्होंने तप का त्याग किया और समीप एक नदी में स्नान किया। सुजाता नाम की स्त्री ने उनको भोजन दिया जिसको उन्होंने बड़े स्वाद से खाया। बौद्ध साहित्य में सुजाता को एक महान् सन्त के रूप में स्मरण करके सम्मानित किया गया है। गौतम को इस प्रकार एक शिष्या मिली परन्तु उनके पाँच साथी उनसे छूट गये। उनके साथी गौतम को असफल समझकर उनसे अलग हो गये थे।

अब गौतम के मन में निराशा के भाव उठने लगे। वे सोचने लगे क्या जीवन की इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। क्या उन्होंने अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट किया? क्या उनके लिए यह उचित न था कि वे अपने पूर्वजों की तरह राज्य करके अपने कुलोचित धर्म का पालन करते? लेकिन इन सब प्रश्नों का उन्होंने एक ही उत्तर दिया और वह यह कि अब तक चाहें वे असफल रहे परन्तु अब उन्हें कपिनवस्तु लौट कर नहीं जाना है, उन्होंने मानव-जीवन के दुःखों को दूर करने के उपायों की खोज में पूरे सात वर्ष व्यतीत कर दिये हैं, वे इस खोज को अपने जीवन के अन्त तक चालू रखेंगे और इस प्रयास में यदि उनका जीवन भी समाप्त हो जाय तो इससे कोई बड़ी क्षति नहीं होगी। वास्तव में गौतम एक अदम्य साहस और असाधारण धैर्य एवं अद्ययवसाय के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने इन महान् गुणों को यदि अपने राज्य के विस्तार हेतु लगाया होता तो वे निस्संदेह एक चक्रवर्ती सम्राट होते।

भोजन करने के उपरान्त गौतम ने एक वृक्ष के नीचे बैठ कर मनन करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने ध्यानावस्थित होकर समस्त समस्या पर विचार किया। बौद्ध साहित्य में इस वृक्ष को बोधिवृक्ष कहते हैं और इसका एक महान् तीर्थ के सदृश आदर किया गया है। बोधगया में एक पीपल का पेड़ उसी वृक्ष का अवशेष है। गौतम सारे दिन और अर्द्ध रात्रि तक चिन्तन करते रहे। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि वे सात दिन और सात रात्रि एक ही स्थान पर ध्यान मग्न अवस्था में बैठे रहे। बौद्ध-साहित्य में इस दशा में सिद्धार्थ पर कामादिक विकारों के आक्रमणों का भी उल्लेख है जो कि मार (कामदेव) पराजय के साथ अर्द्ध रात्रि को समाप्त हो गये। वृक्ष के नीचे बैठकर सिद्धार्थ को जो ज्ञान प्राप्त हुआ हुआ वही वह ज्योति अथवा प्रकाश है जो बौद्ध धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गौतम उसी दिन से बुद्ध हो गये और जो ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ उसे आर्य मार्ग व मध्य मार्ग कहते हैं।

बुद्ध के उपदेश

बुद्ध की शिक्षाएँ व्यावहारिकता पर आधारित थीं। वे जनता की ही भाषा में ऐसी नीति का उपदेश करते थे जो सब की समझ में आने वाली थी। वे अपने आपको और श्रोताओं एवं भक्तों को दार्शनिक समस्याओं में न उलझाते थे। इसका यह प्राशय नहीं कि उनके उपदेशों में दर्शन-विहीनता थी अथवा उनके विचारों का कोई दार्शनिक आधार ही न था।

गया में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त बुद्ध काशी की ओर गये । काशी के समीप सारनाथ में उन्हें वे पाँचों संन्यासी मिले जिनको वे उरुवेल में छोड़कर चले आये थे । उन संन्यासियों ने पहिले तो बुद्ध की ओर कुछ उपेक्षा भाव बरता परन्तु बुद्ध के तेजस्वी मुख-मण्डल को देख कर उन्हें अपनी भूल का आभास हुआ और वे बुद्ध के शिष्य बन गये । बुद्ध ने सर्व प्रथम इन्हीं पाँचों शिष्यों को जो बाद में 'पञ्च वर्गीय' कहलाये धर्मोपदेश किया । उन्होंने इन शिष्यों को चार सत्यों का उद्घाटन किया । इसी प्रक्रिया को बौद्ध साहित्य में "धर्मचक्र प्रवर्तन" कहते हैं । वे चार सत्य इस प्रकार हैं ।

(१) दुःख — संसार में दुःख ही दुःख है । सर्व दुःखं दुःखं । शोक का अस्तित्व स्वीकार कर लेना ही मुख्य बात है । संसार का प्रत्येक प्राणी जन्म, मरण, जरा और मृत्यु के दुःख से दुःखी है । प्रिय के वियोग, अप्रिय के संयोग तथा इच्छाओं को तृप्ति न होने से दुःख ही दुःख होता है ।

(२) समुदय — दुःख ही ध्रुव सत्य नहीं है उसका कारण (समुदय) भी सत्य है । दुःख का कारण इच्छा अथवा तृष्णा है । तृष्णा सांसारिक विषयों और प्रलोभनों में मनुष्य को ग्रसित कर लेती है । यह वासना ही अहंकार, ममता, राग, द्वेष, कलह और दुःख की जननी है ।

(३) निरोध — दुःख का कारण ज्ञात होने पर उसका निरोध हो सकता है । तृष्णा के क्षय से जन्म मरण तथा अनेक प्रलोभनों से उत्पन्न दुःखों का नाश हो जाता है । वासना के क्षीण होने से एक दुःख रहित अवस्था उत्पन्न होती है जिसे बुद्ध ने निर्वाण की संज्ञा दी ।

(४) मार्ग — दुःख के निरोध के साधनों को बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग कह कर पुकारा । ये आठ मार्ग हैं (१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वाक् (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीव (जीविका) (६) सम्यक् उद्योग (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि । बौद्ध साहित्य में इस अष्टांग मार्ग को 'मज्झिमा परिपदा' कहा है । सामान्यतया इसको बुद्ध का मध्यम मार्ग कहते हैं । इसमें अति का सर्वत्र वर्जन है । इसके अनुसार जहाँ भोग-विलास में आसक्ति त्याज्य है वहाँ तपादि के द्वारा अनावश्यक रूप से शरीर को यातनाएँ पहुँचाने का भी निषेध है । इसीलिये बौद्धधर्म में युक्ताहार विहार का विधान है और वह मध्यम मार्ग का समर्थक है ।

बुद्ध ने अपने उपदेशों में नैतिक सदाचरण पर भी बड़ा बल दिया । नैतिक सदाचरण में दस शीलों का परिपालन आवश्यक है (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (किसी की वस्तु न चुराना) (४) अपरिग्रह (संचयशीलता का त्याग) (५) ब्रह्मचर्य (६) नृत्य और गायन का त्याग (७) सुगन्धित पदार्थों का निषेध (८) असमय भोजन का वर्जन (९) कोमल शय्या का निषेध (१०) कामिनी कांचन के प्रति उदासीनता । पहिले पाँच शीलों का परिपालन ग्रहस्थों के लिये आवश्यक था परन्तु भिक्षुओं के लिए तो दसों शील अनिवार्य थे ।

बुद्ध उन समस्त विद्या केन्द्रों पर गये जिन पर वे ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व पहुँचे थे । उस समय आलार और रुद्रक की मृत्यु हो चुकी थी । वे अपने नगरकपिलवस्तु भी गये । उस समय उनके वृद्ध पिता जीवित थे । उनका पुत्र राहुल अब नवयुवक होगया था । पहिले तो उनके बन्धु बान्धवों में कुछ उदासीनता सी दिखाई दी परन्तु बुद्ध के उपदेशों का श्रवण कर वे सब के सब उनके अनुयायी हो गये । उनके सभी स्वजनों ने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया । उनकी स्त्री यशोधरा और विमाता प्रजापति भी बौद्धधर्म में सम्मिलित होगईं और उन्होंने महिला संघ की स्थापना की ।

बुद्ध ने अन्य धर्माचार्यों की तरह एक ही स्थान पर बैठ कर अपने उपदेशों का प्रचार न किया बल्कि घूम घूम कर अनेक स्थानों पर वे राजा और रंक दोनों से मिले और उनको अपनी बात सुनाई। उन्होंने जिन भिक्षुओं का संघ बनाया उसकी आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं। वे भिक्षावृत्ति कर उदर पोषण करते तथा वृक्षों के नीचे अथवा उस अस्थायी आश्रय को ग्रहण करते जिसको उनके भक्त उन्हें बता दिया करते थे।

बुद्ध ने ब्राह्मण की परिभाषा उस व्यक्ति से की जो सदाचारी जीवन व्यतीत करता था और उन्होंने दुराचारी को चाण्डाल की संज्ञा दी। उन्होंने वेदों की महत्ता और ब्राह्मणों के एकाधिकार को अस्वीकार किया परन्तु उन्होंने ब्राह्मणोत्तर जातियों को ब्राह्मणों के विरुद्ध कभी न उकसाया। वे उनको ही उपदेश देना चाहते थे जो उनको सुनना पसन्द करें। जिन लोगों का उन पर विश्वास न था उनसे उनको कोई द्रोह या द्वेष न था। उनका कथन था कि जो अज्ञानी अथवा अहंकारी है वह दया का पात्र है, उसके प्रति क्रोध या असहिष्णुता मनुष्य के आत्म सम्मान या आत्म-गौरव के विरुद्ध है। भयङ्कर उत्तेजना के सामने भी प्रशान्त भाव और अक्रोध बुद्ध की सबसे बड़ी विशेषता थी। जब तक वे जीवित रहे उन्होंने उस उच्चाति उच्च कोटि के प्रशान्त और सहिष्णु स्वभाव का परिचय दिया जिसकी मिसाल विश्व के अन्य धर्म प्रचारकों में मिलनी दुर्लभ है।

बुद्ध के उपदेशों में नैतिकता, सरलता, और व्यावहारिकता के साथ-साथ दार्शनिकता भी थी। बुद्ध ने दुःख के अस्तित्व पर इतना बल दिया कि लोग उन्हें निराशावादी कहने लगे। परन्तु यह भ्रमात्मक है। बुद्ध ने दुःख की विद्यमानता पर जोर दिया परन्तु इसके साथ ही उन्होंने उसका कारण भी बताया और उसके निवारण के लिए मार्ग भी। बुद्ध ईश्वर और आत्मा को नहीं मानते थे परन्तु पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। उनका कथन है कि पुनर्जन्म कर्म के कारण होता है। जब मनुष्य तृष्णा पर विजय प्राप्त कर लेता है तो उसका अहंकार नष्ट हो जाता है और उसको निर्वाण प्राप्त हो जाता है। इस निर्वाण रूपी परम पद की प्राप्ति का आधार बुद्ध ने नैतिक आचरण और ज्ञान को स्थिर किया, उन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड और वेदों के प्रमाण को मान्यता प्रदान नहीं की।

बुद्ध के प्रचार से उनका यश चारों ओर फैल गया। बड़े-बड़े धनी मानी सेठ साहूकार राजा महाराजा और विद्वान् उनके शिष्य होने लगे। काशी के सेठ का लड़का यश काशी में, राजगृह में सारिपुत्र और मोग्गलान, शाक्य गणों में राहुल, नन्द, भद्रिक, अनुरुद्ध, आनन्द, उपाली देवदत्त आदि उनके शिष्य हो गये। कोशल की राजधानी श्रावस्ती में वहाँ के सेठ अनाथपिण्ड ने उनका आतिथ्य करके शिष्यत्व स्वीकार किया। बुद्ध अपने जीवन भर अंग, मगध, वज्जि, काशी, मल्ल, शाक्य, कोलिय, मौर्य, कोसल, वत्स, शूरसेन आदि राज्यों में भ्रमण और धर्म प्रचार करते रहे। उनको अवन्ति आदि दूरस्थ प्रदेशों से निमन्त्रण आये परन्तु वे वहाँ कभी न जा सके यद्यपि अपने शिष्यों को उन्होंने सुदूरवर्ती प्रदेशों में भेजा। बुद्ध के जीवन में बौद्ध धर्म बुद्ध के भ्रमण किये हुए प्रदेश तक ही सीमित रहा और यह क्षेत्र वह था जो पश्चिम में वाराणसी और पूर्व में राजगृह के बीच तथा उत्तर में कपिलवस्तु और दक्षिण में गया के बीच स्थित था। बौद्धधर्म को विश्वव्यापी बनाने का श्रेय तो अशोक और तीसरी बुद्ध सभा के नेताओं को था जो ईसा पूर्व २४३ में पाटलिपुत्र में सम्पन्न हुई थी।

यह बात नहीं है कि बुद्ध का यश और गौरव ही बढ़ता रहा हो और विरोध न हुआ हो। बुद्ध को ब्राह्मणों के विरोध का सामना करना पड़ा। उनका पितृव्य देवदत्त सदैव उनके विपरीत रहा करता था। सम्राट बिम्बसार बुद्ध के प्रशंसक थे अतः देवदत्त ने अजातशत्रु से मित्रता कर बिम्बसार का घात करा दिया। देवदत्त ने बुद्ध संघ में भी प्रवेश पा लिया और वहाँ भी उसने दलबन्दी की और बड़ा वखेड़ा कर दिया। परन्तु बुद्ध के विपरीत किये हुए कार्यों में सदैव उसे विफलता मिली और बुद्ध से पूर्व ही उसकी मृत्यु भी होगई।

बुद्ध ने चालीस वर्ष पर्यन्त भ्रमण कर उपदेश दिया। अस्सी वर्ष की अवस्था में वे भ्रमण करते हुए वे मल्लों की राजधानी पावा पहुँचे। वहाँ उन्होंने चुन्द कुमरि का आतिथ्य स्वीकार किया। वहाँ उनको रोग ने धर दबाया परन्तु वे रुग्णावस्था में ही कुशी नगर को चल पड़े। कुशी नगर के पास शाल वन में उन्होंने शरीर त्याग दिया। उनकी भस्म को उनके अनेक भक्तों और शिष्य राज्यों ने बाँट लिया।

बौद्धधर्म के प्रचार के विषय डा० राजबली पाण्डेय अपनी पुस्तक भारतीय इतिहास की भूमिका में लिखते हैं, “बुद्ध के उपदेशों और शिक्षाओं का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ और बहुत से लोगों ने उनके धर्म को अपनाया। इसके कई कारण थे। पहिला कारण यह था बौद्धधर्म बड़ा सरल, नैतिक और व्यावहारिक था। इसके उदय के पहिले जनता वैदिक कर्मकाण्ड और गूढ़ दार्शनिक वादों से ऊँच गई थी। इसलिये उसने रोज के काम में बरते जाने वाले नैतिक सिद्धान्तों का सहर्ष स्वागत किया। शीघ्र प्रचार का दूसरा कारण यह था कि बुद्ध के धर्म का द्वार मानव मात्र के लिए खुला हुआ था। इसमें वर्ण, जाति, ऊँच नीच का भेदभाव नहीं था। इसलिए बहुसंख्यक लोगों ने इसे अपनाया। सफलता का तीसरा कारण बुद्ध का निष्कलंक, पवित्र और ऊँचा चरित्र था। उनका ऊँचा शरीर, गौरवर्ण, उन्नतमुख मण्डल प्रशान्त मुद्रा और दया और करुणा से आर्द्र गंभीर वाणी लोगों पर जादू के समान असर डालती थी। बुद्धदेव ने कोरा उपदेश ही नहीं किया, अपने उपदेशों को जीवन में चरितार्थ भी किया। इसलिए उनके धर्म की प्रमाणिकता और उपयोगिता लोग शीघ्र मान लेते थे। चौथा कारण उपदेश के माध्यम और शैली का जनता के अनुकूल होना था। बुद्ध ने शास्त्रों और पण्डितों की भाषा संस्कृत को छोड़कर जनता की बोलचाल की भाषा में अपना उपदेश दिया, जिसको सभी लोग आसानी से समझ सकते थे। वे अपने भाषण को दृष्टान्त, उपमा, रूपक, कथा-कहानी से सुबोध और रोचक बनाते थे। साथ ही तर्क में बड़े-बड़े शास्त्रियों को अपनी सरल दलीलों से पराजित कर देते थे। सफलता का पाँचवाँ कारण था प्रचार कार्य को संघ के रूप में संगठित करना। बुद्ध अच्छे नेता और संगठन कर्ता थे। वे गुण उनको अपने गणतन्त्र से मिले थे। बौद्ध संघ ने बड़ी तत्परता से बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया। बौद्धधर्म के प्रचार का छठा कारण था बुद्ध के समकालीन बड़े-बड़े राजाओं और व्यक्तियों की सहायता। बिम्बसार, अजातशत्रु, प्रसेनजित, उदयन आदि राजा बुद्ध के व्यक्तिगत भक्त और अनुयायी थे। अनाथ पिण्ड जैसे बड़े-बड़े धनीमानी धर्म के मार्ग में अपना सर्वत्र निष्ठावर करने वाले थे। बौद्धधर्म के लोकप्रिय होने के का सातवाँ कारण था उसका मध्यम मार्गी होना। बुद्ध ने जीवन में अति का सर्वत्र विरोध किया। साधारण जनता के लिये यह मार्ग सुगम था। इस तरह बौद्धधर्म अपने नैतिकवाद उच्चादर्श और सर्व सुलभ होने के कारण बहुत शीघ्र बुद्ध के जीवन काल में ही बहुत लोगों में फैल गया”



काव्यकृति सुपर्णा की समीक्षा

(श्री रमेशचन्द्र दुबे, डि०मै०कम्पाउण्ड आगरा)

पं० भगवानदत्त चतुर्वेदी की काव्य रचना सुपर्णा का आद्योपान्त अध्ययन करके मैंने इन वयोवृद्ध निर्मल हृदय, सहज स्नेही, भावुक कवि के मन-प्रांगण की सरस-विचल-कुतूहलमयी रम्य वीथियों का उत्सुकता से पर्यवेक्षण किया। वे स्पष्टतः गांधीवाद, किसान, मजदूर और श्रम के अनुरागी, इन दलित वर्ग के प्रतिनिधियों की पीड़ा और ताड़ना को वाणी देने वाले, तथा ब्रज की साँवरी गोरी जोरी के अनन्य उपासक, रंगीली ब्रजभाषा की रंगीनियों के सफल चित्रकार और अन्त में मधुर-मुस्वाद्यु भोजन की आकर्षकता के गुणग्राही तथा दंगल के मल्लयुद्ध के सफल द्रष्टा, मस्त पर शालीन, मथुरा के चौबे के रूप में मेरे समक्ष आए। एक बात जो मुझे बड़ी चमत्कार पूर्ण लगी वह यह कि खड़ी बोली के गीतों में उनकी भाषा मैथिलीशरण, प्रसाद और निराला की तरह सबल एवं प्रवाह मयी है और ब्रजभाषा छन्दों में वह रत्नाकर तथा ठाकुर आदि की काव्य भाषा के समान सरस, सुसंबद्ध एवं रस-निष्पन्दिनी है। आधुनिकता के छींटे उनकी दोनों भाषाओं की काव्योक्तियों की विशेषता हैं।

खड़ी बोली का निम्न चित्र भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से उच्चकोटि का बन पड़ा है—

शब्द-रज्जु, स्वर-कूपदंड-भाषा-सौष्ठव का पाल प्रतानित ।
अलंकार रस-राग-व्यंग्य रंजित ध्वज से हो व्योम विमंडित ॥

अपनी जन्मभूमि मैनपुरी के यशस्वी कवि कौशलेन्द्र की “काकली” जैसी तान मुझे निम्न पंक्तियों में बहुत भली लगी—

जन अपने से यों बिगाड़ कर लोगे फिर
मन अपने की बात किससे कहोगे मन ।
खेद सा रहेगा बना उर में तुम्हारे सदा
विरह व्यथा की घोर वेदना सहोगे मन ।

अब से चार दशक पहिले यह खड़ी बोली की लोकप्रिय काव्य ध्वनि थी जिसमें अक्रान्तिम भाव से मन के भावों की व्यंजना सहृदयों के हृदयों को छू लेती थी। उस पीढ़ी के साहित्य-रसिकों को ऐसी पंक्तियाँ अब भी कण्ठस्थ हैं। उनकी अभिव्यक्ति की सहजता एवं भक्तों का भोलापन ही उनका प्रमुख आकर्षण है; कालिदास के “मेघदूत” की “भूविज्ञासानभिज्ञ जनपद-वधू-लोचनों” की तरह।

खड़ी बोली में “तुही” आदि प्रयोग कहीं-कहीं खटकते हैं पर “रमा आह्वान” और “करुण कथा” की भाषा सशक्त एवं प्रवाहमयी है।

ब्रजभाषा में ऋतु वर्णन में नवीन दृश्यों की भाँकी और परम्परागत राधा कृष्ण लीला के मनोहारी चित्र साहित्य-रसिकों को अमित आनन्द देने वाले सिद्ध होंगे। एक दो चित्र देखिए—

अंक भरि बात कों गुपाल नें अचानक ही मलकें गुलाल लाल गाल किए गोरी के ।

और यह “मल्लयुद्ध” भी कितना जोरदार है—

घोबी पाट, कला जंग, बेलन को दाँव खेलि, घिस्सा अलगट्ट पँट्ठीमार रहे अजमाय ।
मच्छी गोता सोड़ो बात-साँकड़ा कमर-पेटी बगली, सवारी औ महावतो रहे दिखाय ॥

और फिर यह शरद-जुन्हाई की दावत देखिए—

मावा के मोदक पर रायतौ दही के बरा, मोहन के मठरी मुलायम छकाई में ।
जन्हु-तनया के तीर तरल समीर तहाँ, सीतल छुड़ाई खोर शरद जुन्हाई में ॥

“निदाघ” में सेठ जी के ठाठ से भी अब ब्रजवासी अपरिचित नहीं हैं—

बात अनुकूलित विसाल कमरा है तहाँ, द्वारन पै भींगी भई खस की बहार है ।
फूलन की सेज के समीप मेज पै है सजो, सुद्ध संतरा कौ रस सर्वत अनार है ॥
सीतल रहत हिमकारी अलमारिन में जल फल सकल अहार रसदार हैं ।
ठाठ के सहित ठेठ सीत उपचार लखि जेठ के दुपैरी मानें सेठजो सों हार है ॥

प्रभु एवं देश के भक्त इस कवि की यह काव्य रचना अनुराग की फाग की वानगी
दखाते हुए “सुपणी” के पणों की हरीतिमा को लाल की लाली में सरोबार भी कर देती है—

गोरी भोरी जाउ ना अकेली पनघट आज मारग में होरी बरजोरी मची भारी है ।
भरि न सकेंगी घट अटक परैगौ कोऊ सारी भीजि जायगी मिलैगी तोहि गारी है ॥
सास रिसियाइगी ननद खिसियाइगी औ सुनत सहेली हू हँसेगी दै दै तारी है ।
ग्वालन के संग रंग भली पिचकारी लियें जमुना के तोर ठाड़ी सामरौ बिहारी है ॥

इस प्रकार की उक्तियों में भगवानदत्तजी का काव्य उत्कृष्ट बन पड़ा है । “श्रमदान”
में कविता नहीं दीखती तथा “उद्बोधन” “क्रान्ति वन्दन” केवल गद्य में कही जाने वाली बात को
पद्य का आवरण भर दे सके हैं । पर जहाँ करुणा शौर्य और शृङ्गार में कवि का भावुक मन डूबा
है वहाँ उक्तियाँ आनन्द दायिनी बन पड़ी हैं । “करुण कथा” के कुछ अंश, भांसी की रानी तथा
“फाग अनुराग कौ” आदि रचनाएँ इसीलिए सुन्दर हैं ।

ब्रजभाषा काव्य को भिलाई की इस्पात की ओर ले जाने वाले कवि का यह प्रयास
स्तुत्य है ।



अन्तर्जनपदीय विषयक पत्र व्यवहार

पो० गरोठा (भाँसी)

३०—१०—६८

प्रिय श्री वृन्दावनदासजी,

कृपा पत्र और 'ब्रज भारती' मिल गई थी। कुछ ऐसा व्यस्त रहा कि शीघ्र उत्तर नहीं दे सका।

वर्माजी का लेख जागरण में दिया है। कतरन भेज रहा हूँ।

खत्री जी के पत्र की ओर मेरा ध्यान गया। ब्रज और बुन्देली में मेरे लिए कोई अन्तर नहीं। दोनों सगी बहनें हैं। किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती। और न अन्य मौसेरी बहनों की ही। सब का लेखा जोखा लेना है। यही उद्देश्य है। किसी को कोई भ्रम नहीं होना चाहिए।

बुन्देली का जिक्र इसलिए किया कि आज से २५ वर्ष पहिले उसके सम्बन्ध में बहुत काम हुआ। उसका इतिहास लिखा जाने को है। दुःख है लोगों को पता नहीं।

अथवा जिन्हें पता है वे अपनी संकुचित मनोवृत्ति के कारण उसका कोई उल्लेख नहीं करना चाहते। 'मधुकर' ने बड़ा काम किया। 'लोक वाक्ता' ने भी। बुन्देली-कोश पर लगभग २० हजार के खर्च हुआ। जिस ढंग से काम किया गया उसने अनेक डाक्टर नामधारी छात्रों को दिशा-ज्ञान कराया।

चौबेजी को लिखकर कृपया 'मधुकर' के सब अंक प्राप्त करने का यत्न करें यदि वे आपके पास न हों। उनसे, उस समय लोक साहित्य सम्बन्धी जो काम हुआ, उसका बहुत कुछ पता चलेगा। 'लोक वाक्ता' के सब अंक सुलभ नहीं। जो हैं सेवा में भिजवा दूँगा।

बुन्देली-कोश के लिए बहुत वैज्ञानिक ढंग से सामग्री इकट्ठी की गई। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् तथा ना० प्र० सभा का भी ध्यान आकृष्ट हुआ। उद्योग-धन्यों और खेती-बारी के भी शब्द इकट्ठे किये गये थे। चित्र भी बनवाये गये थे। स्वयं ओरछेश इस कार्य में विशेष रुचि लेते रहे। उन्होंने भी शब्दों का संग्रह किया। हम दोनों प्रति सप्ताह एक दिन इसी काम के लिए बैठते थे। उनके कुछ शब्द 'मधुकर' में मैंने छापे थे। बहुत से शोधकर्ता उस समय मां का दूध पीते होंगे। बाद में उस सामग्री से उन्हें कोई प्रेरणा यदि मिली तो अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण वे उसकी चर्चा नहीं करना चाहते। अथवा उस काम का कहना चाहिए उन्हें पता नहीं।

जान प्लाट्स या फैनन के कोश तो अब अप्राप्य हैं। उसके भी पहिले बहुत काम हुआ। मेरे सामने इस समय Duncan Forbes की सन् १८५७ की छपी हिन्दुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी रखी है। उसमें उन सब कोशों की सूची दी हुई है जो उसके पहिले बने। फैनन के कोश से भी अधिक महत्वपूर्ण Dr. Gilchrist की Hindi Moral Preceptor. 1821 Dr. Adam की हिन्दी डिक्शनरी १८२५ विलियम हन्टर की हिन्दुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी, १८०८ और Thompson की Hindi & English Dictionary 1846 हैं। पर वे हमारे लिए कुतूहल की ही चीजें हैं केवल ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन के लिए और प्रेरणा लेने के लिए कि कैसा काम वे विदेशी कर गये हमारी अपनी भाषाओं के सम्बन्ध में।

आज से छः साल पहले बुन्देली कहावत कोश यू० पी० सरकार ने छापा था। अलग रजिस्ट्री से उसकी एक प्रति सेवा में भिजवा रहा हूँ। उसके साथ स्व० वासुदेव शरणजी के एक पत्र की प्रतिलिपि है जिसमें इस कहावत कोश के विषय में उन्होंने मुझे लिखा।

प्रचार या आत्म विज्ञापन से मुझे बड़ी घृणा है। जीवित तो कुछ ठोस काम ही रहेगा यदि कर सका तो। सरकारी प्रकाशनों की बड़ी दुर्दशा होती है। यह किताब शायद कहीं समीक्षा के लिए भी नहीं भेजी गयी। आपका मन हो तो 'ब्रज भारती' में चर्चा कीजिए।

पुनश्चः सरस्वती के पिछले अंक में हिन्दुस्तानी कहावत की समीक्षा छपी है। उसमें बुन्देली-कोश का जिक्र चतुर्वेदी जी ने किया है।

वासुदेव शरण जी की बहुत याद आती है। वे होते तो अवश्य ही हमारे काम में बड़ी सहायता करते। और सब ठीक। जल्दी में लिख रहा हूँ। डाक बन्द होने को होगी।

—सप्रेम

कृष्णानन्द गुप्त

प्रतिलिपि

काशी विश्व विद्यालय

३०।५।६०

प्रिय श्रीकृष्णानन्दजी,

२७।५।६० का पत्र और 'बुन्देली कहावत कोश' पुस्तक की प्रति पाकर अति प्रसन्नता हुई। तीन सहस्र जनपदीय लोकोक्तियों का यह अपूर्व संग्रह सार्वजनिक स्वागत के योग्य है। निस्सन्देह आपके दीर्घकालीन सुनियोजित परिश्रम का यह मूर्त रूप है। मातृभाषा हिन्दी की यह आपकी महार्घ भेट है। इसे कई घंटों तक देखता रहा हूँ। प्रत्येक पृष्ठ पर बुद्धि के चोखे सूत्र और नए-नए शब्दों को देखकर आनन्द प्राप्त किया है। हिन्दी के जनपदीय भंडार की समृद्धि इससे स्फुट व्यक्त होती है। यदि हिमाचल से दक्षिण कोराल तक और जैसलमेर से लेकर मुंगेर तक इसी प्रकार के क्षेत्रीय लोकोक्ति संग्रह हम तैयार कर सकेंगे तो भाषा और प्रज्ञा के क्षेत्रों में आत्म-संस्कृति का पुष्कल रूप हम देख सकेंगे। इस प्रकार के आमाणक-संग्रह को देखने की साथ बहुत दिनों से मन में थी, वह आपके इस कोश को प्राप्तकर पूरी हुई।

कितनी ही लोकोक्तियों को जैसे चूसकर उनका रस लेता रहा हूँ।

अकल बिन पूत लठें गर से।

लरका बिन बऊ डेंगुर सी॥

इस कहावत को गुप्तजी के यहां १७ वर्ष पूर्व कुछ भेद से सुना था, पर उसका यह रूप अच्छा लगा।

'अगनौआ बतर पाऊँ तौ गेहूँ गाय बताऊँ।'

'अड़की कौ दूद खपरिया में खोवा'

'अथाई के लोग टिड़कना और नकटा नाऊ।'

'आँएँ तो गाँव की सुवासिन, पै चिदरती हैं।'

'जो हतिया पूँछ डुलावे, तौ पैसा पइली बिकावे।'

'बिगनन अँसुआ नई आऊत।'

सं० २०२५]

अन्तर्जनपदीय विषयक पत्र व्यवहार

इन कहावतों का ठेठ बुन्देली सौरभ मन को हर लेता है । इस कोश में तो ऐसी लोकोक्तियों के ठट्टे भरे हैं ।

बुन्देली भाषा के नए-नए शब्द देखकर तो मुँह में पानी भर आया कि बुन्देलखण्ड के किसी व्रती साहित्यिक को इस बोली का एक बढ़िया शब्द कोश भी बनाना चाहिए ।

हृतसार (हस्तिशाला, पृ० २४५), विगनन (वृक, पृ० २४४), गहन (सं० ग्रहणक, पृ० ३४८) जैसे टकसाली शब्दों की धात्री जनपदीय बोलियाँ ही हैं । कहावतों और अनजाने शब्दों के अर्थ साथ ही देकर आपने बहुत अच्छा किया । उससे पुस्तक पढ़ने में रस आ गया ।

ऐसे उत्तम कार्य की पूर्ति के लिये आपको बहुत बधाई । ईश्वर करे आपकी भुजा का बल और भी ऐसे ग्रन्थों की रचना का श्रेय प्राप्त करे ।

भवदीय—

वासुदेवशरण

अपने जीवन काल में अनेक भाषाओं के उद्भट विद्वान् डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने जनपदीय भाषाओं और उनमें निहित अतुल ज्ञान भण्डार के महत्व की जितनी प्रतिष्ठापना की उतनी किसी अन्य विद्वान् ने तो क्या किसी उच्चातिउच्च संस्था ने भी न की थी । उस महामनीषी द्वारा श्रीकृष्णानन्द गुप्त की पुस्तक 'बुन्देली कहावतों के कोश' की उपरोक्त शब्दों में सराहना श्री गुप्त की कृति की महनीयता और उपयोगिता को स्पष्ट रूप से सिद्ध करती है । गुप्तजी बुन्देली भाषा के कोश को भी हिन्दी संसार के आगे उतनी ही दक्षता और पूर्णता से प्रस्तुत करेंगे इसका हमें पूर्ण विश्वास है । कहने की आवश्यकता नहीं जनपदीय भाषाओं के सुन्दर कोशों निर्माण से ही एक वृहत् हिन्दी कोश की रचना का मार्ग प्रशस्त होगा । श्री गुप्त जनपदीय भाषाओं के अधिकारी विद्वान् हैं । हमें विश्वास है समस्त हिन्दी सेवा विद्वज्जन श्री गुप्त से उनके इस निर्माण कार्य में अपेक्षित सहयोग करेंगे ।

—संपादक



हमौर हठ—एक पारम्परिक वीर रचना

(डा० भगवान सहाय पचौरी एम० ए०, पी-एच० डी०,)

हिन्दी साहित्य में वीर, रौद्र तथा भयानक रसों को प्रमुखतम स्थान मिला है। हिन्दी साहित्य का आविर्भाव युग ही वीररस को लेकर हुआ और इसी कारण वह वीरगाथा काल की संज्ञा से अभिहित हुआ। चन्द वरदायी 'पृथ्वीराज रासो' साहित्य का प्रथम वीररस ग्रन्थ है, जिसकी रचना कवि ने स्वयं रणक्षेत्र में तलवार की नौक को रक्त की स्याही में डुबो कर की यह एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी वीरकाव्य था जो कालान्तर में बीसलदेव रासो, खुमान रासो, हमौर रासो, आल्ह खंड, जयचन्द्र प्रकाश, बीसलदेव रासो, रण मल्ल छन्द की वीर रस परम्परा का पोषक बना।

वारह बरस लौं कूकर जीऐं, और तेरह लौं जियें सियार।

वरिस अठारह छत्री जोएं, आगे जीवन को धिक्कार॥

आल्ह खंड की इन दो पंक्तियों में जननी जन्मभूमि पर मर मिटने वालों के लिए कोटि-कोटि तोपों की शक्ति भरी है। वीर रौद्र और भयानक की यह त्रिवेणी भारतवर्ष के पूरे इतिहास को ओजोदीप्त करती रही है। मध्यकाल यद्यपि भक्ति और शृङ्गार के साहित्य की देन के लिए प्रसिद्ध है, पर इस दीर्घ कालीन साहित्य में वीररस के उत्कृष्ट रूप में यत्रतत्र वर्शन हुए हैं। तुलसी में वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ। शृङ्गार काल में भूषण ने वीररस की मशाल को ऊँचा रखा। रीति युग में "चौथे पन जाइय नृप कानन" के अनुसार प्रायः प्रत्येक शृङ्गारी कवि तुलसी, सूर, कबीर के मार्ग पर चला। पर इस बीच में भी तलवारों की चमक काव्य में परिलक्षित हुई। पर वीर काव्यों का प्राण जैसे लुप्त था। ऊहात्मक काव्य का सृजन कवियों का कर्म बन गया था जिसमें विविध शस्त्रास्त्रों की गणना को छोड़कर मूल वीररस दुर्लभ रहा। इस युग में प्रबन्ध काव्यों की रचना कम हुई उसमें भी वीर काव्य प्रबन्ध शून्य के बराबर रचे गये। रीति काव्य के अवसान पर वीर रस के गायक केवल दो कवि ही हमें दृष्टि गोचर होते हैं पहले ग्वाल, दूसरे चन्द्र शेखर बाजपेयी। यों कविवर पद्माकर ने भी वीर रस पान किया पर नाराजसा की ही मात्रा उसमें अधिक रही। ऐतिहासिक वीरों का गुणगान जहाँ काव्य विषय बना वहाँ महाकवि ग्वाल ने ऐतिहासिक तत्व का पूर्ण निर्वाह किया।

यह जानकर काव्य रसिकों को अत्यन्त हर्ष होगा कि ग्वाल जैसे उत्तम शृङ्गारी कवि ने इतिहास की इतिवृत्तात्मकता का अभीष्ट निर्वाह करते हुए दो प्रबन्ध काव्यों की रचना की थी। हमौरहठ की रचना सं० १८८३ वि० और विजय विनोद की सं० १९०१ वि० में की। ग्वाल के हमौरहठ के २० वर्ष उपरान्त चन्द्र शेखर बाजपेयी ने पटियाला नरेश के आदेश पर हमौर हठ लिखा। हमौर की कथा यों पहले काव्यों में उल्लिखित मिलती है। पर इतिहास के तथ्यों की तोड़ मरोड़ के बिना ग्वाल ने यह काव्य लिखा। महाराजा रणजीत सिंह राष्ट्रीय पुरुष थे। उनके यहाँ आये एक शरणागत की रक्षा करने हेतु ही कवि ने इस ग्रन्थ द्वारा उनकी प्रेरणा दी और

कवि अपने उद्देश्य में सफल भी हुआ। कवि की प्रतिभा की यह विजय थी। दिल्ली के सुल्तान अला-उद्दीन के शत्रु मीर महिमा मंगोल को शरण देने के कारण रणथम्भौर के प्रतापी शूरवीर राजा हम्मीर देव को सुल्तान का कोप भाजन बनना पड़ा। हम्मीर देव ने प्राणों की आहुति देकर भी शरणागत की प्राण रक्षा की। इतिहास साक्षी है कि वीरता में राजपूतों से कोई महान् शत्रु टक्कर नहीं ले सका। कूटरीति के अस्त्र द्वारा ही रणथम्भौर का पतन हुआ और अलाउद्दीन की भौतिक विजय हुई पर पारमार्थिक यश का भागी हम्मीर देव हुआ। इस ऐतिहासिक कथा का निर्वाह ग्वाल ने बड़ी सतर्कता, विदग्धता, चमत्कार और कौशल के साथ किया है। राष्ट्रीय चरित्र का चुनाव कवि का बुद्धि कौशल कहा जायगा। ध्वन्यात्मकता के साथ वीररस का परिपाक कितने कवि-कौशल की अपेक्षा रखता है, यह ग्वाल जैसे सिद्ध हस्त कवि के लिए कठिन न था, पर ऐतिहासिक कथानकों को न झुठलाना कवि के लिए कठिन हो होता है। कल्पना की उड़ान के साथ यथार्थ उड़ जाता है और रह जाती है केवल ऊहा। यों ऊहा का वर्णनों में ग्वाल ने सर्वथा परित्याग नहीं किया, पर कोरी कल्पना का भी अवलम्बन नहीं लिया। हम्मीर देव की सेना समरांगण में पहुँचती है। ग्वाल का ओजदर्पपूर्ण यथार्थ वादी वीर चित्रण देखते ही बनता है :—

“कूँच किये डेरा महाराज श्री हमीर देव,

धेरा कियौ जाय बादशाह कौ उमड़ि कें।

छूट गये छक्के छिति पालन के छिति छोर,

फूट गये सेसफन, भूमि पड़ी धड़ि कें॥

ग्वाल कवि वीरन के फरकत है भुजदंड,

धड़ कें अरिद हिय, चहूं चक्क चढ़ि कें।

कड़ कि कड़ कि दाँत कौल के कड़ाके भरें,

तड़ कि तड़ कि पीठ कच्छप की तड़ि क॥”

ग्वाल में आपको भूषण के दर्शन करने हों तो देखिये :—

“काई तेग काटत सुभट वीर योधा जब,

जोति की जमातें जहाँ फ़िलकन हैं भुक्क भुक्क।

ताकत ही तुरक मुरकि भजें पाछें किते,

आगें कीं सिधायें ते चबाय डारें बुक्क लुक्क॥

ग्वाल कवि कहत मानें बल बख़तर की,

तीर की न मानें, नहीं मानें जिती रुक्क रुक्क।

सीस गजराजन के गरकें गरूर भरे,

फरकें धरा पै, धरा घरकत है धुक्क धुक्क॥”

विजय विनोद कवि के प्रौढ़ काल की रचना है। यह वीर काव्य ग्वाल ने अपने दरबारी मित्र जल्हा पण्डित की इच्छा से लिखा था, जो उनके आश्रयदाता शेरसिंह के मन्त्री ध्यानसिंह के मित्र थे। सिख इतिहास से सम्बन्धित यह सर्वोत्कृष्ट वीर काव्य है। इस काव्य में ऐतिहासिकता

का कवि ने इतना निर्वाह किया है, कि कहीं भी तथ्यों की तोड़ मरोड़ ने कथ्य को भुठलाया नहीं है। कवि ने ग्रन्थ में स्वीकार किया है कि : -

श्री पण्डित को हुकुम सुनि, उपज्यौ हिय में मोद ।

तब हबाल जाच्यौ सकल राच्यौ विजय विनोद ॥

कवि ने समस्त उपलब्ध इतिहासों का अध्ययन करके विजय विनोद की रचना की। उसमें राजा ध्यानसिंह को राजा का पद देकर मुख्य मन्त्री बनाने के आनन्दोत्सव से लेकर बालक महाराज दलीपसिंह के सिंहासनारूढ़ होने तक के कथानक विशद रूप में वर्णन है। काव्य में सिख इतिहास के उस गृह युद्ध की शृङ्खला का कथन है जो रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरान्त लाहौर दरबार की समस्त शानशौकत को ले बैठी निस्सन्देह आश्रयदाताओं के इतिहास कथन में कवि को बड़ी सतर्कता से काम लेना पड़ा होगा क्योंकि एक ओर आश्रयदाता की कृपा भी रहनी है साथ ही तथ्यों का निर्वाह भी होना है। अतः कवि ने बड़े चातुर्य से ऐसे स्थलों पर काम लिया है। राजा खड्गसिंह का दाहसंस्कार करके कुँवर नौनिहाल सिंह, आये। किले के द्वार में प्रवेश करते ही किसी षडयन्त्रकारी का तीर उनके प्राण हनन करने को चलता है। कवि इस स्थल पर बड़ी बारीकी से काम लेता है। कुँवर तीर से नहीं छज्जे के गिरने से मरे। तीर चला था पर छज्जा कवि ने मान हानि के डर से गिरा दिया। इस प्रकार वे लिखते हैं कि जो कुछ लेख है वही लिखा गया है कि कोई कवि को दोष न दें।

इस ग्रन्थ में कथानक सभी युद्ध के हैं। अतः कवि को वीररस वर्णन का अच्छा अवसर मिला है। ४८७ छन्दों का वृहत् प्रबन्ध है। कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, अमृतध्वनि, प्रमानिका, मुजंग प्रयात, शङ्खनारी, पदरी, मल्लिक, छन्दों में विशद विषय प्रतिपादन हुआ है।

सारांश यह कि ग्वाल न केवल शृंगार के ही सम्राट थे बल्कि वीररस के उद्रेक में भी निष्णात थे।



मीरा का स्वप्न

(श्री ब्रजनन्दन गुप्त 'ब्रजेश' राठ हमीरपुर)

राजा भोज राज की नव बधू ने पूनम की अर्द्ध-रात्रि को एक अनूठा स्वप्न देखा :—वह स्वप्न में कह रही थी ।

“मोहन ! मुझे अपनी चरण-चाकरी में रखो ।” ब्रज की असंख्य गोपियों में, मैं भी एक हूँ, यह तुम भूल जाते हो, मुझे यहाँ कहाँ ला पटका । कुबेर का खजाना प्रेम-कण का मूल्य नहीं चुका सकता । प्रेम, प्रेम है । वासना विश्व का विनाश है । प्रेम सृष्टि का बीज तुम्हारा अविनाशी रूप । क्या तुम्हारी मुरली का शाश्वत सन्देश यही नहीं है ?”

“बस करो, मीरा तुम मेरी सर्वस्व हो ! नहीं ! नहीं ! तुम्हारा प्रेम ही मेरा सर्वस्व है । जिसके बल पर मैं अनादि काल से अब तक जाने कितने खेल खेल चुका हूँ । क्या तुम नहीं जानती मेरे ही बनाये खिलौने अपने को खिलाड़ी और हमें-तुम्हें खिलौना—हमारे तुम्हारे अमल अटल सम्बन्ध को वासना का बगीचा समझ बैठे हैं । उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि द्वापर का ‘कन्हैया’ आज भी उनकी जीवन-शक्ति का अप्रत्यक्ष रूप से आकर्षण केन्द्र बना हुआ है । अपनी मोहिनी शक्ति को पुनः प्रकट करने के लिए तुम्हारा इस राज-वंश में आना अनिवार्य समझा । हाँ अब मैं चला । सजग रहना । प्रातः काल से हमारा खेल प्रारम्भ होगा । तुम सचेत रहना अपना पाट पूरा करने में ।

स्वप्न टूट गया :—

राजमहल का वैभव मोहन के प्रेम की उन्मादिनी की आँखों में चुभ रहा था । सहसा उसका मुख-मण्डल चमका । ऐसा लगा जैसे उसने जीवन की सम्पूर्णता को आँक लिया है । वह मन ही मन गुन गुनाने लगी ।

“कृष्ण ओह कृष्ण ! वह भाँकी जिससे संसार में सौन्दर्य की सृष्टि हुई । जिससे तुम स्वयं मोहित हो, तुम्हारी वह भाँकी पाने के लिये । नहीं नहीं ! तुम्हें रहने के लिये अपने हृदय भवन को पावन स्नेह सुरभि से सुरभित करूँगी ।”

राज्य पथ से कुछ दूरी पर साधु मण्डली से घिरी भक्ति रस में ओत-प्रोत मीरा का स्वर सुनाई पड़ा :—

“मेरे तो गिरिधर गुपाल ———”

स्वप्न सच्चा था, पूरा हुआ ।



- १-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।
- २-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।
- ३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।
- ४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैंक में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, व्याज दूसरे बैंकों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।



जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

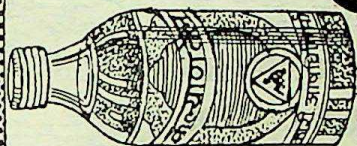


व्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत वार्षिक
कौल डिपोजिट पर	३।।।	" "
६ माह की अमानत पर	५।।	" "
१ साल की अमानत पर	६।	" "
२ साल की अमानत पर	६।।	" "
३ साल की अमानत पर	६।।।	" "
४ साल की अमानत पर	७	" "
५ साल की अमानत पर	७।	" "
७ साल की अमानत पर	७।।	" "

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

कल्याण तैल



गठियाका दर्द
शरीरकी जकडन
जोड़ों में दर्द
पसली के दर्द
कमर में दर्द को
आराम पहुंचाता है



निर्माता:-

सहकारी औषधि निर्माणशाला
रानीखेत उप्र.

अपनी सम्पूर्ण वचत आज ही उत्तर प्रदेश कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड प्रधान कार्यालय लखनऊ में

जमा कर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कीजिये

उक्त बैंक सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी साभेदारी तथा
बैंकिंग संस्थान अधिनियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा
निरीक्षित एक मात्र एवं विश्वसनीय बैंकिंग संस्था है

शाखाएँ — आगरा, अल्मोड़ा, बरेली, फैजाबाद, डी० ए० वी० कालेज कानपुर,
गोंडा, पीलीभीत, कानपुर, रामपुर, सीतापुर, वाराणसी।

क्षेत्रीय कार्यालय — आगरा, गोरखपुर, कानपुर, बरेली।

हमारी विशेषताएँ

- १—राज्य की समस्त कृषि योजनाओं के लिए जिला एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना।
 - २—प्रत्येक प्रकार की बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना।
 - ३—अल्प सामयिक एवं मियादी अमानतें आकर्षक दरों पर स्वीकार करना।
- आप भी राष्ट्र निर्माण योजनाओं की पूर्ति, उसकी समृद्धि के निमित्त अपना धन लगाकर सहयोग प्रदान कर राष्ट्र निर्माण में हाथ बटाएँ।

अन्य जानकारी

क्षेत्रीय अधिकारी, शाखा प्रबन्धक या मुख्य कार्यालय से प्राप्त कीजिये

गत ५ वर्षों में बैंक की प्रगति के कुछ आंकड़े

	३०-६-६०	३०-६-६५
१—पूँजी	२५४'७६ लाख	५३८'७६ लाख
२—अमानतें	७४७'४६ लाख	२०६०'०८ लाख
३—सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया गया	१३०५'६५ लाख	३३३६'२५ लाख
४—लाभ	१६'०५ लाख	३७'०२ लाख

ए० पी० सिंह

आई० ए० एस०

अध्यक्ष

मथुरा सिंह

उपाध्यक्ष

धीर सिंह वर्मा

सामान्य प्रबन्धक

बाबू वृन्दावनदास अध्यक्ष ब्रज साहित्य मण्डल, के लिए राष्ट्रीय प्रेस,
डेम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित तथा प्रकाशित।

ब्रज भारती

फाल्गुन सं० २०२५ वि०



सम्पादक :

श्री धृन्दावन दास

बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २२]

वार्षिक मूल्य ४)

[अंक ४

* अनुक्रमणिका *



क्र० सं०	लेख	लेखक	पृष्ठ सं०
१-संपादकीय		... श्री वृन्दावनदास	१
२-बुन्देली सैरे		... श्री रामस्वरूप शास्त्री 'अमर'	
३-ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास (एक संक्षिप्त समीक्षा)		... डा० भगवान सहाय पचौरी पी. एच. डी	६
४-प्राचीन अर्वाचीन तीर्थ स्थानों के बीच		... श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी (जयपुर)	६
५-'विहारी रत्नाकर' में शब्दार्थ संबंधी भूलें		... श्री रामस्वरूप विशारद	१०
६-शारद (कविता)		... श्री जगदीशचन्द्र कौशल एम. ए.	१७
७-गोविन्दस्वामी (अष्टछाप) का निधन काल		... श्री हरिप्रसाद नायक	१८
८-विहारी की भक्तिभावना		... प्रो० सुरेशचन्द्र दुवे एम. ए.	२०
९-ग्रन्थालोचन		... श्री राजेन्द्र रंजन एम. ए.	३३
१०-जब लों विरहा को बयार बली (कविता)		... श्री ब्रजनन्दन 'ब्रजेश'	३६
११-भारत पर यूनानी आक्रमण क्यों और कैसे		... श्री वृन्दावनदास	३८
१२-स्व० पालीवाल जी के प्रति (कविता)		... श्री भगवानदत्त चतुर्वेदी	४०



ब्रज भारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २२]

मथुरा फाल्गुन सं० २०२५

[अङ्क ४]

सम्पादकीय

गतांक के प्रकाशन के उपरान्त इस मध्यान्तर की महत्वपूर्ण साहित्यिक गतिविधियों का उल्लेख वांछनीय ही नहीं आवश्यक भी है। ब्रजभारती का मार्गशीर्ष अंक कुछ देर से निकला था परन्तु प्रस्तुत फाल्गुन अङ्क अपने ठीक समय पर निकल रहा है।

श्रीमती साजानोवा का आगमन—

सुप्रसिद्ध हिन्दी विदुषी रूसी महिला श्रीमती साजानोवा रूस के किसी विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग की अध्यक्ष हैं। ब्रजभाषा साहित्य और विशेष कर सूर पर अन्वेषण करने के भारत आई हुई हैं। सूर के वात्सल्य-रस पर उनका प्रगाढ़ अध्ययन स्तुत्य है। अपनी यात्रा के क्रम में वे मथुरा भी पधारी थीं। उनका एक छोटा सा कार्यक्रम हमारे निवास-स्थान पर भी था।

हमने तो उनसे केवल यही निवेदन किया कि हिन्दी सरल है, सुबोध है, साहित्य की दृष्टि से वह अब शक्तिशालिनी भी है, उसमें वे सब गुण विद्यमान हैं जो अँग्रेजी में हैं, फिर क्यों न यह भाषा उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त करे जिस प्रकार कि अँग्रेजी ने की है? उन्होंने हमारे विचारों से सहमति प्रकट करते हुए कहा कि वे सतत हिन्दी-प्रचार में संलग्न हैं। उनकी यह बात सुन कर कि वे तो इस कार्य का वेतन ही पाती हैं हम उनकी कृतव्य परायणता की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे और लगे उनकी हिन्दी-निष्ठा के प्रति उन्हें अनेक धन्यवाद देने। श्रीमती साजानोवा के सम्मान में अन्यत्र मथुरा तथा आगरा में कई गोष्ठियाँ आयोजित की गई थी जिनका विस्तृत विवरण समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है।

डा० भगवानसहाय पचौरी का सम्मान—

साहित्य संस्थान की ओर से महाकवि ग्वाल की जयन्ती के साथ डा० भगवानसहाय पचौरी के सम्मान का आयोजन सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री प्रभुदयाल मीतल के निवास स्थान पर

किया गया। सभा की अध्यक्षता आचार्य जवाहर लाल चतुर्वेदी ने की। गोष्ठी का समारम्भ करते हुए श्री प्रभुदयाल मीतल ने कुछ रोचक संस्मरण आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा और स्व० पंडित नवनीतलाल चतुर्वेदी की उस सहायता के सम्बन्ध में सुनाये जो उन्हें ग्वाल के जीवन वृत्त तथा उनकी रचनाओं का संकलन करने में मिली थी। वास्तव में ग्वाल के व्यक्तित्व पर सर्व प्रथम मीतल जी ने ही प्रकाश डाला था तथा महाकवि पर उन्होंने एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी थी। तदुपरान्त अनेक वक्ताओं ने पचौरी जी के ग्वाल पर उस शोध प्रबन्ध की भूरि भूरि प्रशंसा की जिस पर कि उनको डाक्टरेट प्राप्त हुई है। सामान्यतया एक शोध-प्रबन्ध पर किये हुए प्रयास से पचौरी जी का कार्य सर्वथा उच्चस्तरीय था। उन्होंने जिस निष्ठा, श्रम और मनोयोग से अपने विषय का अध्ययन, अन्वेषण, विश्लेषण आदि किया वह सामान्यतया एक शोध प्रबन्ध पर किये हुए काम से कहीं अधिक था। उन्होंने तो ग्वाल से तदात्म्य सा कर लिया था और यही कारण है कि वे एक ऐसा शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर सके जिसमें विषय का पूर्णाङ्गी अध्ययन तथा सर्वाङ्गपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। पचौरी जी की भाषा ओजस्वी एवं संस्कृतनिष्ठ है। मीतलजी के निवास-स्थान पर एक सरस वसन्तगोष्ठी का भी आयोजन हुआ था।

श्री अमृतलाल जी चतुर्वेदी का अभिनन्दन—

ब्रजभाषा के रस सिद्ध कवि श्री अमृत लाल जी चतुर्वेदी का नागरिक अभिनन्दन माथुर चतुर्वेद सभा आगरा द्वारा आयोजित किया गया जिसके संयोजक श्री पृथ्वीनाथ जी चतुर्वेदी थे। समारोह की अध्यक्षता इन पंक्तियों के लेखक ने की तथा उद्घाटन सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री प्रभुदयाल मीतल ने। अनेक वक्ताओं ने जिनमें सर्व श्री जस्पत राय कपूर, लक्ष्मीनारायण बंसल, जगन्नाथ लहरी, हृषीकेश चतुर्वेदी, हरिश्चन्द्र देव चातक, प्रतापनारायण अग्रवाल, रमेशचन्द्र दुबे, तोताराम पंकज, छेदालाल चतुर्वेदी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं चतुर्वेदी जी के काव्य की सरसता, ओजस्विता और माधुर्य की सराहना की। कितने ही वक्ताओं ने उन्हें स्व० सत्यनारायण कविरत्न के बाद ब्रजभाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया। श्रद्धेय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी का चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सुन्दर लेख, वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण, वा० प्रतापनारायण अग्रवाल के उद्यान के वृहदाकार गुलाबों के पुष्पहार और श्री अमृतलाल चतुर्वेदी द्वारा कविता में ही आभार प्रदर्शन समारोह की विशेषतायें ही कही जाँयगी। इन वयोवृद्ध युगदृष्टा कवि के पास लगभग ५००० सुन्दर स्वरचित कवितायें सुरक्षित हैं। वे हिन्दी के साहित्य की निधियाँ हैं। उनके प्रकाशन की व्यवस्था तो होनी ही चाहिये।

मथुरा जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन—

इसमें तो संशय ही नहीं कि हिन्दी अब सामर्थ्यशालिनी होती जा रही है। उसमें कुछ वर्षों से प्रभूत साहित्य-सृजन हुआ है। संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधियों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। वे महान् ग्रन्थ अब हिन्दी में पठन पाठन के लिये सुलभ हो चुके हैं। अनेक बहुमूल्य कोशों का न केवल निर्माण अगितु प्रकाशन भी हो चुका है। इस दिशा में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि के प्रयत्न सराहनीय हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, विज्ञान, दर्शन आदि अनेक विषयों की विभिन्न विधाओं पर विपुल सामग्री हिन्दी-ग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत हुई है। राजनीतिक बाधाएँ कुछ भी हों और कितनी

भी भीषण क्यों न हों हिन्दी की लोकप्रियता तो बढ़ी ही है और ऐसा लगता है बढ़ती ही रहेगी चाहे कोई वर्ग इससे नाराज हो अथवा असंतुष्ट । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी हिन्दी के प्रति रुचि में वृद्धि हुई है ।

परन्तु एक बात खलती है और वह है हिन्दी-मंच की निर्बलता और सामर्थ्य-विहीनता । हिन्दी की संस्थाओं का बुरा हाल है । इसके लिये जनता और सरकार दोनों ही समान रूप से दोषी हैं । हिन्दी के लिये न तो समाज की दानशीलता में ही कोई स्थान है और न सरकार ही हिन्दी के लिये मुक्तहस्त से सहायता प्रदान करने को उत्सुक है । अर्थाभाव में अनेक उपयोगी संस्थायें लड़खड़ा रही हैं । हम आशा करते हैं कि समाज के धनी मानी लोग हिन्दी के प्रति अपने दायित्व का अनुभव करते हुए अपनी वदान्यता को एक नई दिशा देकर हिन्दी के हितसंवर्द्धन में पीछे न रहेंगे । राष्ट्रभाषा की सेवा एक अक्षय पुण्य-कार्य है । संसार में जितने कृत्य और अनुष्ठान पुण्य की परिभाषा में आते हैं राष्ट्रभाषा-सेवा को हम उन सब में सर्वोच्च स्थान देने में तनिक भी संकोच नहीं करते ।

उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस प्रदेश की एक महान् हिन्दी संस्था है । विगत कुछ वर्षों में इस संस्था ने हिन्दी-प्रचार प्रसार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । हिन्दी के अनेक लब्धप्रतिष्ठ धुरन्धर विद्वानों का इसे सहयोग और मार्गदर्शन प्राप्त रहा है । इस राज्य के हिन्दी-प्रेमी जनों का यह एक पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि वे इस संस्था को अधिक गतिशील बनाने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें जिससे यह संस्था हिन्दी की अधिकाधिक सेवा करने में समर्थ हो सके । जनपद-सम्मेलनों की स्थापना इस दिशा में एक प्रमुख और महत्वपूर्ण कार्य है ।

अभी हाल ही में मथुरा में जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हो चुकी है । आगरा के प्रमुख हिन्दी-सेवियों से हमारी बात हो चुकी है । वे बहुत शीघ्र आगरा में भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन की आगरा जनपद शाखा की स्थापना कर रहे हैं । हम बहुत शीघ्र एटा, इटावा और मैनपुरी के साहित्य सेवियों से भी सम्पर्क स्थापित कर वहाँ भी जनपद सम्मेलनों की स्थापना के लिये प्रयत्न करेंगे । आशा है यह कार्य अब बहुत शीघ्र संपन्न हो जायगा । हमें विश्वास है हिन्दी प्रेमी जन हमसे सहमत होंगे कि किसी भी रचनात्मक अथवा आन्दोलनात्मक कार्य के लिये एक संस्था का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

पद्मविभूषण डा० वृन्दावनलाल वर्मा का देहावसान—

श्रद्धेय वर्मा जी का निधन हिन्दी जगत की एक बहुत ही दुःखद दुर्घटना है । प्रातःस्मरणीय डा० वर्मा से अनेक लेखकों को प्रोत्साहन मिला था । वे छुटभट्टियों का साहित्यिक पोषण करते थे । कोई साहित्यिक उनके द्वार से विमुख लौट कर नहीं आया । उनका निवास-स्थान साहित्यिकों का तीर्थ स्थान था । वे अपने स्वास्थ्य को व्यायाम आदि अनेक प्रक्रियाओं से ठीक रखते थे और यही कारण है कि अपने दीर्घ जीवन में उन्होंने कभी साहित्य-साधना को न छोड़ा । वे आदर्शमय जीवन व्यतीत करते थे । दलगत राजनीति उन्हें पसन्द न थी । उनका सर्वत्र बड़ा मान था । हम मण्डल और ब्रज भारती परिवार की ओर से जनके पुत्र और पारिवारिक जनों के प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं ।

ब्रज अभिनन्दन ग्रन्थ—

श्रदेय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ब्रजभूमि के पुनर्निर्माण की बात सदैव सोचते रहते हैं। उन्होंने अभी कुछ दिनों के भीतर ही कई लेख समाचार-पत्रों में इस विषय पर दिये हैं उन सब में उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत लेख बड़ा महत्वपूर्ण है। उन्होंने उस पर अनेक विद्वानों से अपना मत प्रकट करने का आह्वान भी किया है। उनकी आज्ञा का पालन कर हमने भी उस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं और तत्सम्बन्धी लेख समाचारों में प्रकाशित हो चुका है। हमारी इच्छा थी कि उन दोनों लेखों को ब्रज भारती में प्रकाशित कर देते परन्तु इस अङ्क में कुछ लेखों का कलेवर अप्रत्याशित रूप से बड़ा हो जाने के कारण हम उन्हें स्थानाभाव से प्रकाशित न कर सके। अब हम उन्हें आगामी अङ्क में अवश्य प्रकाशित कर देंगे।

अन्तर्जनपदीय योजना सम्बन्धी हमें एक महत्वपूर्ण लेख इस विषय के धुरन्धर विद्वान् डा० श्रम्बाप्रसाद जी सुमन से भी प्राप्त हुआ है। कुछ देरी से प्राप्त होने के कारण हमें खेद है उसे हम इसी अङ्क में प्रकाशित न कर सके। आगामी अङ्क में वह लेख भी प्रकाशित होगा।

—बुन्दालनदास

बुन्देली-सैरे

[श्री रामस्वरूप शास्त्री 'अमर' पुराणेतिहासकार्य तालबेहट (भरौसी)]

सैर-सपाटे के “सैरे” और बुन्देली भाषा के “सैरे” भी मन को तनिक में आकृष्ट कर लेते हैं। इन सैरों को जब ‘डण्डा-साँवरी’ के साथ पुरुष और मधुर-स्वर के साथ, चाराघास काट कर आती हुई नारियाँ गाती हैं; तब ऐसा प्रतीत होता है कि—मानो आकाश से घरा पर किन्नर और किन्नरियाँ; उतर कर गा रही हों? इन्हीं गीतों की माधुरी पर मुग्ध हुए भगवान् श्रीकृष्ण जी ने ‘वेदनां सामवेदोऽस्मि’ कह कर शान्ति पाई है। बुन्देली-सैरे प्रायः ग्रामीण नर-नारियों के पास रखी हुई लोक-साहित्य की धरोहर है? जिसे आजकल का पढ़ा-लिखा समाज; कुछ अपेक्षा की दृष्टि से देखने लगा है। खेतों पर निराई करते हुए और चारा घास काट कर घर की ओर आते हुए नारियों के झुण्ड गाते हैं। लीजिये, एक सुन्दर सैरे की बानगी देखिये—

अब सुमरन करौं कारीं बदरिया ! तो में भरे दरयाव ।

नेक बरस जा अरे ! जई देश में, मोरे स्वामी छोर धरें हथियार ॥

काये खौं कन्था ! अब लगुनै लई ? काये खौं रचे बियाव ।
जब दिन आये हाँसी खेल के, कन्था ! मरन चले परदेश ॥
अब उतरी नई तेल की फरियाँ, नां छूटे हरद के दाग ।
हाथ के कंकन अब छूटे नई, स्वामी मरन चले परदेश ॥
सुअरी खों दै हौं छेरी बोकरा, पुरवैयाँ खों मद को धार ।
नैक बरस जा अरे ! मोरे गाँव में, मोरे स्वामी छोड़ धरै हथियार ॥

उपरोक्त सैरे नामक गीत में एक सूर-वीर की युवती-प्रिया, अपने प्राण-प्रिय के लड़ाई लड़ने जाने पर व्यथित हो, काले बादलों को और अपने मन के मनोरथों को दरसाती हुई मनोगत भावों को व्यक्त करती है । वह कहती है कि—यदि सुअरी की हवा चल जावे तो मैं बकरा-बकरी चढ़ा दूँगी तथा पुरवैया हवा चल जावे तो मद की धार चढ़ा दूँगी । क्योंकि पानी यदि इस गाँव में मेरे यहाँ बरस जावे, तो मेरे स्वामी हथियार उतार कर घर रह जायेगे ? कितनी मौलिक-मनोभावना इन लौकिक-सैरे गीतों में निहित है ? अब एक बुन्देली गीत का मिठास देखिये । विवाह के उपरान्त द्विरागमन की विदा के हेतु लड़की (वधू) के लिवौआ गये हैं । अक्षयतृतीया (अखती) का त्यौहार है । लड़की अपनी सखी-सहेलियों से कहती है कि—

अखती खेलन कैसे जाऊँ बरतरैं मेलै लिवौआ ?
मेलै लिवौआ ? मेलै चलोआ ? अखती खेलन कैसे जाऊँरी ।
पेले लिवौआ आये बमनां के, बमनां के संगेनां जाऊँरी ॥बरतरै०
दूजे लिवौआ नौआ के आये, नौआ के संग कैसे जाऊँरी ॥बरतरै०
तीजें लिवौआ, मोरे ससुरा जौ आये, ससुरा के संगै न जाऊँरी ॥बरतरै०
चौथे लिवौआ मोरे जेठा जू आये, जेठा के संग कैसे जाऊँरी ॥बरतरै०
पाँचवें लिवौआ मोरे देवरा सोऊ आये, देवरा के संगै न जाऊँरी ॥बरतरै०
छठवें लिवौआ मोरे ननदेऊ जू आये, ननदोऊ के संग कैसे जाऊँरी ॥बरतरै०
सातवें लिवौआ मारे राजाजू आये, सैयाँ के संग चली जाऊँरी ॥बरतरै०



ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास

एक संक्षिप्त समीक्षा

(डा० भगवान सहाय पचौरी पी. एच. डी., मथुरा)

किसी उर्दू शायर का कथन कि —

हजारों साल बुल-बुल अपनी बेनूरी पे रोती है ।

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा ॥

श्री प्रभुदयाल मीतल के इतिहासकार पर बावन तोले पाव रत्ती सटीक उतरता है । यों अब तक उनकी साहित्यिक देन हिन्दी जगत को अति ही श्लाघनीय रही है, परन्तु 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' और 'ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास' सम्पूर्ण करके उन्होंने जो मानक स्थापित किया है, उससे न केवल उनका नाम अमर रहेगा, बल्कि युग-युग तक भारतीय संस्कृति और भारतीय सम्यता उनकी चिर श्रुती रहेगी । ब्रज के धर्म और सम्प्रदायों पर भारतीय ऋषियों, मुनियों, साधकों, आराधकों, इतिहासकारों, चिन्तकों और मनीषियों ने इतना लिखा है कि एक जीवन में उसका अवलोकित भी किया जाना कठिन है । उसका एकत्र किया जाना तो एक क्लिष्ट कल्पना ही थी । परन्तु किमसम्भवः साधकानाम् । पंजाब में एक पटियाला नरेश ने नौ कवियों द्वारा कई वर्षों में महाभारत का अनुवाद कराया था । नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने एक बहुत बड़ी विद्वत्सभा द्वारा शब्द सागर का प्रणयन कराया, खोज रिपोर्टें तैयार कराई आदि ।^२ यदि अकेले ब्रज के धर्म सम्प्रदायों के इतिहास का आकलन-संकलन ही कराने के लिये विद्वानों की एक वैतनिक समिति नियुक्ति की जाती, तब भी यह कार्य समयसाध्य, व्यय साध्य और अति दुरुह सिद्ध होता । इसके विश्लेषण-संश्लेषण और लेखन की तो बात ही दूर है । 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' नामक दीर्घकाय और मूल्यवान् ग्रन्थ के प्रणयन एवं प्रकाशन पर उत्तर प्रदेश के राज्यपान महामहिं श्री विश्वनाथ दास, भारत के उप प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई, 'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादक पं० श्री नारायण चतुर्वेदी, डा० विजयेन्द्र स्नातक आदि देश के गणमान्य शीर्षस्थ विद्वानों ने श्री मीतल जी का जो अभिनन्दन सन् १९६७ ई० में किया था, उनके हस्ताक्षरों की मति अभी गीती ही थी कि श्री मीतल ने यह दूसरा वृहत्काय ग्रन्थ प्रस्तुत करके हिन्दी और ब्रज के धार्मिक और साहित्यिक जगत को आश्चर्य चकित सा कर दिया है । यही नहीं कदाचित् महापंडित राहुन सांक्रुत्यायन एवं डा० वामुदेव शरण अग्रवाल की दिवंगत आत्माओं को महान् परितोष प्राप्त हुआ होगा । मेरा आलोचक यों नाराजंसा परम्परा का कभी अनुयायी नहीं रहा, किन्तु चमत्कार को नमस्कार करना सामान्य विवशता है और शायद प्रत्येक ईमानदार और गुणग्राही भद्रजन इस विषय में मुझसे सहमत होगा । ऐसे अद्वितीय कार्यों की

१. ले० प्रभुदयाल मीतल, प्र० नेशनल पब्लिशिंग हाउस २३५, अंसारी रोड दरिया गंज दिल्ली के लिये साहित्य संस्थान, मथुरा मूल्य ३५ रु०

शुभांश सा करना अपना ही गौरव बढ़ाना है और मुझे यह गौरव प्राप्त है कि मीतल जी के प्रथम इतिहास-ग्रन्थ की प्रथम समीक्षा लिखने का श्रेय भी मुझे मिला और आज इस ग्रन्थ की आलोचना करने के अधिकार का भी मैं उपयोग कर रहा हूँ।

ग्रन्थ के साथ न्याय करने के लिये पहले यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, उर्दू, फारसी, बंगला, अंग्रेजी आदि में उपलब्ध ऐतद्विषयक सम्पूर्ण इतिहास-वाङ्मय का आलोचन-मन्थन तो किया ही है, यत्र-तत्र उसकी अनुभूतियाँ भी सजग होकर उद्बुद्ध हुई हैं। उदाहरणार्थ: इतिहास के जिन मूल स्रोतों से लेखक ने अपनी सामग्री ली है उनमें बाबरनामा, शेरशाह हुमायूँनामा, अकबरनामा, तबकते अकबरी, जहाँगीरनामा, दाराशिकोह, जैसे सन्दर्भ ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। ऐसे ७५० प्रकाशित अप्रकाशित ग्रन्थों की वृहत्तालिका इसका प्रमाण है।

रायल अष्टपेजी आकार के ६×४ पृष्ठों में सम्पूर्ण प्रस्तुत विशाल कलेवर-ग्रन्थ लेखक के पूर्व प्रकाशित वृहत्काय 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास' का एक प्रकार से अनुपूरक ही कहा जायगा। इसके अन्तिम ४४ पृष्ठ सहायक साहित्य-सूची एवं अनुक्रमिका को अर्पित हैं। इसके अतिरिक्त ३४ पृष्ठों में लेखक ने अपना प्राक्कथन और विषय सूची दी है। आकार और प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह ब्रज के धर्म और सम्प्रदायों का एक विश्वकोश हो सकता है। हिन्दी तथा इतर भाषाओं में लिखा जाने वाला यह प्रथम भगीरथ प्रयास कहा जा सकता है तथा सामान्य पाठकों, गम्भीर अध्येताओं एवं अनुसंधित्सुओं के लिये यह समान रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रत्न है।

भारतीय संस्कृति और धर्म को सर्वांशतः प्रभावित करने वाले ब्रज मंडल के विविध धर्म और सम्प्रदायों के श्रीकृष्ण काल से लेकर आधुनिक काल तक के दीर्घकालीन विकास-पथ का ऐतिहासिक और प्रामाणिक अनुशीलन इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। प्रमुखतया वैदिक, नारायणीय, सात्वत, पांचरात्र, जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, भागवतादि धर्मों, सर्व श्री रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्द, बल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, हित हरिवंश स्वामी हरिदासादि द्वारा प्रवर्तित वैष्णव सम्प्रदायों एवं तुलसी साहब, राधा स्वामी और स्वामी दयानन्द के मतों का प्रामाणिक, विवेचनपूर्ण, इतिहास सम्मत और तटस्थ पर्यवेक्षण सहज, सरल और मंजी हुई हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय वाङ्मय के सहस्रशः स्रोतों से उपलब्ध इतस्ततः बिखरी हुई अपरिमित-असीम सामग्री पर आधुन विषय की विशदता और एकाग्रता एक समन्वयक दृष्टिकोण से बंधी हुई चलती है। लेखक ने विषय-वस्तु के प्रतिपादन में व्यापक मनोयोग का परिचय दिया है। बाह्यतः भिन्न-भिन्न दिखने वाले मत-मतान्तरों के मूल में भारतीय धर्म की सहिष्णुतानाम्नी जो एकता है, वह लेखक की पैनी दूरदर्शी सूक्ष्म-बुद्धि से प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रथम बार स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है। जैसा कि लेखक महोदय का निजी दावा भी है सभी धर्म और सम्प्रदायों के प्रति श्रद्धालु भावना और निष्पक्ष दृष्टि से कथ्य और तथ्य इसमें प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें लेखक का कोई निजी आग्रह रहा है, ऐसी बात ग्रन्थ के आद्योपान्त मन्थन से सामने नहीं आती। जैसा कि अध्यायशः सिंहावलोकन की निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्टतः सुखरित होगा, ग्रन्थ भारतीय दर्शन के एक अत्यन्त विस्तृत कैनवास पर ब्रज के सांस्कृतिक जीवन की विशद भाँकी विविध रंगों में प्रस्तुत करता है। भारतीय साहित्य के आधार पर लिखा गया भारतीय संस्कृति के मूलाधारः धर्म और सम्प्रदायों का इतिहास अपने प्रकार का यह प्रथम और अनूठा प्रयत्न है।

प्रस्तुत इतिहास ग्रन्थ ७ अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय प्रागैतिहासिक कालीन धर्मों का विवरण प्रस्तुत करता है । प्रतिपाद्य विषय प्रागैतिहासिक साहित्य पर आधृत है । इसका नाम भी प्रागैतिहासिक काल होता तो सार्थक होता । पर लेखक ने इसे आदि काल पुकारना ही उचित ससम्भा है । दूसरा अध्याय जिसे प्राचीन काल के नाम से अभिहित किया गया है, आदि काल कहा जा सकता था । जो इतिहास सम्मत भी है । प्रथम अध्याय में वैदिक, नारायणीय, सात्वत-पंचरात्र के अतिरिक्त यक्षोपासना, नागोपासना करने वाले धर्मों का भी विवरण है । द्वितीय अध्याय में विक्रमी पूर्व ५६६ से सं० ४३ तक प्रचलित बौद्ध, जैन, वैदिक, भागवत, शैव, शाक्त आदि धर्मों को विवृत किया गया है । तृतीय अध्याय में इन्हीं धर्मों का ऐतिहासिक विकास विवेचित है । अठारह पुराणों का वर्गीकृत परिचय भी इसी अध्याय का प्रतिपाद्य है । तृतीय अध्याय को पूर्व मध्यकाल और चतुर्थ को मध्यकाल कहा गया है जो स० ६०० से १२६३ तक का इतिहास प्रस्तुत करता है । उत्तर मध्यकाल पाँचवे और छठे अध्यायों में विवृत है उत्तर मध्यकाल एक प्रकार से इस ग्रन्थ की आत्मा है, जिसमें लेखक के ऐतिहासिक और साहित्यिक वैदुष्य को विशद वर्णन क्षेत्र मिला है और जिसमें लेखक की प्रतिभा खूब रमी है । सप्तम अध्याय 'आधुनिक काल' एक प्रकार से उपसंहारात्मक विवेचन प्रस्तुत कर रहा है । इसके विवरण यद्यपि चलते हुए एवं आनुषंगिक से हैं परन्तु प्रामाणिक और संश्लिष्ट हैं ।

लेखक ने भारतीय वङ्मय का गम्भीर मंथन किया है । परस्पर विरोधी मतों के बलाबल का विवेक किया है । प्रतिपाद्य विषयक सम्पूर्ण सामग्री का दोहन करके ही लेखक ने स्वतन्त्र और मौलिक ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले हैं । अपने मत-स्थापन में लेखक ने पर्याप्त निर्भीकता से काम लिया है । दो एक स्थान पर हिन्दी के दो चार शीर्षस्थ विद्वानों की ओर भी इंगित किये बिना लेखक नहीं चूकता । यह ठीक ही है इतिहास लेखक को इतनी निलिप्तता और निर्भीकता तो चाहिये ही । भारतीय धर्म और भारतीय संस्कृति के विषय में लेखक ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, प्रायः वे सर्वमान्य हैं । प्रस्तुत सन्दर्भ में मीतल जी का दार्शनिक भी उभर कर कदाचित् प्रथमवार सामने आया है । विवेचन में मीतल जी की दृष्टि स्पष्ट और तटस्थ रही है । परन्तु वे किनारे पर खड़े दर्शक की भाँति ही मतामतों का द्वन्द नहीं देखते रहे, बल्कि एक नियामक की भाँति उन्होंने पात्रों, घटनाओं, रिपोर्टों, आलोचकों पर पैनी दृष्टि भी रखी है जिससे यथासम्भव कोई आवश्यक सूत्र रह भी न जाय और अनावश्यक भीड़ न हो जाय । हिन्दी भाषा में अब तक भारतीय धर्मों और सम्प्रदायों का एकत्र वर्णन प्रस्तुत करने वाला कोई ग्रन्थ नहीं था । प्रस्तुत ग्रन्थ ने जहाँ एक बड़े अखरते अभाव की पूर्ति की है, वहीं शोधकारों और विद्वानों को भी अच्छी सामग्री यहाँ एकत्र जुटी है । धर्म और सम्प्रदायों का यह एक प्रकार से विश्वकोश ही कहा जायगा ।

ग्रन्थान्त में ७५० ग्रन्थों की सन्दर्भ तालिका और ३१ पृष्ठों की अनुक्रमणिका ग्रन्थ की उपयोगिता को और भी बढ़ाती है । सचित्र होने के कारण पुस्तक पर्याप्त रोचक और उपादेय हो गई है । कुल मिलाकर ग्रन्थ हिन्दी का अद्वितीय रत्न है, जिसका सर्वत्र ही स्वागत-सत्कार होना चाहिये ।

ग्रन्थ में भाषा सम्बन्धी कुछ नगण्य से खलन भी तत्र तत्र दुर्लभ नहीं हैं । यथा: 'वृटिश', 'अंगरेज', 'जीर्णोद्धार', 'सम्मान', 'अस्तित्व', 'जिमींदार' आदि इसमें कुछ प्रेस की भी कृपा हो सकती है ।

प्राचीन अर्वाचीन तीर्थ स्थानों के बीच

(श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी, प्रियम्बदा सदन, जयपुर)

अपने सार्वजनिक जीवन के आरम्भ से ही आर्य सामाजिक विचारधारा का अनुगामी होने के कारण यद्यपि मन्दिर, देवालयों तथा तीर्थ स्थानों आदि के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा अथवा निष्ठा के भाव नहीं रहे हैं, परन्तु फिर भी सौराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत स्थित सोमनाथ, प्रभासपट्टण, गिरिनार, तथा द्वारिका आदि प्राचीन एवं पौरवन्दर (सुदामापुरी) महात्मा गांधीजी का जन्म स्थान तथा टंकारा ऋषि दयानन्द का जन्म स्थान जैसे अर्वाचीन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व के स्थानों के दर्शन करके उनसे अन्तःप्रेरणा प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा मेरे हृदयस्थल में चिरकाल से विद्यमान रही है, परन्तु उक्त अभिलाषा की पूर्ति कभी निकट भविष्य में हो भी सकेगी, इसकी विशेष आशा नहीं थी, फिर भी विधि के विधान से गत सितम्बर मास के मध्य में अनायास ही उसकी पूर्ति हो ही गई।

इस वर्ष के जुलाई मास के आरम्भ में मेरे द्वितीय पुत्र चि० सोम की नियुक्ति प्रथम श्रेणी की केन्द्रीय सेवाओं के अन्तर्गत रेलवे विभाग में ए० सी० एस० के पद पर सौराष्ट्र प्रदेश के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित भाव नगर नामक स्थान पर हुई, जो घर से अत्यधिक दूर होने के कारण आरम्भ में विशेषतः मेरी पत्नी को कुछ अखरी, परन्तु जब हमारे एक निकटतम साथी ने हमारा ध्यान उक्त नगर के समीप स्थित उन तीर्थ स्थानों की ओर आकृष्ट किया, तो हमने उपर्युक्त नियुक्ति को वरदान के रूप में ग्रहण करके उस सुअवसर का पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया। तदनुसार गत १७ सितम्बर को मेरी पत्नी प्रियम्बदाजी तथा मैं जयपुर से रवाना होकर अगले दिन महसाना के मार्ग से भाव नगर पुरा नामक रेलवे-बस्ती जा पहुँचे, जहाँ समस्त रेलवे अधिकारियों के बंगले अवस्थित हैं।

भावनगर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, भूतपूर्व सौराष्ट्र प्रान्त के पश्चिमी समुद्र तट पर बसा हुआ एक विशाल व्यापारिक नगर है, जो पहले इसी नाम के राज्य की राजधानी था, तथा यहाँ के तत्कालीन शासक स्वर्गीय कृष्ण कुमार सिंहजी कुछ समय तक मद्रास के राज्यपाल के पद पर भी आसीन रह चुके थे। इस नगर में कुछ प्राचीन मन्दिर, जवाहरलाल वाटिका आदि के अतिरिक्त “गांधी स्मृति” नाम की एक सुप्रसिद्ध संस्था है, जिसमें गांधी जी के जीवन से सम्बन्धित सैकड़ों ही चित्र और तत्सम्बन्धी विशेष घटनाओं का उल्लेख किया हुआ है।

इस नगर के इर्द-गिर्द ही वे समस्त तीर्थ स्थान स्थित हैं, जिनका भारतीय जनता के जीवन तथा उसकी मान्यताओं से अत्यन्त अद्भुत अथवा गहरा सम्बन्ध रहता आया है, तथा अब भी वहाँ प्रायः नित्य प्रति ही सैकड़ों श्रद्धालु यात्री पहुँच कर अपनी आध्यात्मिक धुआँ को शान्त करते रहते हैं। यहाँ से सोमनाथ जाने के लिये घोला और जूनागढ़ जंक्शन होकर बेरावल रेलवे स्टेशन पहुँचना पड़ता है, जिससे १११ मील के अन्तर पर प्रभास पाटन, प्राचीन सोमनाथ के भग्नावशेष तथा वर्तमान सोमनाथ का नवनिर्मित विशाल मन्दिर, भालका तीर्थ

(कृष्ण वध स्थान) देहोत्सर्ग (जहां श्रीकृष्ण ने प्राणोत्सर्ग किये थे), त्रिवेणी घाट (श्रीकृष्ण के दाह संस्कार का स्थान), गीता मन्दिर, बलदेवजी की गुफा तथा महाप्रभुजी की बैठक आदि अनेक दर्शनीय स्थान हैं, जिन सभी का अपना-अपना स्वतन्त्र इतिहास है, जिसका विस्तारपूर्वक उल्लेख एक-एक पृथक् लेख के रूप में किया जावेगा ।

सोमनाथ या प्रभास पाटण से लगभग २०० मील के अन्तर पर पुराण प्रसिद्ध द्वारावती या द्वारिका नगर अवस्थित है, जहां किसी समय जरासंध और कालयवन के संयुक्त भीषण आक्रमण से त्राण पाने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण अपने सहयोगी यादवों के साथ मथुरा छोड़कर जाकर बसे थे तथा स्थपति विद्व कर्मा की सलाह और सहयोग से इसको अत्यन्त सुन्दर और विशाल वैभवशाली नगर बनाया था । यद्यपि प्राचीन गाथाओं और किंवदन्तियों के अनुसार भगवान् कृष्ण के काल की द्वारकापुरी उसी समय समुद्र में लुप्त हो गई बताई, फिर भी वहां अब जो नगर बसा हुआ है तथा रुक्मिणी जी के मन्दिर और जगत मन्दिर के नाम से द्वारकाधीश का जो भव्य भवन बना है, वे अपनी विशालता तथा प्राचीनता की ही दृष्टि से नहीं, स्थापत्य कला की दृष्टि से भी सर्वोत्कृष्टता के अच्छे नमूने हैं, प्राक्कालीन द्वारका की भांति वर्तमान द्वारका भी सर्वथा समुद्र तट से सटकर बसी है तथा उसमें चक्रनारायण, संगमनारायण, शारदापीठ तथा गोमती तट आदि अन्य अनेक पवित्र और दर्शनीय स्थान हैं, जिनसे यहाँ का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है ।

सोमनाथ और द्वारिका दोनों धार्मिक महत्व के स्थानों के लगभग बीचों बीच पोरबन्दर अथवा सुदामापुरी का वह नगर अवस्थित है, जो भगवान् कृष्ण के बालसखा किंतु नितांत निर्धन सुदामा का किसी समय निवास स्थान रहने के अतिरिक्त वर्तमान कालीन दरिद्र नारायण के पुजारी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का पुनीत जन्म स्थान होने के कारण राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है । संयोगवश हम लोग यहां २ अक्टूबर के उस पावन अवसर पर पहुंचे थे, जब कि आज से ठीक ६७ वर्ष पूर्व यहां के लगभग २०० वर्ष पुराने तिमन्जिले मकान की सबसे नीचे की मन्जिल के एक कोने में इस महापुरुष ने जन्म लेकर भारत भूमि की दीर्घकालीन दासता को दूर करने हेतु जीवन भर भारी प्रयत्न किया तथा अन्त में उसमें पूर्ण सफलता भी प्राप्त की थी । आज उस पवित्र जन्म स्थल पर अंकित स्वस्तिक के शुभ चिह्न के ऊपर श्रद्धालु जन पुष्पांजलि अर्पित करके अपने भक्ति भाव का परिचय देते हैं । प्रियम्बदाजी तथा मैंने भी नतमस्तक होकर उसी स्वस्तिक पर अपनी लाई हुई पुष्प मालाएँ चढ़ाकर उसके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट की ।

गांधीजी के इस पैतृक जन्म स्थान से बिलकुल सटा हुआ आप ही के परम भक्त तथा पुराने साथी दानवीर सेठ नानजी भाई कालीदास की अपार आर्थिक सहायता से हाल ही में निर्मित वह विशाल “कीर्ति मंदिर” है, जिसके बीचों बीच खुले चौक में गांधीजी की आदम कद प्रस्तर प्रतिमा के अतिरिक्त आप और कस्तूरबा के दो विशाल काय तैल चित्र भी बिलकुल सामने ही लगे हुए हैं ।

इसी प्रकार इस मन्दिर के चारों ओर बने संगमरमर के २८ स्तम्भों पर गांधीजी के जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण घटनाएँ, आपके प्रिय भजन तथा अनेक अमूल्य वचनाभूत अंकित हैं ।

साथ ही उसकी दूसरी मंजिल पर माता कस्तूरबा पुस्तकालय, महादेव भाई पुस्तकालय तथा गांधीजी की सबसे प्रिय रचनात्मक प्रवृत्ति खादी उत्पादन की विविध प्रक्रियाएँ प्रदर्शित की गई हैं।

उक्त कीर्ति मन्दिर के अतिरिक्त यहां सेठ नानजी भाई द्वारा स्थापित आर्य कन्या गुरुकुल भारत माता का मन्दिर तथा तारागृह, दयानन्द वाटिका आदि विशेष दर्शनीय हैं, जहां नित्यप्रति सैकड़ों ही यात्री मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन के हेतु भी आते रहते हैं।

सोमनाथ, द्वारका तथा पोरबन्दर स्थित विविध धार्मिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्व के स्थानों का अवलोकन करने के अनन्तर हम लोगों ने उस जूनागढ़ के कतिपय ऐतिहासिक महत्व के स्थानों को भी देखने का विचार किया, जहां का भूतपूर्व नवाब किसी समय अपने कुत्तों के शौक के लिये बहुत प्रसिद्ध रहा था तथा जिसने विभाजन के अवसर पर अपने राजपाट को छोड़कर वायुयान द्वारा पाकिस्तान भाग जाने का उपक्रम किया था।

यों इस नगर में पुराने किले के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्व का कोई अन्य दर्शनीय स्थान नहीं बताया गया, परन्तु इसके समीप ही गिरिनार की वह पर्वत माला है, जिसकी शिखरों पर जैन सम्प्रदाय के अनेक भव्य मन्दिर तथा विशाल धर्मशालाएँ हैं, जहाँ प्रतिवर्ष अनेक जैन मतावलम्बी एवं अन्य धर्मानुयायी भी उनके दर्शन करने के साथ-साथ उक्त पर्वतमाला की नैसर्गिक शोभा का आनन्द लूटने भी जाते हैं। इन मन्दिरों तथा धर्मशालाओं तक पहुँचने के लिये ५००० सीढ़ियाँ चढ़ना पड़ता है। फिर लगभग इतनी ही सीढ़ियाँ और चढ़कर महामुनि दत्तात्रेयजी के चरणों की प्रतिमा स्थापित है। इन दोनों ही स्थानों पर जाने के लिये काफी समय और बहुत श्रम लगाना पड़ता है। हम लोग समयाभाव और अशक्तता के कारण अधिक ऊपर नहीं जा सके, परन्तु नीचे तलहटी में खड़े होकर भी हमने वहां की वन सम्पदा की जो अपूर्व छटा देखी थी, वह हमारे जीवन में चिरस्मरणीय रहेगी।

जूनागढ़ गिरिनार की जाने वाले मार्ग पर ही 'दामोदर कुण्ड' नाम का एक सुहावना सरोवर पड़ता है, जहां पर एक विशेष अमावस्या के दिन लगभग एक या डेढ़ लाख लोग स्नान का पुण्य लाभ करते हैं।

यहां से कुछ अन्तर पर, जूनागढ़ की ओर, सम्राट अशोक का इतिहास-प्रसिद्ध वह शिला लेख है, जो उस युग का सबसे प्रामाणिक समकालीन विवरण माना जाता है। केवल अशोक ही नहीं, इस शिला के आजू बाजू महाक्षत्रप रुद्रदामन तथा स्कन्दगुप्त के भी दो लेख और अङ्कित हैं, जिनका अपना अलग महत्व है। पहले बहुत दिनों तक यह शिला लेख यों ही जाल में खुला पड़ा रहा होगा, जिसके कारण वर्षा, वायु तथा धूप आदि के प्रभाव से उसके ऊपर के कतिपय अक्षर सर्वथा मिट चुके हैं, परन्तु अब सम्भवतः सौराष्ट्र सरकार की स्थापना होने पर उसकी ओर से इस बहुमूल्य शिलालेख के ऊपर एक विशाल भवन बनाकर इसकी सुरक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी गई है।

इसी नगर के अन्दर भक्त नरसी मेहता का चौरा है, जिसमें उनके जन्म और जीवन से संबंधित अनेक चित्र तथा मूर्तियाँ भी स्थापित की हुई हैं, यह चौरा उस स्थान को माना

जाता है, जहां अपनी भावज के दुर्व्यवहार और झिड़कियों से धुंध होकर नरसी मेहता भगवद्-भक्ति में लीन होकर रहने लगे थे। इस चौरा के अतिरिक्त यहां महावत खां का मकबरा अपनी भव्यता और सौन्दर्य के लिये और प्रसिद्ध है, जिसका हमने केवल बाहर ही से निरीक्षण मात्र किया था।

उपर्युक्त समस्त स्थानों की यात्रा पूरी करने के अनन्तर हम लोगों ने वर्तमान राष्ट्रीयता के जनक आर्य समाज के प्रवर्तक, महर्षि दयानन्द की जन्मभूमि टंकारा की यात्रा के लिये प्रस्थान किया। इस स्थान के संबंध में मैंने बहुत पहले पढ़ा था, कि यह गुजरात के मोरवी नामक छोटे से राज्य के अन्तर्गत एक गांव है, परंतु उसकी भौगोलिक स्थिति अथवा वहां के आने जाने के मार्ग आदि के संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं थी, अतः आरम्भ में मेरा यही अनुमान था, कि हमको मोरवी पहुँचकर वहीं से उस स्थान की पूरी जानकारी करनी होगी। परंतु भावनगर और पोरबंदर में पूछताछ करने पर यह पता पड़ा, कि टंकारा को बिना मोरवी गये राजकोट से सीधा बस द्वारा पहुँचा जा सकता है, फलतः हमने इसी मार्ग से जाने का निश्चय किया।

राजकोट पहुँचने के लिये हम द्वारका से प्रातः ५ बजे की ट्रेन से रवाना हुए और जामनगर जैसे विशाल औद्योगिक नगर सहित इस क्षेत्र के अनेक छोटे बड़े स्टेशनों को पार करके दोपहर को लगभग ११ बजे राजकोट जा पहुँचे। वहां पर स्नानादि से निवृत्त होकर हमने १ बजे की बस पकड़ी, जिसने हमें ठीक दो बजे वहां से २६ मील पर स्थित हमारे गन्तव्य स्थान पर पहुँचा दिया। आगे वही बस मोरवी नगर तक गई थी, जो वहां से केवल १३ मील के अन्तर पर अवस्थित था।

टंकारा के मोटर अड्डे पर उतरते ही प्रियम्बदाजी तथा मुझे ऋषि दयानन्द के जन्म और जीवन से संबंधित स्थानों को देखने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, परंतु हमारा मार्ग दर्शन करने के लिये वहां कोई भी उपयुक्त व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ा। अन्त में हमको गांव की ओर छोटी सी नदी के तट पर स्थित एक विशाल और भव्य भवन दिखाई दिया, जिसके बाहर के भीमकाय दरवाजे के ऊपर “महर्षि दयानन्द स्मारक महालय” लिखा हुआ था। हमने तत्काल उस फाटक में प्रवेश किया, परंतु काफी देर तक इधर-उधर घूमने पर वहाँ भी कोई आदमी दिखाई नहीं दिया। अन्त में हमको एक युवक मिला, जिसने अपने आपको उस आयुर्वेद महाविद्यालय का छात्र बतलाया, जो उस विशाल बिल्डिंग में अवस्थित है। उसी युवक ने हमको उक्त महाविद्यालय के आचार्य के पास पहुँचा दिया।

पारस्परिक परिचय प्राप्त करने कराने से पता पड़ा कि श्रीचन्द देव भा नामक उक्त आचार्य बिहार प्रांत के निवासी एक हिंदी भाषी सज्जन हैं, जो इस महाविद्यालय की स्थापना के अनन्तर बड़ौदा से यहां आये थे। आपके स्नेह तथा सौजन्यपूर्ण सहायता से हमने यहां के सभी दर्शनीय स्थानों को देखने के अतिरिक्त अन्य जानने योग्य बातों की जानकारी लेने की भी चेष्टा की। वहां हमारा सम्यक् पथ-प्रदर्शन करने के हेतु आपने एक छात्र को हमारे साथ भेज दिया, जिसने सर्वप्रथम हमको समीप ही बस के अड्डे की पीछे की ओर स्थित उस सुप्रसिद्ध शिवालय के दर्शन कराये, जिसमें शिवरात्रि को पार्थिव शिव लिंग की आराधना करते हुए बालक मूल शङ्कर (ऋषि दयानन्द का पारिवारिक नाम) को सच्चे शिव की खोज करने की दुर्दमनीय जिज्ञासा

उत्पन्न हुई थी। कुछ समय तक उस आकार-प्रकार की दृष्टि से अत्यन्त अकिञ्चन, किन्तु देश के इतिहास में एक महान् धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति के प्रेरक स्रोत होने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान का चारों ओर से निरीक्षण परीक्षण करने के अनन्तर अब हमको उस पावन स्थान के दर्शन करने की तीव्र लालसा उत्पन्न हुई, जिसके ऊपर अब से लगभग १४० वर्ष पूर्व उस महापुरुष ने जन्म धारण किया था।

इस स्थान के संबंध में, जैसा कि आयुर्वेद कालेज के आचार्य जी ने हमको पहले ही बता दिया था, वहां अब उस समय के मकान आदि का कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं है, अपितु इस समय उस भूमि पर एक पड़ौसी कानजी भाई नामक बीड़ी व्यापारी ने अपना एक सुन्दर निवास स्थान बना लिया है, जिसके छोटे से सुसज्जित कमरे में उसने दयानन्द जन्मभूमि सूचक उनके तीन चार चित्र तथा एक हवन कुण्ड भी रख छोड़ा है, जिसमें शिवरात्रि के दिन हवन किया जाता बतलाया। इस स्थान को दर्शकों को उदारता पूर्वक दिखलाने में उस मकान मालिक को बड़ा गर्व और गौरव अनुभव होता है। उसने उक्त स्थान की पूर्व स्थिति तथा कुछ वर्ष पूर्व उसको अपने द्वारा प्राप्त किये जाने का विस्तृत विवरण देते हुए हमारा चाय-पान द्वारा हादिक स्वागत सत्कार भी किया।

वहां से वापिस आयुर्वेद कालेज पहुँचकर हमने वापिस राजकोट जाने का उपक्रम किया। परंतु हमारे बस अड्डे पर पहुँचने से पूर्व ही उस समय की बस वहां से रवाना हो चुकी थी, अतः हमको लगभग दो घण्टे तक वहीं और ठहरना पड़ा। इस दौरान में हमने वहां पर चलने वाली अन्य विविध प्रवृत्तियों की विशेष जानकारी की तो मालूम हुआ कि महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, जिसके अन्तर्गत उक्त आयुर्वेद कालेज चल रहा था, उन्हीं दानवीर सेठ नानजी कालीदास की आर्थिक सहायता से स्थापित हुआ था, जिन्होंने पोरबंदर में 'कीर्ति मंदिर' तथा 'भारत माता का मंदिर' आदि अनेक संस्थाएँ स्थापित की हुई हैं। कालेज का यह विशाल भवन आपने मोरवी नरेश से ही खरीदा था। दूसरी ओर बस अड्डे के बिल्कुल समीप उक्त स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित गोशाला को भी देखा, जहां से गाँव वासियों को पचास पैसे प्रति किलो शुद्ध दूध दिया जा रहा था।

क्योंकि हमको उसी दिन रात्रि की ट्रेन से वापिस भावनगर जाना था, अतः राजकोट में वहां के विशाल खादी भण्डार के अतिरिक्त और कुछ न देख सके।

फिर भी हमने पाँच दिन की यात्रा के दौरान प्राचीन और अर्वाचीन तीर्थ स्थानों के बीच रहकर अनेक दर्शनीय चीजों को देखा तथा ज्ञातव्य बातों की जानकारी प्राप्त की, जिनके ऊपर हम यथासमय पृथक-पृथक रूप से प्रकाश डालेंगे।

‘बिहारी-रत्नाकर’ में शब्दार्थ सम्बन्धी भूलें

(श्री रामस्वरूप विशारद, रिटा० अध्यापक, च० अ० कालेज, मथुरा)

रामचरितमानस को छोड़ हिन्दी के अन्य किसी भी काव्य-ग्रन्थ की इतनी टीकायें नहीं लिखी गयीं, जितनी कि बिहारी सतसई की लिखी गयीं। बिहारी-सतसई की इन समस्त टीकाओं में स्वर्गीय बा० जगन्नाथदास रत्नाकार-प्रणीत ‘बिहारी-रत्नाकर’ नामक टीका का अधिक मान है। यह कह देना भी कुछ अनुपयुक्त न होगा कि इस टीका ग्रन्थ को सभी हिन्दी भाषा के भाषी विद्वान और यहाँ तक कि ब्रजभाषा के मर्मज्ञ भी सही बुद्धि अर्थ वाला तथा प्रामाणिक ठहराते हैं।

एक ब्रजभाषा-भाषी होने के कारण मुझे ‘बिहारी-रत्नाकर’ में शब्दार्थ सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ ज्ञात हुयीं। विगत वर्षों में अनेक बार विद्यार्थियों को बिहारीलाल के दोहों का अर्थ समझाते समय ऐसे अवसर आये, जब कि मेरे बतलाये हुए शब्दार्थों को विद्यार्थियों ने ‘बिहारी-रत्नाकर’ के विरुद्ध बतला कर सही-गलत की समस्या सामने खड़ी करदी। ये बातें पिछले कितने ही वर्षों से चली आ रही थीं। कुछ मित्रों की राय हुई कि जब तक हिन्दी के विद्वान और मुख्यतः ब्रजभाषा के मर्मज्ञ इस बात को महसूस नहीं करते कि बिहारी-रत्नाकर में कुछ भूलें हैं, तब तक थोड़े से विद्यार्थियों को समझा देने मात्र से कोई लाभ नहीं। इसी विचार को लेकर इस लेख-द्वारा उपर्युक्त ग्रन्थ में हुई कुछ भूलों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

बिहारी-सतसई का एक दोहा है—

कौन भाँति रहि है विरदु, अब देखवी मुरारि ।

बीधे मों सों आइ कै गीधे गीधहि तारि ॥

‘बिहारी-रत्नाकर’ में इस दोहे का अर्थ इस प्रकार लिखा है—

हे मुरारी ! अब देखना है [कि आपका तारन—] विरद किम प्रकार रहेगा, [क्योंकि आप एक सामान्य पापी] गिद्ध [संपाति] को तार कर परचे हुए मुझ [महापापी] से आ उलभे हैं।

इस दोहार्थ में गीधे शब्द का अर्थ ‘परचे हुए’ जिस रूप में किया गया है, वह मेरी सम्मति में ठीक नहीं है। ‘गीधे’ और ‘बीधे’ यह दोनों शब्द ‘गीधना’ और ‘बीधना’ (बिधना) क्रियाओं के रूप हैं। ‘गीधना’ शब्द का अर्थ होता है—एक बार कोई लाभ उठा कर सदा उसका इच्छुक रहना अथवा चसका लगना, अतः गीधे का अर्थ परचे हुए करना ठीक नहीं है। इससे ‘गीधने’ का भाव पूर्ण रूपेण व्यक्त नहीं होता, क्योंकि इसका अर्थ जाने-पहिचाने हुए (घनिष्ठता प्राप्त किये हुए) भी होता है और यही अर्थ सीधा मस्तिष्क में जा कर बैठता है। इस प्रकार के अर्थ के मस्तिष्क में बैठने का एक कारण और भी है और वह है इस शब्द का विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया जाना—(परचे हुए मुझ महापापी), जो एक दम बिलकुल ही गलत है। बीधे की तरह गीधे का प्रयोग भी क्रिया के रूप में ही होना चाहिये था। दोहे के उत्तरार्द्ध का बड़ा सीधा-सादा-सा साफ अर्थ था—

[एक] गिद्ध को तार कर गीध गये हो अर्थात् आप को तारने का चसका लग गया है,
[अब] मुझसे आ कर उलझे हो ।

अब, दूसरा दोहा लीजिये—

लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि अनूप, अपार ।

सरसैं बरसैं नीर हूँ भर हूँ मिटे न भार ॥

‘विहारी-रत्नाकर’ में इस दोहे का अर्थ इस प्रकार है —

हे लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि विलक्षण [तथा] अपार है [इसकी] भार (जलन) नीर बरसने से भी बढ़ती है, [और] भर (ग्रीष्म के ताप) से भी नहीं मिटती ।

इस दोहार्थ में ‘भर’ शब्द का अर्थ ग्रीष्म-ताप किया गया है । रत्नाकर जी ने अपने इस अर्थ की पुष्टि में टिप्पणी देकर ‘भर’ शब्द के विषय में लिखा है—‘भर-इस शब्द का अर्थ अन्य टीकाकारों ने मेघ का भड़ी बाँध कर लगातार बरसना किया है, पर यहाँ इसका यह अर्थ नहीं है । यहाँ इसका अर्थ है ताप अर्थात् ग्रीष्म का प्रचंड ताप अथवा लूण । विहारी ने इस शब्द का प्रयोग इस दोहे के अतिरिक्त और पाँच दोहों में छः बार किया है, जिनमें तीन बार (देखो दोहे सं० ४०२, ५७०, ६४६) इसका प्रयोग पावक-लपट के अर्थ में हुआ है, एक बार (देखो दोहा ६८) विरह-ताप के अर्थ में और दो बार (देखो दोहे ४०२, ४८४) मेह की भड़ी के अर्थ में ।

उपर्युक्त पाँचों दोहे भी नीचे लिखे जाते हैं—

पावक-भर तैं मेह-भर दाहक दुसह बिसेखि ।

दहै देह वाकैं परस, याहि दगनु हीं देखि ॥४०२॥

नावक-सरसे लाह कै, तिलकु तरुनि इत ताकि ।

पावक-भर सी भूमिकि कै, गई भरोखा भाँकि ॥५७०॥

सटपटाति सैं ससिमुखी मुख घूँघट पटु ढाँकि ।

पावक-भर सी भूमिकि कै गई भरोखा भाँकि ॥६४६॥

नैक न भुरसी विरह-भर नेह लता कुम्हिलाति ।

नित-नित होति हरी-हरी, खरी भालरति जाति ॥ ६८ ॥

तिय-तरसौं हैं मुनि किए करि सरसौं हैं नेह ।

धर-परसौं हैं रहे भर-बरसौं हैं मेह ॥४८४॥

इन पाँचों दोहों में ‘भर’ शब्द एकाकी प्रयुक्त नहीं हुआ है, वरन् वह सामासिक पदांश है । अतः इन पाँचों दोहों में वह केवल अपना कोई स्वतंत्र अर्थ न रख कर, अपने दूसरे सम्बन्धित पदांशों के अर्थानुसार अर्थ देता है, जैसे—पावक-भर में ‘भर’ का अर्थ लपट है और मेह-भर में ‘भर’ का अर्थ भड़ी है । व्रज में एक शब्द ‘भरप’ बोला जाता है, जो आग की लपट के लिये आता है । इसी ‘भरप’ शब्द को ‘भर’ करके विहारीलाल ने पावक का उत्तर पद बना कर आग की लपट के अर्थ में प्रयुक्त किया है । ‘भर’ शब्द का एकाकी प्रयोग करके उससे आग की लपट का अर्थ विहारी ने कहीं भी नहीं निकाला और न निकलता ही है । यदि कई दिन तक लगातार मेह बरसता रहे, तो प्रायः लोगों के मुँह से निकल पड़ता है—‘इस ‘भर’ में तो एक भी कच्चा

मकान खड़ा न रह सकेगा ।' इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि अकेले 'भर' का अर्थ होता है—भर लगना अर्थात् लगातार मेह का बरसते ही रहना । उपर्युक्त दोहे (सरसैं बरसैं नीर हूँ भर हूँ मिटै न भार) में 'भर' शब्द अन्य पाँचों दोहों की तरह सामासिक पदांश नहीं है, वरन् एकाकी है और बहुत कुछ स्वतन्त्र अर्थ रखता है । यहाँ इसका अर्थ ग्रीष्म का ताप लगाना ठीक नहीं है । यहाँ तो इसका अर्थ होगा—मेह का झड़ी बाँध कर बरसना, जैसा कि अन्य टीकाकारों ने किया है । इसके अतिरिक्त एक बात और है, जिसके कारण 'भर' शब्द का अर्थ ग्रीष्म-ताप नहीं हो सकता, क्योंकि लपट (भरप या भर) आग में होती है, सूर्य की धूप में लपट (भरपया भर) नहीं होती । अतः 'भर' का अर्थ ग्रीष्म ताप किसी प्रकार हो ही नहीं सकता, वरन् इसका अर्थ होगा भर लगना अर्थात् झड़ी बाँध कर मेह का बरसना । इस दोहे का अर्थ होना चाहिये था—

हे लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि [ऐसी] विलक्षण तथा अपार है कि पानी भी बरसे [और बरसते-बरसते] भर भी लग जाय अर्थात् झड़ी बाँध कर लगातार भी मेह बरसता रहे, [तो भी] इसकी भार (जलन) मिटती नहीं, वरन् बढ़ती ही रहती है ।

अच्छा, अब एक तीसरा दोहा और लीजिये—

जब-जब वै सुधि कीजिये, तब-तब सब सुधि जाँहि ।

आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखें लागत नाँहि ॥

'बिहारी-रत्नाकर' में इसका अर्थ इस प्रकार है—

जब-जब वे [नायक] स्मरण किये जाते हैं, तब-तब सब चेतनायें जाती रहती हैं । [उनकी] आँखों [के ध्यान] में [मेरे हृदय की] आँखें लगी रह जाती हैं, [और, आँखें नहीं लगती] (नौद नहीं आती) ।

मेरी सम्मति में इस दोहे का अर्थ हृदय की आँखें बनाकर जो किया गया है, वह ठीक नहीं है । उनकी आँखों के ध्यान में मेरे हृदय की आँखें लगी रह जाती हैं, ऐसा अर्थ कर के बहुत सम्भव है, टीकाकार का तात्पर्य नायिका की तन्मयता से हो, पर इन शब्दों से केवल ऐसा ही भाव प्रकट नहीं होता । 'हृदय की आँखें लगी रह जाती हैं', ऐसा लिखने से तो हृदय की आँखें बन्द हो जाने अर्थात् 'हिये की मुँद जाने' का भाव व्यक्त होता है । जब हिये की मुँद गई तो फिर न तो ध्यान ही रहा और न तन्मयता ही रही । इसके अतिरिक्त एक बात और है—हृदय की आँखें लगा नहीं करती, लगती तो 'आँखें' ही हैं, जिसके फल-स्वरूप हृदय में प्रेमाङ्कुर उगता है । एक उर्दू शायर का कथन भी है— निगाहें चार होती हैं, मुहब्बत हो ही जाती है ।' एक अन्य रीति कालीन कवि ने प्रियतम की आँख से आँख लगी नायिका की विरहावस्था का वर्णन बिहारी के इस दोहे के जैसा ही किया है—

कैसें परे कल ऐरी भट्ट, जब आँखि में आँखि परी निकरे ना ।

इतनी मगजपच्ची के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि दोहे का अर्थ निकालने के लिये हृदय की आँखें बनाने की कोई आवश्यकता न थी । वास्तविकता यह है कि बिहारी ने

इस दोहे में अच्छा शब्द-चमत्कार दिखलाया है, तथा उनकी मुद्य की जानी है, तो अपनी मुद्य जाती रहती है और उनकी आँखों से आँखें लगी रहती हैं, तो अपनी आँखें नहीं लगती। 'आँख लगना' एक मुहावरा है। इसके दो रूप होते हैं— (१) किसी में आँख लगना, जिसका अर्थ होता है—प्रेम हो जाना और (२) अपनी आँख लगना, जिसका अर्थ होता है—नींद आ जाना। दोहे के उत्तरार्द्ध में विहारी ने इस मुहावरे को उपर्युक्त दोनों रूपों में प्रयुक्त किया है—'आँखिनु आँखि लगी रहै, आँखें लागत नाहि।' इसका अर्थ होता चाहिये था— [उन की] आँखों से [जो मेरी] आँखें लगी रहती हैं अर्थात् उनसे जो मेरा प्रेम हो गया है और जिसके कारण उनकी छवि मेरी आँखों में बसी रहती है, [इसी से मेरी] आँखें नहीं लगती अर्थात् मुझे नींद नहीं आती।

यद्यपि विहारी-रत्नाकर में बहुत से दोहे हैं, जिन में मेरी सम्मति में शब्दार्थ सम्बन्धी अनेक भूलें भरी हुई हैं, पर इस लेख में मैंने केवल तीन ही दोहों पर हिन्दी-संसार का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपने विचार प्रकट किये हैं। मुझे आशा है कि, हिन्दी के विद्वान और मुख्यतः ब्रजभाषा के मर्मज्ञ इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। मैं उनके विचारों का स्वागत करूँगा और तभी अन्य दोहों पर अपने विचार व्यक्त करने का प्रयत्न करूँगा।

शारद

श्री जगदीश चन्द्र 'कौशल'

एम. ए., एल. टी., राठ (हमीरपुर)

बीन बजावत गीत सुनाकर,
शारद मातृ सुधा बरसावत ।
या जग में तुलसी उपजाकर,
शोल करी कविता सरसावत ।
मोह मिटावत मोद बढ़ावत,
पाप नसाकर धीर बढ़ावत ।
'कौशल' वाहि सुधारस पीकर,
भाग सराहत तव जस गावत ॥

×

×

×

वेदन गीत पुरानन मानस,
सागर-सूर भरा तव तानन ।
रूप बने तव चाछ रहे जग,
केशव सूर कबीर कवि-गन ।
भूषण ओ रसखान रहीमहि,
औ तुलसी घन आनद देवन ।
'कौशल' है जितने जग में कवि,
वे सब हैं तब पावन-जीवन ॥

गोविन्द स्वामी (अष्टछाप) का निधनकाल

(ले०—श्रीहरिप्रसाद नायक, दलसिंहसराय, जि० दरभंगा)

गोविन्दस्वामी का 'अष्टछाप' में एक विशिष्ट स्थान है। ऐसे तो अष्टछाप के सभी सेवक उत्कृष्ट कीर्तन कार हुए हैं, परन्तु गोविन्दस्वामी की पद रचना में भक्तिभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। छन्दबन्ध में अनेक स्थानों में शिथिलता होते हुए भी भाव-सौन्दर्य से उनके गीति काव्य अभिव्यज्जित हैं।

अन्य प्राचीन कवियों की भाँति गोविन्दस्वामी का ऐतिह्य-चरित्र भी बहुत कम उपलब्ध है। अन्तः साक्ष्य का आधार बहुत ही निर्बल है। उन्होंने अपने काव्य में अपने जीवन-संबंध में कहीं भी संकेत नहीं किया है। बहिः साक्ष्यों के साथ-साथ, किंवदन्तियों तथा जनश्रुतियों की आधारभूत सामग्रियों से विद्वानों ने गोविन्दस्वामी की अनुमानिक जीवनरेखा का शब्दाङ्कन किया है।

गोविन्दस्वामी के निश्चित जन्म-मरणकाल के लिए हमारे पास कोई प्रामाणिक सूत्र उपलब्ध नहीं है। हमने 'अष्टछाप का स्थापनाकाल' शीर्षक लेख में गोविन्दस्वामी का जन्म विक्रम संवत् १५७३ में और उनका सम्प्रदाय-प्रवेश संवत् १६१४ विक्रमी में स्थिर किया है। अब स्वामीजी के निधनकाल पर विचार करना है।

गोविन्दस्वामी के निधनकाल के लिए अन्तःसाक्ष्य का संबल अपेक्षित है। कवि की पद रचना से उनके उपस्थितिकाल की स्पष्ट झलक मिलती है। स्वामीजी ने अपने एक पद में गुसाईं श्री विट्ठलनाथजी की द्वितीय पत्नी पद्मावती के नाम का उल्लेख किया है:—

“जयति जयति श्रीगोपीनाथ अनुज—

विश्व उद्धारक रुक्मिणी पद्मावती आदि भर्ता।

दास 'गोविन्द' प्रभु त्वे रूप जुगराज—

श्रीविट्ठलनाथ गिरिराज धर्ता ॥”^१

श्रीविट्ठलनाथजी की प्रथम पत्नी रुक्मिणीजी का स्वर्गवास विक्रम संवत् १६१६ में होगया था। गुसाईंजी का दूसरा विवाह विक्रम संवत् १६२४ में पद्मावतीजी के साथ सम्पन्न हुआ। इस पद की रचना वि० सं० १६२४ के पश्चात् हुई; इसलिए इस संवत् के बाद ही गोविन्दस्वामी का निधनकाल आता है।

अपने कई एक पदों में गोविन्दस्वामी ने 'गोकुल' का भी उल्लेख किया है:—

“वेई फिर बास करत श्रीगोकुल वेई कीरति प्रगटाए।

वेई सिंगार भोग छिन छिन के वेई लोला गाए ॥”^२

...

...

...

१. गोविन्दस्वामी (प्र० विद्या विभाग, कांकरोली) — पद संख्या ६० (पृ० ४५)

२. वही

— पद संख्या ८६ (पृ० ४२)

“श्रीबल्लभ नन्दन रूप अनूप सरूप कह्यो न जाई ।

प्रगट परमानन्द गोकुल वसत हैं सब जगत को सुखदाई ।”^१

गोकुल में अस्थाई वास का क्रमविक्रम संवत् १६१६ से प्रारम्भ होता है परन्तु विक्रम संवत् १६२८ में गोकुल की स्थापना हो जाने पर गुसाईजी स्थायी रूप से वास करने लगे । ‘वास करत श्रीगोकुल’ तथा ‘गोकुल वसत हैं’ से ऐसा संकेत स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट होता है कि वि० सं० १६२८ के बाद ही उपरोक्त पदों की रचना हुई । इसलिए सं० १६२८ विक्रमी के पश्चात् ही गोविन्दस्वामी का स्वर्गस्थ होना सिद्ध होता है । गोविन्दस्वामी के निम्नपद से भी इसकी पुष्टि होती है:—

“करि करुना प्रगट्यो अवनीतल असरन सरन श्रीविठ्ठलनाथ ।

पूरन पुरुषोत्तम श्रीविठ्ठल बल्लभमुत सकल पदारथ जाके हाथ ॥

भक्ति प्रचार कियो भूतल में निज जन सकल किये हैं सनाथ ।

षटगुन सहित सोभित ‘गोविन्द’ प्रभु गिरिधर प्रभृति सातों सुत साथ ॥”^२

गुसाई श्री विठ्ठलनाथजी के सातवें पुत्र घनश्याम जी का जन्म-संवत् १६२८ माना जाता है । ‘सातों सुत साथ’ की चर्चा से इतना तो सिद्ध है कि वि० सं० १६२८ के बाद ही गोविन्दस्वामीजी का देहश्रवसान हुआ ।

वहिः साक्ष्यों में ‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ तथा ‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता’ को गोविन्दस्वामी के निधनकाल हेतु प्रमाणाधार स्वरूप ग्रहण कर सकते हैं ।

‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ के अन्तर्गत ‘सूरदास की वार्ता’ सङ्कलित है । वि० सं० १६६७ की लिखित प्राचीन मूल वार्ता एवं श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश वाली वार्ता-प्रति से सम्पादित ‘अष्टछाप’ (प्राचीन वार्ता रहस्य-द्वितीय भाग) का सम्पादन पो० कण्ठमणि शास्त्री ने किया है । ‘सूरदास की वार्ता’ से पता चलता है कि सूरदासजी के निधन के समय गोविन्दस्वामी भी उपस्थित थे । सूरदासजी की अचेतावस्था का समाचार सुनकर गुसाई श्रीविठ्ठलनाथजी कुछ सेवकों के साथ जिनमें गोविन्दस्वामी भी थे, परासोली आए—

“सो भीतर के सेवक रामजी प्रभृति और कुम्भनदासजी और श्रीगुसाईजी के सेवक गोविन्दस्वामी प्रभृति, चत्रभुजदास सब सेवक श्रीगुसाईजी के संग परासोली आए ।”^३

सूरदासजी का निधन विक्रम संवत् १६३१ में हमने माना है ।^४ इसलिए संवत् १६३१ विक्रमी तक गोविन्दस्वामी की उपस्थिति निश्चित है ।

‘तानसेन की वार्ता’ से यह मालूम होता है कि गोविन्दस्वामी के पद से प्रभावित होकर तानसेन ने गुसाई श्री विठ्ठलनाथजी से दीक्षा ली—

“ता पाछें तानसेन गोविन्दस्वामी के निकट जाई विनती किये, जो—तुम मोकों कृपा करि कछू गान सिखाओ । तब गोविन्दस्वामी कह्यो, जो—हम श्रीगुसाईजी के सेवक बिना काहू

१. वही —पद संख्या १०० (पृ० ४६)

२. वही —पद संख्या ६२ (पृ० ४६)

३. अष्टछाप (प्र० विद्या विभाग, कांकरोली) : द्वितीय संस्करण—पृ० १०३

४. लेखक का ‘सूरदास का निधनकाल’ शीर्षक लेख

सों सम्भाषण हू करत नाहीं । तब तानसेन श्रीगुसांईजी सों विनती किये, जो — महाराज ! कृपा करि मोकों सेवक कीजिए । तब श्रीगुसांईजी तानसेन कों नाम सुनाए ।”^१

डा० हरिहरनाथ टण्डन ने तानसेन का शरणकाल वि० सं० १६२८ के पश्चात् माना है । ‘वार्ता-साहित्य’ की पृष्ठ-संख्या २८० में ‘तानसेन गवैया’ का उल्लेख डा० टण्डन ने किया है :

“वर्तमानकाल — सम्बत् १५७७ से १६४६ तक, जन्म-सम्बत् — सम्बत् १५७७ वि०, पिता का नाम — मकरंद पांडे, जाति-ब्राह्मण फिर मुसलमान, निवास-स्थान — ग्वालियर, शरणकाल — सम्बत् १६२८ के पश्चात्, अन्तसमय-सात १६४६ ।”^२

‘तानसेन की वार्ता’ के क्रम से ऐसा संकेत मिलता है कि सूरदास के जीवनकाल में तानसेन शरण-दीक्षा नहीं ले सके । सूरदास के जीवनकाल में अगर तानसेन गुसांईजी के सेवक होते तो उनकी ‘वार्ता’ में अथवा ‘सूरदास की वार्ता’ में सूरदास-तानसेन-मिशन का उल्लेख अवश्य होता । सूरदास अपने समय के जाज्वल्यमान सेवक थे — पुष्टिमार्ग के जहाज थे — सम्प्रदाय के दीप-स्तम्भ थे । ऐसे महत्त्वपूर्ण कीर्तनकार-कवि-सेवक के दर्शन का लोभ कौन संवरण कर सकता था ? सूरदास के दिवंगत होने के बाद ही तानसेन का दीक्षित होना सर्वथा निश्चित है । इस प्रकार वि० सं० १६३१ के बाद ही सम्प्रदाय-प्रवेश उनका हुआ । तानसेन के शरणगत होने के बाद ही नरवरगढ़ के राजा आसकरण का शरणकाल आता है जिसकी पुष्टि ‘आसकरण की वार्ता’ से होती है

“सो आसकरण तानसेन कों देखि कै बोहोत प्रमद भयो । × × × । कह्यो, तानसेन ! तुम भले समत आये । कछु सारंग के पद गावो । तब तानसेन ने गोविन्दस्वामी को पद गायो —

राग : सारंग

कुंवर बैठे प्यारी के संग-अंग भरे रंग —

बलि बलि बलि बलि त्रिभंगी जुवतिन-सुखदाई । इत्यादि

× × × । (आसकरण) कहे, जो — यह पद तुम अपना करि कै गाए के कोई और को है ? तब तानसेन ने आसकरण सों कहीं, ... यह तो श्रीगोकुल में श्रीविठ्ठलनाथ गुसांईजी हैं ... उनके अंतरंग सेवक गोविन्दस्वामी हैं, उनसे गायो है । मैं उन सों सिखे हों ।”^३

राजा आसकरण कवि थे । इनके अधिक पद वात्सल्य भाव से अभिव्यज्जित हैं । सूरदास के निधन-संवत् १६३१ के पूर्व अगर आसकरण का शरणकाल होता तो ‘सूरदास की वार्ता’ अथवा ‘आसकरण की वार्ता’ में इसकी चर्चा अवश्य होती; परन्तु चर्चा का अभाव ही यह सिद्ध करता है कि वि० सं० १६३१ के बाद ही आसकरण गुसांईजी की शरण में आए । डाक्टर हरिहरनाथ टण्डन ने आसकरण का शरणकाल वि० सं० १६२८ के बाद ही स्थिर माना है —

“राजा आसकरण वर्तमानकाल-अज्ञात, जन्म-सम्बत्-सम्बत् १६०७, पिता का नाम-भीमसिंह, जाति-क्षत्री, निवास स्थान-नरवर, शरणकाल-सम्बत् १६२८ के पश्चात्, अन्त समय-

१. दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता : द्वितीय भाग (प्र० शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकोली) — पृ० १५६)

२. वार्ता साहित्य (प्र० भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़)

३. दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावना वाली) : द्वितीय खण्ड

श्रीगुसांईजी के निधन ~~के-१६३५~~ ^{के-१६३५} Mum Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तानसेन और आसकरण के शरणकाल में कम से कम-दो वर्ष का व्यवधान स्वाभाविक है। इसलिए वि० सं० १६३३ के बाद ही राजा आसकरण का शरणागत होना सम्भव है। इस प्रकार वि० सम्वत् १६३५ में राजा आसकरण का दीक्षित होना प्रामाणिक है। आसकरण के दीक्षित काल तक गोविन्दस्वामी निश्चित रूप से जीवित थे। वि० सं० १६३६ तक उनकी उपस्थिति का प्रमाण मिलता है। 'आसकरण की वार्ता' की अन्तिम वार्ता (प्रसंग ६) में गोविन्दस्वामी का उल्लेख नहीं है। गुसांई श्रीविठ्ठलनाथजी की बैठक में 'सगरे भगदीय' आए। चतुर्भुजदास तथा कुम्भनदास का नाम आया है, परन्तु गोविन्दस्वामी की चर्चा का अभाव यह संकेत निर्देश करता है कि उन दिनों तक गोविन्दस्वामी का देहान्त हो चुका था। कुम्भनदास का निधन वि० सं० १६४० में विद्वानों द्वारा माना गया है। इसलिए वि० सं० १६४० के बाद गोविन्दस्वामी की उपस्थिति की पुष्टि नहीं होती। वि० सं० १६४० के पूर्व ही गोविन्दस्वामी का निधन हो जाना प्रामाणिक है।

गोविन्दस्वामी के पदों में कहीं भी श्रीविठ्ठलनाथजी के लिए 'गुसांई' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। विद्या विभाग, कांकरोली से 'गोविन्दस्वामी' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें गोविन्दस्वामी के स्वरचित ५७५ पद सङ्कलित हैं। इन उपलब्ध पदों में कवि ने 'गुसांई' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। इससे यह सहज अनुमान होता है कि श्रीविठ्ठलनाथ को 'गुसांई' उपाधि मिलने के पूर्व ही गोविन्दस्वामी दिवंगत हो चुके थे। 'अष्टछाप का स्थापना काल' शीर्षक लेख में हमने यह सिद्ध किया है कि वि० सं० १६३६ के बाद से ही श्रीविठ्ठलनाथजी 'गुसांई' कहलाने लगे थे। यह उपाधि अकबर बादशाह द्वारा श्रीविठ्ठलनाथजी को मिली थी और वह भी वि० सं० १६३८ के पूर्व नहीं। वि० सं० १६३८ के बाद दिवंगत होने वाले सम्प्रदाय के सभी गीतकार सेवकों (श्रीविठ्ठलनाथजी के दीक्षित सेवक गण) ने श्रीविठ्ठलनाथजी के लिए 'गुसांई' शब्द का प्रयोग स्वतंत्र रूप से अथवा उनके नाम के आगे या पीछे निश्चित रूप से किया है। मुगल सम्राट अकबर द्वारा प्रदत्त इस उपाधि की महत्ता उल्लेखनीय है। सम्प्रदाय में श्रीविठ्ठलनाथजी आज भी 'श्रीगुसांईजी' के नाम से सुविख्यात हैं। गोविन्दस्वामी के जीवनकाल में श्रीविठ्ठलनाथजी को 'गुसांई' उपाधि मिलती तो इस उपाधि द्वारा श्रीविठ्ठलनाथजी का स्मरण अपने गीतों में गोविन्दस्वामी अवश्य करते। परन्तु उनके किसी भी पद में 'गुसांई' शब्द का उल्लेख नहीं है। इसलिए वि० सं० १६३८ के बाद उनके दिवंगत होने की पुष्टि नहीं होती है। सभी विद्वानों का प्रायः एक मत है कि गोविन्दस्वामी का निधन गुसांई श्रीविठ्ठलनाथजी के लीला-संवरण के साथ ही हुआ। श्रीविठ्ठलनाथजी वि० सं० १६४२ में स्वर्गस्थ हुए थे। इसलिए गोविन्दस्वामी का भी देहावसान वि० सं० १६४२ में ही माना गया है। परन्तु उपरोक्त प्रमाणों से गोविन्दस्वामी के इस निधन सम्वत् १६४२ की पुष्टि नहीं होती है।

वि० सं० १६३६ के पूर्व ही गोविन्दस्वामी का निधन हो गया था। 'गोविन्दस्वामी की वार्ता' में भी वि० सं० १६३६ के पूर्व तक की ही घटना उल्लिखित है। वि० सं० १६३७ तक गोविन्दस्वामी के जीवित रहने का संकेत प्राप्त है। इस प्रकार गोविन्दस्वामी का निधनकाल वि० सं० १६३७ और १६३६ के मध्य स्थिर होता है। प्रमाणों के आधार पर गोविन्दस्वामी का निधनकाल सम्वत् १६३८ विक्रमी के आस-पास निश्चित होता है।



बिहारी की भक्ति-भावना

(प्रो० सुरेश चन्द्र दुबे, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, नारायण कालेज, शिकोहाबाद)

बिहारी मूलतः शृङ्गारी भावना के कवि हैं । उनके हरि और राधा नायक-नायिका के प्रतिरूप से ही लक्षित होते हैं । उनके 'हरि' कमल सी नाजुक वाला को हृदय से धर कर उस पर भार पड़ने के भय से शंकित होकर घनसार, चन्दन और बनमाला धारण करके आराम नहीं पाते हैं ।^१ वे इन्द्र-कोप से ब्रज की की रक्षार्थ गोवर्धन उठा लेने पर भी 'किशोरी जी' के दर्शन मात्र से, सात्त्विक कम्प के कारण, हाथ के डिगने और उस पर रखे गिरि के डगमगाने के कारण संव्रस्त ब्रजवासियों को देख कर अत्यधिक लजा जाते हैं ।^२ उनके अघर पर बांसुरी धारण करते ही और उस पर उनके ओठ, दृष्टि तथा पट की ज्योति पड़ते ही वह हरित बांस की बांसुरी इन्द्र धनुष के रंग की हो जाती है ।^३ उनकी घर-घर फिरने की वान नहीं छूटती जिससे खिन्न होकर उनकी प्रिया को 'आकर हृदय विदीर्ण क्यों करते हो ? जहाँ अच्छा लगे वहीं बिहार करते फिरिये । कह कर मन की कसक प्रकट करनी पड़ जाती है ।^४ उनके द्वारा सम्मानित होने के कारण, सिर पर स्थापित होकर, 'मोर चन्द्रिका' गुमान कर उठती है, किन्तु राधा के मान न करने पर भी राधा ने मान किया है यह सुनते ही उन्हें पैरों पर लोट जाना पड़ता है ।^५ उनकी मुरली धुनि सुनते ही, हृदय में मिलने की तीव्र उत्कण्ठा लिये, भेट की आशा से उल्लसित होकर, घर से निकल भागी के हृदय में वे बर्छी सी कोंच कर, उसके संकेत स्थल पर पहुँचने से पूर्व ही, वे कहीं चले जाते हैं ।^६ उनकी मुरली के स्वर में आसक्त होकर गोकुल की अनेक कुल-वधुयें, हर किसी

१. न जक धरत हरि हिय धरै, नाजुक कमला बाल ।
भजत, भार-भय-भीत ह्वै, धनु, चन्दन, बनमाल ॥४०५
२. डिगत पानिडिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज वेहाल ।
कंपि किशोरी दरशि कै, खरै लजाने लाल ॥६०१
३. अघर धरत हरि कै, परत, ओठ-डीठि-पट-जोति ।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति ॥४२०
४. सदन-सदन के फिरन की, सदन छुटै हरिराइ ।
रुचै, तितै बिहरत फिरौ, कत बिहरत उर आइ ॥५४४
५. मोर-चन्द्रिका, स्याम-सिर, चढ़ि कत करत गुमानु ।
लखिबी पनइनु पर लुठति, सुनियनु राधा-मानु ॥६७६
६. उर लीने अति चटपटी, सुनि मुरली-धुनि, लाइ ।
हो निकसी हुलसी, सु तो गो हुल सी हिय लाइ ॥५६०

के समझाने पर भी, बुलरीति छोड़ कर, मिलनोत्पन्ना से प्रेरित हो, चल पड़ती है ।^१ उनकी अनुरक्ता को मान करने का उपदेश दिये जाने पर, मान की उपयोगिता को स्वयं जानते हुए भी, मोहन को देखते ही, मन के नियन्त्रण के बाहर हो जाने के कारण, मन में मान रखने में लाचारी प्रकट करनी पड़ जाती है ।^२ वे अपनी प्रिया राधा को लेकर चाँदनी रात में गली में साथ-साथ जाते हुए भी, अपनी-अपनी तन-दयुति के कारण, पाप शक्तियों को, गली में कहीं छाया और कहीं चाँदनी होने के कारण साथ-साथ जाने पर भी अकेले जाने का कौशल दिखाते ।^३ इन हरि से सम्बन्धित अनेक जीवन प्रसंगों को अंकित करने वाले वे बिहारी लाल जिनकी रसिक प्रवृत्ति देव स्थान पर पहुँचने पर भी, मूर्ति के सामने उपस्थित भीड़ में, किसी भक्ति भावना में निमग्न न के स्थान पर, किसी ऐसी 'अपूर्व भक्ति वाली' बाला पर ही निबद्ध हो पाती है जिसका शरीर 'प्रसाद-माला' को प्राप्त कर, रोमांच के कारण, कदम्ब की माला हो जाता है ।^४ इन्हीं शृङ्गार के आलम्बन हरि-राधा को लेकर इन्हीं रससिद्ध कवि बिहारी लाल ने, अपने काव्य में, परिमाण में कम भले ही हों, किन्तु गुणोत्कर्ष से पूर्ण, भक्ति भाव से प्रेरित, सुन्दर एवं सरस दोहों का भी प्रणयन किया है, जिनको पढ़ कर शृङ्गारी कवि बिहारी की भक्ति भावना को एक नई दृष्टि से देखने का कौतूहल सहृदयों के मन में जागृत होता है । उसी कौतूहल की तृप्ति के लिये प्रस्तुत निबन्ध में बिहारी की भक्ति-भावना का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है ।

कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में उद्दाम शृङ्गार के काव्यांश जिस अनुपात में मिलते हैं उसी अनुपात में शृङ्गारी बिहारी की 'सतसई' में भक्ति रस से सित्त दोहे देखने को मिलते हैं । दैन्य की भूमिका में पहुँच कर अपनी दीनता, क्षुद्रता और निरीहता का तथा भगवान की महत्ता तथा सामर्थ्य का उन्होंने अच्छा अनुभव किया था । इन भावों से प्रेरित उनके दोहों में उनके हृदय की सच्चाई और विश्वास प्रकट होते हैं । इनके ऐसे दोहों को देखकर आलोचकों ने बिहारी को 'परम-भक्त' या 'भक्त-प्रवर' तक कहने का साहस किया है । 'सतसई' से कतिपय दोहों में भगवान् का नामोल्लेख मात्र पाकर या कुछ सच्ची भक्ति भावना से प्रेरित दोहों को पढ़कर यदि बिहारी को 'परम-भक्त' या 'भक्त-प्रवर' कहा जाने लगा तो भक्ति-काल के अनेक भक्त कवियों के काव्य में उद्दाम शृङ्गार के काव्यांश पाकर उन्हें शृङ्गारी कवि कह बैठने का दुस्साहस कर बैठना कोई-बड़ी बात न होगी । अतः भक्तों की भक्ति-भावना और शृङ्गारी कवियों की भक्ति-भावना के पार्श्वव्य को ध्यान में रखकर ही हमें बिहारी के भक्ति परक दोहों का मूल्यांकन करने के लिये अग्रसर होना है ।

१. किती न गोकुल कुलवधू, किहि न काहि सिख दीन ।

कौने तजी न कुल गली, ह्वै मुरली-सुन-लीन ॥६५२

२. तुहँ कहति, हों आपु हँ, समुझति सब सयानु ।

लखि मोहन जी मनु रहै, तो मनु राखौ मानु ॥५४८

३. मिलि परछाहीं जोन्ह सौं, रहे दुहुन के गात ।

हरि राधा इक संग ही, चले गली महि जात ॥६७४

४. मै यह तोही मै लखी, भगति अपूरव बाल ।

लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदंब की माल ॥४७०

भक्तों की भक्ति-भावना लौकिक सम्बन्धों एवं व्यापारों के माध्यम से अविवर्धित एवं निश्चल अलौकिक रागानुगा मधुर भक्ति या उज्ज्वल रस में निमग्न करती है और शृङ्गारियों की भक्ति-भावना भगवान् की नर लीलाओं को नर-लीला बनाकर लौकिक भावनाओं का ही परितोष करती है। प्रथम में सतो गुण प्रधान होता है और द्वितीय में रजोगुण एवं तमोगुण हावी हो जाता है। प्रथम में त्रय ताप पीड़ित मन को शान्ति मिलती है और द्वितीय में कामोत्तेजक चेतना। प्रथम दुष्प्रवृत्तियों को दबाती है द्वितीय में उन्हें उभार मिलता है। प्रथम लौकिक प्रेम को भी अलौकिक भूमिका देती है द्वितीय अलौकिक प्रणय को भी भौतिक विलासिता की आधार शिला। प्रथम में भगवान् की लीलाओं के अनुरूप अपने जीवन को ढालने की आकांक्षा मिलती है, द्वितीय में मनुष्य की आशा-आकांक्षाओं के अनुरूप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करने की प्रवृत्ति। प्रथम सब में पूज्य बुद्धि रखते हुए भी उपास्य में अनन्य निष्ठा जागरित करती है द्वितीय मानव-जीवन-मूल्यों में निष्ठा जागरित करने के लिये उपास्य के गुण कर्मों का निदर्शन। प्रथम में भक्ति भाव विशेष होता है द्वितीय में कम। प्रथम में शृङ्गारिकता उनकी भक्ति का एक अङ्ग होती है द्वितीय में, भक्ति उनकी शृङ्गारिकता का एक अङ्ग। प्रथम में अनुभूति की सान्द्रता पर अधिक ध्यान होता है, उक्ति वैचित्र्य पर कम। द्वितीय में वागविदग्धता और उक्ति वैचित्र्य पर अधिक ध्यान होता है अनुभूति की सघनता पर कम प्रथम में विप्रयोग पीड़ा की मार्मिक विवृति रहती है, द्वितीय में वक्रता, चमत्कार एवं दूर की सूझ। प्रथम में संयोग वर्णन प्रायः नियन्त्रित रहता है द्वितीय में उच्छृङ्खल। प्रथम दो दूक बात कहने की प्रवृत्ति होती है द्वितीय में वक्रता लिये हुए। प्रथम में दार्शनिक मतवाद या सम्प्रदाय की मान्यताओं का आग्रह रहता है द्वितीय में उनके प्रति सामान्य श्रद्धा-अश्रद्धा भाव।

‘अनेक सबादों’ से भरी हुई ‘सतसई’ को जयसाहि का हुक्म पाकर,^१ राधा की स्तुति से आरम्भ^२ कर, ‘हरि-राधिका-प्रसाद’ से निर्विघ्न समाप्ति पर सन्तोष प्रकट करने वाले कविवर बिहारी के कुल का सम्बन्ध हरिदासी सम्प्रदाय के आचार्य नरहरिदास से रहा था। इनका सम्प्रदाय एक साधना मार्ग था जिसमें राधा-कृष्ण की लीलाओं का सखी भाव से अवलोकन करना और संगीत कला से उन्हें रिक्ताना ही उसकी उपासना पद्धति या साधना का एक प्रमुख अंग है। निर्वार्क के द्वारा प्रतिपादित मधुरोपासना में कृष्ण और सखियों द्वारा परिवेष्टित राधा को ही प्रधानता दी गई है। बिहारी की जिन आँखों ने, मोहन के उर में उर-बसी सी बसी राधिका की छवि को निहार कर उस पर उर्वसी^३ को न्योछावर करने की घोषणा की उत्कल्लता दिखाने तथा श्याम की स्मृति में यमुना के तीर को ताकती हुई तथा अश्रुधारा से तट जल को भी

१. हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि-राधिका-प्रसाद।

करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सबाद ॥७१३

२. मेरी भव-बाधा हरी, राधा नागरि सोइ।

जा तन की भाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ ॥१

३. तो पर वारों उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।

तू मोहन क उर बसी, तू उर बसी समान ॥२५

क्षणभर के लिये खारा^१ कर देने वाली विप्रयोग-पीड़ा की अवसन्नता को देखने का अभ्यास कर लिया था, तुलसी के अभिमत 'सठ सुधरहि सत संगति पाई—पारस परस कुधातु सुहाई' का निदर्शन बनती हुई^२ आचार्य नरहरि दास एवं निर्वार्क के विचारों के सम्पर्क में आकर उन्हीं राधा-कृष्ण को इन्हीं आचार्य युगल के विचारों के प्रकाश में देखने लगीं। इसलिये 'सतसई' में इन दोनों आचार्यों के विचारों की झलक कुछ दोहों में दिखाई देने लगी है। विहारी की 'युगलोपासना' में श्रद्धा^३ थी उन्होंने राधा की स्तुति में कृष्ण को भी स्मरण किया है।^४ युगल सरकार उनकी प्रशंसा, उपहास और विनोद के भी कारण बने हैं।^५ सम्बन्ध-भावना के विस्तार के कारण श्याम के शीश पर रहने वाली 'मोर-चन्द्रिका' भी राधा की सखियों को प्रेम-गर्विता सी दिखाई देने लगी है जिसके 'गुमान' को वे सहन न कर सकीं अतः धमकी भरे स्वर में उसे सचेत करना पड़ा।^६ उपर्युक्त राधा-कृष्ण के परस्पर सम्बन्ध एवं उनके क्रिया-कजापों से सम्बन्धित कुछ दोहे इनके रचयिता के राधा-कृष्ण के प्रति हृदय-गत श्रद्धा भाव को एक ओर जहाँ प्रकट करते हैं वहाँ उन्हें सामान्य नायक-नायिका का प्रतिनिधि बनाकर पाठक के मन की लौकिक वासनाओं की ही तुष्टि करते हुए दिखाई देते हैं। इनमें जहाँ एक ओर दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है वहीं काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि मनोविकारों को उभारने वाली सामग्री भी सुलभ होती है। किन्तु अपने अन्तिम परिणाम में इनसे त्रय-ताप-पीड़ित व्यक्ति के मन को शान्ति के सन्देश के स्थान पर मनोरथों के बढ़ने के लिये निर्वन्ध विलास भूमि ही अधिक मिलती है।

विहारी ने विभिन्न उपासना पद्धतियों एवं उनके उपास्यों के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए भी स्वयं को किसी उपासना सम्प्रदाय के विचारों में बाँधने का व्रत नहीं लिया है। उनकी कर्म-भूमि ब्रज थी। उनका वर्ण भी प्रायः ब्रज-जीवन से ही सम्बन्धित है। अतः ब्रजपति कृष्ण को प्राधान्य देते हुए भी विष्णु के अन्य अवतारों^६ के प्रति भी उन्होंने श्रद्धा का भाव ही प्रदर्शित

१. श्याम-सुरति कर राधिका, तकति तरनिजा तीर ।
असुवन करति तरौस को, खिनुक खरौंही नीर ॥२६२
२. नितप्रति एकत ही रहत, बैस-बरन-मन-एक ।
चहियत जुगलकिसोर लखि, लोचन जुगल अनेक ॥२३८
३. मेरी भव-बाधा हरी, राधा नागरि सोइ ।
जा तनकी भाई परै, श्यामु हरित-द्रुति होइ ॥१
४. चिर जीवी जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर ।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥६७७
५. मोर चन्द्रिका, श्याम सिर, चढ़ि कत करति गुमानु ।
लखिवी पाइन पर लुटति, सुनियतु राधा मानु ॥६७६
६. (अ) यह बरिया नहि और की, तू करिया वह सोधि ।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहि, कीने पार पयोधि ॥४०१
- (ब) जम-करि-मुँह तर हरि परयो, इहि धर हरि चित ताइ ।
विषय तृपा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाइ ॥२१

किया है। विष्णु के अवतार राम और कृष्ण में अभेद माना है। सभी जानते हैं कि गोध को तारने वाले राम थे, मुरारी नहीं किन्तु बिहारी लिखते हैं—

कौन भाँति रहि है विरदु, अब देखिवी मुरारि ।

बोघै मो सों आनि के, गोधे गोधहि तारि ॥३१

उपासना पद्धति के किसी मत-मतान्तर में न पड़ते हुए भी बिहारी ने विभिन्न उपास्यों को श्रद्धा की दृष्टि से देखने की उदारता दिखाई है। इन विभिन्न उपास्यों को भगवान् मान कर तथा सब जग को कृष्णमय देखते हुए, उन सबको किया गया प्रणाम केशव को ही किया गया प्रणाम है।^१ यह आत्मतोष प्रकट करते हुए बिहारी ने घोषणा की है—

अपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोर ।

ज्यों त्यों सचकौं सेबौ, एकै नंद किसोर ॥५८१

और इन्हीं नन्द-किशोर की मोहिनी-मूर्ति के हृदय में बस जाने पर समग्र जगत उन्हें तन्मय दिखाई देने लगता है। हृदय में बसे हुए श्याम जगत के प्रत्येक पदार्थ में प्रतिविवित होते दिखाई देने लगते हैं।^२ उनका लावण्यमय रूप बिहारी के मानसरोवर रूपी मन में मिलकर, पानी में धुले हुए लवण के सदृश हो गया है, जिसे कोटि यत्न करने पर भी कोई उसमें से निकाल नहीं सकता है।^३ मन की ऐसी एकतानतना में उन्होंने दुनियाँदारी में फसे जीवों की धनलोलुपता को वितृष्णा से देखा है और विपत्ति को नष्ट करने वाले 'जदुपति' को ही अपना सर्वस्व 'स्वीकार कर लिया है।^४ उनकी सम्पत्ति में यही ब्रजवासियों के परमोपार्जनीय धन है। किसी अभागे को ही ये नहीं रुचते हैं और जिसे ये रुचते नहीं हैं उसे मानसिक स्वस्थता मिलनी भी असम्भव है।^५ उनके विचार में दुनियाँ में सम्पत्ति की आवश्यकता इज्जत बनाये रखने के लिये है। यदि इसके बिना भी 'जदुपति' लज्जा रखे जायें तो फिर अनेक अवगुणों से भरी हुई सम्पत्ति को चाहना केवल बला मोल लेना है।^६ उनके इष्टदेव गोपाल सब पर अहेतुक दया करने वाले हैं। भक्तों की भली-बुरी करनी पर न तो वे ध्यान देते हैं और न जो उनसे विमुख रहा करते हैं उन पर कृपा

१. 'सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ।'

२. मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।

वसतु सुचित अन्तर, तऊ प्रतिविवित जग होइ ॥१६१

३. कीन्हें हू कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु ।

मो मन मोहन-रूप मिलि, पानी में कौ लौनु ॥१८

४. कोऊ कोटिक संग्रही, कोऊ लाख हजार ।

मो संपत्ति जदुपति सदा, विपति-विदारन हार ॥६१

५. ब्रजबासिन कौ उचित धन, जो धन रुचित न कोइ ।

सुचित न आयो, सुचितई, कहौ, कहाँ ते होइ ॥५६१

६. तो अनेक ओगुन भरिहि, चाहै याहि बलाइ ।

जो पति सम्पत्ति हूँ बिना, जदुपति राखै जाइ ॥४२१

करना ही छोड़ते हैं। उनकी इस कृपा रीति से अपनी इस बुरी करनी से संकुचित भक्त लज्जा के मारे सिर ऊंचा नहीं कर सकते।^१ वे गोपवेश धारी कृष्ण के उपासक हैं। उनके मन की यही एक साध है कि:—

सीस मुकट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।
इहि वानक मो मन बसौ, सदा बिहारी लाल ॥३०१

उनके मन में और आँखों में कृष्ण की कुछ मुद्रायें या छवियाँ घर कर गई हैं:—

भृकुटी मटकनि, पीत-पट-चटक, लटकती चाल ।
चलचख-चितवनि चोरि चितु, लियौ बिहारी लाल ॥३०२
अधर धरत हरि कैं, परत, ओठ-डीठि-पट-जोति ।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्र-धनुष रंग होति ॥४२०
मोर मुकट की चन्द्रकनि, यों राजत नंद-नन्द ।
मनु ससि सेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द ॥४१९
सखि सोहत गोपाल कैं, उर गुंजन की माल ।
बाहिर लसति मनौ पिये, दावानल को ज्वाल ॥३१२
सोहत ओढ़ें पीतुपटु, स्याम सलौने गात ।
मनौ नील मणि सैल पर, आतपु पर्यो प्रभात ॥६६८
मकराकृति गोपाल के, कुण्डल सोहत कान ।
घस्यो मनौ हिय-घर समर, ड्योढ़ी लसतु निसान ॥१०३

उनके नन्दकिशोर बिना कारण के ही कार्य सम्पादित कर देने वाले हैं। अपनी उपस्थिति से, जहाँ पहुँच जाँय, अकाल में भी सुकाल, बिना बरसात के भी पावसोल्लास ला देने वाले हैं।^२ वे केवल अनन्त सौन्दर्य से ही युक्त नहीं हैं, अनन्त शक्तिपुंज है। इस शक्ति से वे शरणागतों की रक्षा भी करते हैं^३ और उनके शत्रुओं का गर्व भी हरते हैं।^४ उनके इन्हीं गुणों पर रीझ कर, विहारी के हृदय ने, गोपाल को ही सब प्रकार से चुनने योग्य पाया है और उन्होंने भी “सब तजि भजि हरि” का प्रबोध देते हुये हृदय से अनुरोध किया है:—

मन-मोहन सों मोह करि, तू घनस्याम निहारि ।
कुंज विहारी सों विहरि, गिरधारी उर धारि ॥६४१

१. निज करनी सकुचेहि, कत सकुचावत इहि चाल ।

मोहूँ से नित विमुख त्यों, सनमुख रहि गोपाल ॥४२६

२. नाच अचानक ही उठे, बिनु पावस वन मोर ।

जानत हौं नंदित करी, यह दिसि नन्द किसोर ॥४६९

३. लोपे कोपे इन्द्र लों, रोपे प्रलय अकाल ।

गिरधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥५२१

४. प्रलय करन बरसन लगे, जुरि जलधर इक साथ ।

सुरपति गरबु हर्यो हरषि, गिरिधर गिरि घर हाथ ॥५४१

और ये सभी बातें विहारी के करने की थीं, सो करलीं । मन को जो जो भाया उसी के अनुरूप चित्तवृत्तियों को ढाल लिया किन्तु भक्त का भगवान से मिलन कभी होता नहीं है । अतः वियोग पीड़ा ही उसे हमेशा सहनी पड़ती है । वह विप्रयोग पीड़ा से मर्माहत होकर इष्ट के गुणों पर कभी खीझता है, कभी रीझता है,^२ कभी ऐठता है^३ कभी कष्ट-निवेदन करता है,^४ कभी आत्म भर्त्सना करता है,^५ कभी पश्चात्ताप करता है,^६ कभी प्रतिस्पर्धा करता है,^७ कभी चुनौती देता है,^८ कभी गुहार लगाता है,^९ कभी निरीहता व्यक्त करता है,^{१०} कभी क्षुद्रता दिखाता है,^{११} कभी कष्ट हरण की याचना करता है,^{१२} कभी मनुहार करता है,^{१३}

१. थोरे ही गुन रीझते, विसराई वहि बानि ।
तुमहुं कान्ह मानौं भये, आज-कालि के दानि ॥६८
२. मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
बसतु सुचित अन्तर तऊ, प्रतिविवित जग होइ ॥१६१
३. ज्यों व्है हों त्यों होउंगो, हों हरि अपनी चाल ।
हठु न करौ अति कठिन है, मो तारिवो गुपाल ॥७०१
४. कब को टेरतु दीन रह, होत न स्याम सहाय ।
तुम हूँ लागी जगत-गुरु, जग-नायक जग-वाय ॥७१
५. भजन कह्यो तातै भज्यो, भज्यो न एकौ वार ।
दूर भजन जातै कर्यो, सो तै भज्यो गवांर ॥३७१
६. जगतु जनायो जिहि सकलु, सो हरि जान्यो नाहि ।
ज्यों आखिन शिशु सबु देखियै, आखि न देखी जाहि ॥४१
७. मोहि तुम्हें बाढी बहस, को जीते जदुराय ।
अपने अपने विरदु की दुहूँ निवाहन लाज ॥४२७
८. कौन भांति रहिहैं विरदु, अब देखिवी मुरारि ।
बीधे मोसों आनि कै गीधे गीधहि तार ॥३१
९. नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि ।
तज्यो मनौ तारन विरदु, वारक वारन तारि ॥११
१०. हरि कीजत तुमसों यहै, बिनती वार हजार ।
जिहि तिहि भांति डर्यो रहों, पर्यो रहों दरवार ॥२४१
११. कीजै चित सोई तरौ, जेहि पतितन के साथ ।
मेरे गुन श्रीगुन गनन गनी न गोपीनाथ ॥२२१
१२. प्रगट भये द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ ।
मेरे हरो कलेश सब, केसव केसव राय ॥१०१
१३. तो बलिवै, भलियै बनी, नागर नंद किशोर ।
जो तुम नीकें को लखी, मो करनी की ओर ॥६२१

कभी क्रोध प्रकट करता है^१ और कभी इष्ट की प्रकृति पलटने पर मलाल करता है^२ इन अनेक भावोर्मियों में ऊँच डूब करती भक्त-हृदय की दीनता बड़ी मर्मस्पर्शिणी है यह जगत तो अन्धा है, दिव्य-दीनता के आनन्द को कोई जानता ही नहीं। वास्तव में यह दीनता श्लाघ्य है जो दीनबन्धु से सम्बन्ध स्थापित करा देती है। भक्ति-भाव-विभोर रस-सिद्ध विहारी के हृदय से, अनुपम भणिति भंगिमा को लिये ऐसी अनेक भाव-भीनी उक्तियाँ निकली हैं जो किसी भी भक्त कवि की उक्तियों से प्रतिद्वन्द्विता कर सकती है। उनमें कवि की भक्तात्मा भी बोलती है किन्तु कलाकार भी सतत जागरूक है।

कपटाचरण और बाह्याडंबर व्यक्ति की अक्षमता और हीनता ग्रंथि के परिचायक होते हैं। भक्त विहारी को भी हरि को हृदय धाम में लाने के लिये कपट-कपाटों से टकरा कर चीत्कार करनी पड़ी है:—

तौ लगु या मन सदन में, हरि आवै किहि वाट ।

विकट जटे जौ लगु निपट, खुटे न कपट-कपाट ॥३६१

उन्होंने राम को रंजित करने के लिये, अपने पर अनुरक्त करने के लिये, जपने की माला हाथ में ली, तप्त मुद्रादि छापें लीं, उपासना सम्प्रदायों में स्वीकृत तिलक लगाये, किन्तु इन सबसे कोई काम नहीं बना। राम प्रसन्न नहीं हुये और फिर भी अनेक नाच नाचने पड़े। उन्होंने इसके कारण की खोज की, पता चला मन-कच्चा था, वह राम में सच्चा अनुरक्त न था। विहारी की आत्मा को बड़ी पीड़ा हुई। अपने जैसे उन्हें अनेक दिखाई दिये। उनके लिये विहारी ने आत्मानुभव लिख दिया:—

जप माला छापे तिलक, सरै न एकौ काम ।

मन कांचै नाचै वृथा, सांचे रांचे राम ॥१४१

विहारी जिस प्रकार जप माला छापें और तिलक आदि बाह्याडंबर एवं कपटाचरणों की तुलना में सच्चे प्रेम को भगवान को प्रसन्न करने के लिये अनिवार्य समझते हैं उसी प्रकार तीर्थाटन की तुलना में 'हरि-राधिका' की उस 'तन-द्युति' में अनुराग रखना श्रयस्कर समझते हैं जिसके फलस्वरूप 'व्रज के केलि-निकुंज-मग-पग-पग पर प्रयाग हो जाते हैं'।^३ ईश्वरानुराग की इस पावन भूमि पर संचरण करती हुई उनके अनुरागी चित्त की गति भी अद्भुत हो गई है। चित्त जितना जितना इयाम रंग में डूबता जाता है उतना ही उतना उज्जल होता चला जाता

१. बन्धु भये का दीन के, को ताएयो जुदुराय ।

तूटे तूटे फिरत हो, भूठे विरद कहाय ॥६१

२. समै पाइ पलटै प्रकृति, को न तजै निज चाल ।

भो अकरन करुना करी, इहि कपूत कलिकाल ॥६६१

३. तजि तीरथ हरि राधिका, तन द्युति कर अनुराग ।

जेहि व्रज केलि-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग ॥२०१

है ।^१ किन्तु श्याम रंग में चित्त का डूबना न तो सहज काम है और न हर किसी के वश का काम है । उसके लिये तन मन को अनेक ताप भेलने पड़ते हैं । अनेकानेक कष्ट भेल कर ही भगवान का कृपा पात्र बना जाता है ।^२ और जिन पर कृपालु की कृपा हो जाती है वे मुँह लगे भी बन जाते हैं । उनका श्रद्धा भाव समता भाव का समकक्ष बनने लगता है । कहनी-अनकहनी का विचार फिर वे प्रायः नहीं कर पाते हैं और इसीलिये जिनकी वे प्रशंसा करते हैं उनसे परिहास भी कर जाते हैं और अपनी कमियों को कमी न मान कर तर्क द्वारा अच्छाई के रूप में रखने की कोशिश करते हैं । संख्य-भाव से प्रेरित होकर “वृषभानुजा” और “हलधर के वीर” आदि में श्लेष बल से राधा-कृष्ण में पशु प्रवृत्ति का आभास देकर परिहास^३ करने में दक्ष विहारी अपनी कुटिलता न छोड़ने के लिये उक्ति वैचित्र्य से परिपूर्ण तर्क प्रस्तुत करके अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं ।^४ कृष्णोपासक होते हुये भी वे राम को भी भगवान रूप में मानते हैं । राम कृष्ण में उन्हें कोई भेद नहीं मालूम देता है, हाँ, यह बात ठीक है कि राम का नाम उन्होंने भूले भटके ही लिया है ।^५ ‘हरिनाम’ का महत्व भी विहारी की दृष्टि में कुछ कम नहीं है । उनके मतानुसार संसार-सागर पार जाने के लिये ‘हरि-नाम की नौका’ के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।^६

सन्त कवीर के समान “कनक” और “कामिनी” की विहारी ने भी निन्दा की है ।^७ उनका विश्वास था कि न तो औरों के “गुनी-गुनी” कहने से कोई “निर्गुनी गुनी” हो सकता

१. या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि कोइ ।
ज्यों-ज्यों बूढ़ै स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्जवल होइ ॥१२१
२. मैं तपाय त्रय ताप तैं, राख्यो हियौ हमामु ।
मति कबहुँक आये यहाँ, पुलकि पसीजै स्यामु ॥२८१
३. चिर जीवौ जोरी जुरे, क्यों न सनेह गंभीर ।
को घटि, ऐ वृषभानुजा, ये हलधर के वीर ॥६७७
४. करौ कुवत जगु कुटिलता, तजौ न दीन दयाल ।
दुखी होउगे सरल चित्त, वसत त्रिभंगी लाल ॥४२५
५. अ— यह वरिया नहि और की, तू करिया वह सोधि ।
पाहन नाव चढ़ाई जिहि, कीन्हों पार पयोधि ॥४०१
- ब— ‘मन कांचे नाचे वृथा, सांचै राचै राम’ ॥१४१
६. पतवारी माला पकरि, और न कछु उपाउ ।
तरि संसार पयोधि कों, हरि नावें करि नाउ ॥३६१
७. अ— कनक कनक तैं सौगुनी, मादकता अधिकाय ।
वा खाये बीरात जग, या पाये बीराय ॥१६२
- ब— या भव पारावार कौं, उलंघि पार को जाय ।
तिय छवि छाया ग्राहिनी, गहै बीच ही आय ॥४३३

है^१ और न अपने प्रयास से गुणोत्कर्ष करते करते कोई “निगुनी गुनयुक्त” हो सकता है । भगवान का हाथ लगते ही “निगुनी गुन” युक्त हो जाता है और उनके हाथ से छूटते ही वह पुनः ‘निगुनी’ हो जाता है ।^२ यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणों से विहारी का सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवि होना ही सिद्ध होता है तथापि उनकी “सतसई” में एकाध दोहे ऐसे भी सुलभ हैं जिनमें कभी तो वे ब्रह्मज्ञानी अद्वैतवादी सा विचार व्यक्त करते हैं^३ और कभी निर्गुणोपासना का समर्थन ।^४ कभी मोक्ष की आकांक्षा व्यक्त करते हैं, कभी भगवान के गुणों में बंधने की अभिलाषा ।^५ मोक्ष की कामना करने वाले विहारी ने, भावावेश में ही सही, मुक्ति के प्रति अनादर भी प्रगट किया है ।^६ यद्यपि ये कुछ विचार विहारी के सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवि होने के विरोध में मत निर्धारण की चेतना देते हैं तथापि इनके आधार पर न तो उन्हें ब्रह्मज्ञानी अद्वैतवादी सिद्ध किया जा सकता है और न निराकारोपासक । भावावेश में (जिसमें मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं रहता है) अपनी रुचि के प्रतिकूल विचारों में भी उन्होंने यहां आस्था प्रगट करदी है किन्तु यह उनका प्रकृत रूप नहीं है । वे एक जागरूक कलाकार थे और हर सुन्दर भाव या विचार का समादर करते थे । समय-समय पर जिस किसी भी भाव या विचार ने उनके हृदय या बुद्धि को परिचालित किया उसे ही उन्होंने दोहे के साँचे में ढाल दिया । सतसई में प्राप्त इन भक्ति भाव प्रेरित उक्तियों के अन्तरंग एवं बहिरंग का निरीक्षण करने पर विहारी की भक्ति भावना के सम्बन्ध में कुछ निर्णय इस प्रकार लिये जा सकते हैं:—

“सतसई” में भक्ति भाव प्रेरित अनेक उक्तियाँ उपलब्ध हैं जिनमें से कुछ को भले ही विलासातिरेक से घबड़ाये हुये हृदय की लड़खड़ाती पुकार कह दिया जाय किन्तु अधिकांश उक्तियाँ भक्ति भावना की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित दिखाई देती है । जहाँ कहीं भी, क्षण भर के लिये, विहारी भक्ति भाव में आत्म विस्मृत हुये हैं उनके हृदय से ऐसे भाव भीने उद्गार निकले हैं कि उन्हें किसी भी भक्ति कवि के उद्गारों के समकक्ष रखने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती । अन्तर केवल इतना ही दिखाई देता है कि भक्त कवियों ने जिन भावों को विस्तार के साथ कहा है विहारी ने उन्हें संक्षेप में संकेतित कर दिया है । भक्त कवियों ने प्रगट करने के लिये अभिधा-

५३. गुनी गुनी सबके कहै, निगुनी गुनी न होत ।

सुन्यो कहूं तक अर्क तैं अर्क समान उदोत ॥३५१

५४. लटुवा लौं प्रभु कर गहैं, निगुनी गुन लपटाय ।

बहै गुनी कर ते छुटै, निगुनीयै वहै जाय ॥५०१

५५. मैं समझ्यो निरधार, यह जग कांची कांच सो ।

एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहां ॥१८१

५६. धूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तार न काल ।

प्रगटत निगुन निकट रहि, चंग रग गोपाल ॥४२८

५७. मोहैं जे दीर्ज मोखु, जो अनेक अधमन दियो ।

जो बांधे ही तोष, तो बांधी अपने गुनन ॥२६१

५८. जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति मुंह दीन ।

जो लहियै संग सजन तो, धरक नरक हू कीन ॥७५

शक्ति का व्यवहार किया है, विहारी ने लक्षणा शक्ति का । भक्त कवियों ने भाव को महत्वपूर्ण समझा है, विहारी ने शैली को । भक्त कवियों की रुचि भाव ग्रहिणी है, विहारी की चमत्कार-वादिनी ।

विहारी की भक्ति भावना के आलंबन राधा और कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति 'सतसई' में बहुधा हुई है किन्तु इन्हीं को लेकर लिखी गई अनेक उक्तियाँ भौतिक विलास की आधार शिला पर भी असंदिग्ध रूप से टिकी हुई हैं । उनकी इन उक्तियों में उज्ज्वल रस में निमग्न करने वाला भावोन्मेष प्रगट नहीं हुआ है अपितु वे अपनी इन उक्तियों में भगवद् विषयक रति के उस सामान्य स्तर पर खड़े दिखाई देते हैं जिस पर संसार का प्रत्येक मनुष्य जगत की यातनाओं से घबड़ा कर क्षण भर के लिये जा खड़ा होता है और भगवान के सामने अपने अपराधों एवं दुष्कृत्यों से पिंड छुड़ाने के लिये कभी क्षमा याचना करता है, कभी अनुनय विनय करता है ।

जीवन भर शृङ्गार या भौतिक रस की उपासना करने वाले विहारी ने विभिन्न धर्म सम्प्रदायों की उपासना पद्धति से अपनी प्रवृत्ति की परिपोषक सामग्री को ग्रहण करते हुये, अपनी भक्ति भावना को भी शृंगारिकता के एक अंग के रूप में अभिव्यक्त किया है । समाज के कोप से बचने के लिये, भक्ति भावना को, सामाजिक कवच के रूप में, अपनी रक्षार्थ, उन्होंने धारण कर लिया है । इसीलिये उनकी "सतसई" में नायक-नायिका के लिये, अनेक बार "हरि" और 'राधिका' शब्दों का व्यवहार किया है । सङ्कटों से घबड़ाकर भगवान की पुकार मचाने वाले मनुष्यों की भाव भूमि पर प्रायः खड़े रह कर भगवन्नाम का स्मरण करने वाले शृंगारी विहारी की भक्ति परक उक्तियों में "सतसई" में संकेतित सभी धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति उदार दृष्टि दिखाई देती है । किसी परिनिष्ठित सम्प्रदाय के विचारों का उनकी सतसई में न तो सैद्धान्तिक प्रतिपादन मिलता है और न केवल किसी एक सम्प्रदाय की मान्यताओं के प्रति सविशेष आग्रह । केवल एक स्थान पर ब्रह्मज्ञानी अद्वैतवादी सा विचार उन्होंने प्रगट किया है और एक स्थान पर निर्गुणोपासना का समर्थन किया है । युगलोपासना के प्रति उनका विशेष आकर्षण है तथापि वे गोपवेशधारी गोपाल कृष्ण के सगुणोपासक भक्त कवि हैं । साम्प्रदायिक मत मतान्तरों के पचड़े में न पड़ने की उनकी सहज प्रवृत्ति है । इसीलिये उन्होंने जहाँ एक ओर राम और कृष्ण में अभेद माना है वहाँ दूसरी ओर रामावतार की कथा को कृष्णावतार के साथ संलग्न भी कर दिया है । देवोपासना में उनका मत "सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति" में विश्वास रखने वाला है ।

विहारी की भक्ति परक उक्तियों में व्यास रीझ, खीझ, ऐठ, कष्ट निवेदन, आत्म-भर्त्सना, मनुहार, प्रतिस्पर्धा, चुनौती, गुहार, पुकार, उपालम्भ, कष्ट निवारण याचना, निरीहता, पश्चात्ताप, क्षुद्रता एवं प्रभु की प्रकृति बदल जाने का सन्देह आदि भाव एवं वृत्तियाँ विलासातिरेक से घबड़ाये हुये हृदय की लड़खड़ाती पुकार मात्र नहीं हैं । इनमें विहारी के हृदय की सच्चाई एवं विश्वास प्रगट हुये हैं । इनमें भावों की गम्भीरता भी है और उक्ति वैचित्र्य भी ।

सन्तों द्वारा प्रशंसित एवं निन्दित विषयों को भी विहारी ने अपनी आँखों से देखा है और अन्तिम निष्कर्ष में सन्तों के समान ही पाया है । तीर्थटन एवं बाह्याडम्बर प्रवृत्ति को भी उन्होंने सन्तों की आँखों से ही देखा है ।

प्रधान गुण के आधार पर ही पदवी देने का न्याय स्वीकार करके निर्णय लेने को यदि कहा जाय तो यही निष्कर्ष देना समुचित होगा कि विहारी पहले कवि थे, भक्तवाद में श्रीर कवि भी वे भौतिक रस के थे। उनकी “सतसई” में प्राप्त भक्ति परक उक्तियाँ प्रायः सामान्य जन की भक्ति परक उक्तियों के समकक्ष है। उनके कुछ भक्ति भाव में सिक्त दोहों को देखकर उन्हें “परम भक्त” या “भक्त प्रवर” घोषित करना समुचित नहीं है। ऐसा करने पर “सूर” और “तुलसी” जैसे भक्ति कवि भी शृंगारी कवियों की श्रेणी में कभी भी घसीटे जा सकते हैं क्योंकि इन दोनों कवियों की कृतियों में शृंगार रस की पर्याप्त सामग्री सुलभ है।

अतः हम संक्षेप में कह सकते हैं कि विहारी की अधिकांश भक्ति परक उक्तियाँ लौकिक सम्बन्धों एवं व्यापारों के माध्यम से उज्ज्वल रस का रसाभास प्रस्तुत करती हुई भगवान् कृष्ण की नर-लीला को केवल नर-लीला के सामान्य स्तर पर प्रतिष्ठित करती है। इनमें सतोद्रेक भी होता है और लौकिक सम्बन्धों के प्रति रागात्मक वृत्ति का जागरण भी। इनके पठन श्रवण से त्रय ताप पीड़ित मन को शान्ति भी मिलती है और कामोत्तेजना भी। इनमें भगवद् लीला को नरलीला के अनुरूप ढाला गया है। यहाँ नर को नारायण के नहीं, नारायण को नर के धरातल पर उतारा गया है। इनमें भक्ति का भाव सामान्य है। इनमें व्याप्त भक्ति भावना प्रायः कवि की शृंगारिकता का अंग बनकर आई है। उनमें अनुभूतियों की साधना भी लक्षित होती है और कला नैपुण्य भी। कवि की दृष्टि अनुभूति की गम्भीरता की अपेक्षा उक्ति वैचित्र्य एवं वाग्विदग्धता पर अधिक रहती है। इनमें “विछुरन को दुख” चमत्कार और दूर की सूझ से भरा हुआ है। वेदना की विवृति यहाँ खिलवाड़ बन गई है। संयोग क्रीड़ाएँ भी यहां नियंत्रण स्वीकार नहीं करतीं और प्रायः उच्छृङ्खलता की पर्याय बनी हुई है।

ग्रन्थालोचन

(श्री राजेन्द्र रंजन एम० ए०)

श्रीरामकृष्ण काव्य—

रचयिता—प० हृषीकेश चतुर्वेदी, प्रकाशकः रत्नदीप प्रकाशन, आगरा।

वास्तव में कविरत्न हृषीकेश जी अद्भुत कवि हैं, उनका काव्य सचमुच अनोखा है, जहाँ कला की दृष्टि से वह कला की परिधि को भाँक रहा है, वहीं उसका भाव पक्ष भी हृदय उद्देलित किये बिना नहीं रहता। श्री रामकृष्ण काव्य आधुनिक ब्रज साहित्य की ही नहीं हिन्दी की निधि है। यह काव्य दोनों ओर से पढ़ा जा सकता है; पंक्तियों को एक ओर से पढ़ने पर श्रीरामचरित वर्णन है और दूसरी ओर से पढ़ने पर श्रीकृष्ण चरित इस पर क्या मजाल कि दोनों के लीलाक्रम में व्यतिक्रम हो जाय, लीजिये सीधा पढ़िये—

चैन सों नचे, स-हास, हेर हीय में यही।

वैसे ये स वैन खोय, तू सु-तासु गान गा ॥

पंक्तियाँ उलटी पढ़ने पर—

हीय में यही रहे, सहास चैन सौ नचै ।

गान गा सुतासु तूइ, खो न बैस ये सबै ॥

महा पंडित राहुल सांकृत्यायन ने हृषीकेश जी के कृतित्व पर यह यथार्थ ही लिखा है कि “संस्कृत में ऐसी कवितायें की गई हैं । हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है और सफल भी ।”

एक बिन्दु : एक सिन्धु—

संपादक— श्री देवदत्त शास्त्री, प्रकाशक : श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संघ, मथुरा ।

स्व० श्री जुगल किशोर बिरला आर्य संस्कृति के उन आदर्श अग्रदूतों में थे, जिन्होंने देश की संस्कृति कला और शिल्प को विश्व की आँखों के कुतूहल, बुद्धि के विचार, हृदय की आस्था एवं वाणी की स्तुति का विषय बनाया । स्वदेश में तो वे अपने उदार-चरित से जन-मन-मानस में पद्म की भाँति प्रफुल्लित और सुरभित हुए ही । सचमुच श्री जुगल किशोर आर्य संस्कृति के वह ‘मानक बिन्दु’ थे जिसकी सिन्धु’ जैसी ‘हेरन हार हिरान’ रूपा गंभीरता के साथ लेने के प्रयत्न ने सेवा संघ को भी यशस्वी बनाया । वास्तव में ‘एक बिन्दु : एक सिन्धु’ “त्यागायसम्भृतार्थानाम्” का वह उच्च आदर्श प्रस्तुत करता है, जहाँ अदृष्ट सपदा में भी सादा जीवन जल में कमल की भाँति खिलता है । ‘एक बिन्दु : एक सिन्धु’ में देश के जाने माने शीर्षस्थ विद्वानों, विचारकों और मनीषियों के विचार संकलित हैं । जीवन-जान्हवी और ‘स्मृति मंदाकिनी’ में जहाँ श्री बिरला का व्यक्तित्व लोल-लहरों के रूप में अठखेलियाँ कर रहा है, वहीं ‘संस्कृतिसेतु’ के बीस महत्त्वपूर्ण हिन्दू संस्कृति सम्बन्धी लेखों ने उदात्त पथ प्रशस्त किया है । ग्रन्थ की मुद्रण-सज्जा एवं आकर्षक चित्र आँखों को लुभा लेते हैं । इत्यम् “एक बिन्दु : एक सिन्धु” ने हिन्दी में निश्चयमेव एक और उत्कृष्ट जीवन-साहित्य-प्रस्तुत किया है ।

हिन्दी में अभिनन्दन या स्मृति ग्रन्थों की दो परंपरायें उभरी हैं । एक में तो ‘अभिनन्दनीय’ के व्यक्तित्व कृतित्व सम्बन्धी निबन्ध आदि ही संपादित होते हैं और दूसरी परम्परा में ग्रन्थ के चौथाई भाग में अभिनन्दनीय व्यक्ति का व्यक्तित्व तथा तीन चौथाई भाग में अभिनन्दनीय व्यक्ति के प्रिय विषय का एक कोश ही संपादित कर दिया जाता है । प्रस्तुत ग्रन्थ स्मृति ग्रन्थों की पहली परम्परा के ही अधिक निकट है । यदि इस ग्रन्थ में ‘संस्कृति सेतु’ के साथ ही भारतवर्ष में साकार विग्रह उपासना से लेकर मूर्तिकला के विकास की कहानी एवं देख के स्थापत्य (स्तूप, स्तम्भ, चैत्य, विहार, मंदिर, भवन आदि) का विस्तृत प्रामाणिक और पुरातात्विक इतिहास प्रस्तुत किया जाता तो इस पृष्ठभूमि में जहाँ श्री बिरला का व्यक्तित्व निखरता और स्थापत्य कला के लिये उनके योगदान का मूल्यांकन होता वहीं इस ग्रन्थ की उपयोगिता और महर्घता बढ़ने के साथ इस दिशा में एक अनूठा ही कार्य संपन्न हो जाता ।

न्यू नायिका भेद—

रचयिता— स्व० द्वारका प्रसाद गुप्त ‘रसिकेन्द्र’,

प्रकाशक— चतुर्वेदी प्रकाशन समिति, कमतरी, आगरा ।

स्व० रसिकेन्द्र जी, स्व० राष्ट्रवि मैथिलीशरण गुप्त के निकट सम्बन्धी थे । उनकी ब्रजी

रचनायें बड़ी सुन्दर और सरस हैं । उनकी पारिजात विजय, बालिवध, गोभक्त दिलीप रसिकेन्द्र रंजन आदि अनेक रचनाओं में न्यू नायिका भेद भी विशेष मुखर और रोचक है । नये युग से प्रभावित नारी के नग्न सौंदर्य और फैशन परस्ती से ऊब कर उन्होंने यह रचना की—

न्यू नायिका चरित्र कों लिखत लगत है लाज ।

धन्य जानि हों, जाइ जो किंचित सुधर समाज ॥

किन्तु इस परिवेश में उनकी उक्तियाँ मीठे व्यंग के रूप में खूब फबीं । पार्क प्रेमिणी, ब्रह्मावसिनी, प्रचंडिनी, लीला विहारिणी, निखटदू पतिका, कौंसिला, अनमेलिनी आदि नायिका हँसाते-हँसाते लोट पोट कर देती हैं । पार्क प्रेमिणी कह रही है—

आपके हाथ में हाथ मिलाय कें, साथ में सैर करौं मनमानी ।

मेंमन कौ लख नित्य कौ नैम, भई पिय पार्क के प्रेम दिवानी ॥

देश दर्पण नेहरू जी के समर्पण—

रचयिता—ब्रजकोकिल श्री अमृत लाल चतुर्वेदी, शोतला गली, आगरा ।

‘देश दर्पण नेहरू के समर्पण’ में ब्रज और ब्रजी के सरस कवि अमृत लाल जी की सन् ४८ से ५१ तक रचीं उत्कृष्ट राष्ट्रीय रचनाओं का सुन्दर संकलन है । इन ओजस्वी रचनाओं में देश की दुर्दशा के प्रति कवि की आत्मा के विद्रोह का स्वर प्रखर हो उठा है । स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे देश के नैतिक बल, आत्मिक बल, आध्यात्मिक बल, ज्ञानबल, स्वाभिमान बल तथा संगठन बल का कितनी तेजी के साथ ह्रास हुआ, इसका तीखा चित्र हमें इस ‘दर्पण’ में सहज ही देख जाता है । हमने भारतीय समाज की सशक्त रचना को तोड़ तो दिया, किन्तु उसका पुनर्निर्माण न कर पाये इसका पश्चात्ताप अमृतलाल जी की इस रचना में स-मूर्ति हो गया है । यद्यपि इसे लिखने में कवि की लेखनी सकुचाती है—

लिखत, पै लिखतहि हिया डरात ।

अपनी जांघ उघारत जग में अपनी लाजहि जात ॥

किन्तु ‘सुद्ध भाव सौं प्रेरित हूँ कै’ वह सकती भी नहीं और पश्चात्ताप से विगलित होकर कह उठती है—

पायी हम स्वराज का बढ़िया ।

घी के भाव साग पय गेहूँ गेहूँन मोल लकड़िया ।

×

×

×

का जानें का दई ठई है ।

जित देखी तित चोर बजारी उच्छृङ्खलता फेल रही है ॥

मार काट धमकी औ हत्या कहा यहाँ अब कसर रही है ।

काम चोर हैं पद अधिकारी स्वारथ सरिता उमड़ रही है ॥

×

×

×

निज निज स्वारथ बजत ढापली मतलब ही कौ राग ।
 सूधी धँसतु आपनी बाँबी सुनियत कारौ नाग ॥
 इनकी बक्रचाल घर फूँकी देस भरे में आग ।

इतना ही नहीं इन अवसर वादियों को देख कर तो कवि की वाणी स्तंभित सी हो जाती है और यही कहना आता है कि—

सबसों नीके अवसर वादी ।
 भीतर वस्त्र विदेसी पहरेँ बाहर लादी खादी ॥
 कबहूँ या दल कबहूँ बा दल पूरन है आजादी ।
 चाहेँ देस रसातल पहुँचै भलै होइ बरबादी ॥

और इन अवसरवादी आदर्श हीन नेताओं को जब चुनाव में घर-घर भटकते देखते हैं तो कवि का व्यंग कटु भी बन जाता है—

अब दिन बोट लैन के आए ।
 जिनके दरस देवलौँ दुरलभ दूहें पते न पाए ॥
 ते जूता चटकावत घर-घर पग गिर हा हा खाए ।

इस प्रकार 'देश दर्पण' में देश की वर्तमान दशा का सजीव प्रतिबिम्ब है चोरबजारी, भ्रष्टाचारी, जातिवाद आदि अनेक तथ्यों पर दृष्टि डालते हुए जब कवि को इस सब की इन्तिहा नहीं मिलती तो अन्त में कवि यही कहता है—

अमृत कौन की कहिये ।
 देश कूप जब भाँग गिरानी क्यों न मौन गहि रहिये ॥

इस प्रकार ब्रजी की इस महत्त्व पूर्ण कृति में राष्ट्र का, युग का जीवन सवाक् हो गया है । ब्रजी में राष्ट्रीय विषयों पर जो रचनायें हुई हैं, निश्चय ही 'देश दर्पण' अपनी सरल सहज ब्रजभाषा, रचना कौशल, शैली वैविध्य तथा सचाई के कारण उनकी अग्रिम पंक्ति में स्थान पा गयी है ।



जब लौं बिरहा को बयार बली

(श्री ब्रजनन्दन 'बृजेश' राठ (हमीरपुर)

जमुना-जल भार भयो अवतो

नहि भावत हार-कल्लार-गली ।

बहु फूल त्रिशूल भये हमको

सपनेहु न सूझत रार-रली ॥

मन-प्राप्त 'बृजेश' नहैं बस में

बस नैनन सों जल-धार चली ।

जनि कोउ बसन्त की बात करौ

जबलों बिरहा को बयार बली ॥

भारत पर यूनानी आक्रमण क्यों और कैसे ?

(श्री वृन्दावनदास)

सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण क्यों किया इसे जानने के लिये हमें तत्कालीन पश्चिमी इतिहास पर दृष्टिपात करना होगा । असीरिया के साम्राज्य ने आर्यों का दक्षिण की ओर बढ़ाव रोक दिया था और वे उत्तर और पूर्व की ओर बस गये थे । उत्तर की ओर बसने वाले आर्य मेदी (Medes) और पूर्व की ओर बसने वाले ईरानी कहलाये । मेदियों ने चालिडयनों की सहायता से असीरिया के साम्राज्य को उखाड़ फेंका और वे आरम्भ में ईरानियों से अधिक शक्तिशाली थे ।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में मेदियों और ईरानियों में दो महान व्यक्ति हुए (१) जोरास्टर, (२) कुरु (Cyrus) । जोरास्टर मेदी था । उसने एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसका आशय था कि यथार्थता द्वैत है, भलाई और बुराई का संघर्ष है, मित्रस् के साथ अहुरमज्दा का अहरियन् से संघर्ष है । जोरास्टर ने अपना धर्म मेदियों में फैलाया परन्तु उन्होंने और विशेषतया राजा और उसके सामन्तों ने उसकी ओर ध्यान न दिया । अतः जोरास्टर मेदियों में अपने धर्म की अधिक सफलता न देख कर ईरान चला गया था । उसे ईरानियों से अपने मत के विषय में यह जानना था कि वे उसे कहीं तक पसन्द करते हैं । ईरान में कुरु बड़ा विवेकशील और महत्वाकांक्षी शासक था । वह ईरानियों और मेदियों को मिला कर एक ऐसा सुदृढ़ राष्ट्र बनाना चाहता था जिसका कोई मुकाविला न कर सके । मेदियों और ईरानियों में बहुत सी बातें सामान्य थीं । उसने जोरास्टर द्वारा प्रतिपादित धर्म को मेदियों और ईरानियों के मिलाने का एक महान साधन समझा ।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में विश्वभर में धार्मिक सुधारणा की लहर दौड़ गई । भारत में महात्मा बुद्ध एक नये धर्म की स्थापना कर रहे थे । यहूदियों ने जहोवा को विश्व का देवता मानने का प्रचार किया । थेल्स ने एशिया माह्नर में पाश्चात्य दर्शन का उद्घाटन किया । चीन के सबसे बड़े धार्मिक नेता और दार्शनिक के रूप में लाओत्से और कनफ्यूसियस इसी काल में हुए । ईरान में जोरास्टर ने उस धर्म की स्थापना की जो बहुत काल तक रहा और आज तक भारत के पारसियों में विद्यमान है ।

अब ईरानियों (आर्यों) में साम्राज्य-स्थापना की महत्वाकांक्षा का उदय हुआ । कुरु ने बहुत शीघ्र मेदियों और ईरानियों को मिला कर एक राष्ट्र कायम किया । फिर उसने समीपवर्ती लीडिया के राज्य पर चढ़ाई करके उसे अपने राज्य में मिला लिया । लीडिया का राजा संसार का सबसे बड़ा धनी राजा समझा जाता था । इसके बाद कुरु ने अपनी नजर बैबिलोनियाँ की ओर उठाई । बैबिलोनियाँ का साम्राज्य उस समय बड़ा शक्तिशाली था । वहाँ का तत्कालीन शासक साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तो महान था परन्तु उसमें अपने साम्राज्य को कायम रखने की राजनीतिक क्षमता न थी । फलतः कुरु शीघ्र ही बैबिलोनियाँ के साम्राज्य का भी स्वामी हो गया । अब कुरु की अधीनता में एक महान साम्राज्य हो गया ।

इस महान साम्राज्य का आधिपत्य प्राप्त करके ईरानियों को उसे अब सभ्य और सुसंस्कृत बनाना था। वैबीलोनियों की सभ्यता और संस्कृति उनको विरासत में मिली थी। सम्राट कुरु ने अपने साम्राज्य का विस्तार भारत की ओर भी करना चाहा। उसने ५५० ई० पूर्व के लगभग मकरान के मार्ग से भारत पर आक्रमण कर दिया। सिन्ध के राज्यों की ओर से उसे कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप उसे वापिस लौटने को बाध्य होता पड़ा। दूसरी बार अपने पुनः काबुलघाटी के मार्ग से आक्रमण किया तथा कपिशा नगरी को नष्ट करके अश्वकों और पक्थों के गणतन्त्रों को पराजित किया। यूनानी इतिहासकार स्ट्रैबो के अनुसार अश्वक और पक्थ गणराज्य सम्राट कुरु के करदाता थे। ऐसा प्रतीत होता है कि क्षुद्रक गण भी सम्राट कुरु के अधीन हो गये थे।

सम्राट कुरु के बाद उसके पुत्र काम्बुजी ने मिथ्र पर आक्रमण कर उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इस वंश के सम्राट डेरियस या दारयवहु के समय में ईरानी साम्राज्य उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया था। दारयवहु के राज्यकाल में भारतवर्ष पर भी ईरानी आक्रमण हुआ। गंधार कम्बोज, पश्चिमी पंजाब और पूरे सिन्ध पर ईरानियों का आधिपत्य हो गया। भारत में जीते हुए ये प्रदेश सम्राट दारयवहु के इक्कीस प्रान्तों में से एक प्रान्त के अन्तर्गत थे। जिस प्रकार ईरानी साम्राज्य के २१ प्रान्तों में प्रत्येक एक क्षत्रप द्वारा शासित होता था उसी प्रकार भारतीय प्रदेश भी एक प्रान्त के अन्तर्गत एक क्षत्रप के अधीन था। ईरानी साम्राज्य का भारतीय प्रान्त उसके अन्य सब प्रान्तों की अपेक्षा अधिक समृद्ध था। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हीरोडोटस के अनुसार इस प्रान्त से दस लाख सुवर्ण मुद्रा के लगभग वार्षिक कर ईरान के राज्यकोष को प्राप्त होता था। इससे प्रतीत होता है कि उस समय ये प्रदेश बड़े समृद्धिशाली थे।

दारयवहु (डेरियस) के राज्य की उत्तरी सीमाओं पर सीथियनों के बराबर आक्रमण होते रहते थे। वह इन दलों से बड़ा परेशान था। उसके जासूसों ने खबर दी कि इन दलों का उत्पत्ति स्थान कास्पियन सागर का निकटवर्ती प्रदेश है। डेरियस ने सोचा कि इन आक्रामकों का दमन उनके घर पर ही किया जाय। परन्तु अपने इस प्रयास में उसे यूनानियों से संघर्ष में आना पड़ा। वस्तुतः यूनानियों की उत्पत्ति भी भारतीय आर्यवंशों से हुई थी अर्थात् वे भी आर्य जाति के ही थे।

यूनानियों का भी एक तन्त्र था। उनके देवी देवता भी थे। वे बौद्धों की तरह दुःख और निर्वाण की चिन्ताओं में ग्रसित न थे। वे जीवन की वास्तविकता और यथार्थता की ओर उन्मुख थे। इनके कई सम्प्र और समुन्नत राष्ट्र थे परन्तु उनमें अधिकांश गणराज्य (नगर-राष्ट्र) थे। यूनानी लोग नगरों में रहना पसन्द करते थे। उनमें व्यक्ति को विचारों की स्वतन्त्रता थी। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू (एरिस्टोटिल) आदि उनके दार्शनिक नेता थे। पैथागोरस भी जो पुनर्जन्म के भारतीय सिद्धान्त को मानता था यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक था।

यूनानी लोग संगीत और खेलों के प्रेमी थे। जगद्धिख्यात ओलिम्पिक खेलों की स्थापना ईसा पूर्व ८ वीं शताब्दी में ही हो गई थी। यूनानियों के ऐथेंस और स्पार्टा दो महत्वपूर्ण नगर थे। ऐथेंस में गणतन्त्र और स्पार्टा में राज्यतन्त्र का विकास हुआ। ऐथेंस की प्रजातन्त्र-पद्धति

आधुनिक बहुत सी पाश्चात्य प्रजातन्त्र पद्धतियों की जननी है । आधुनिक पाश्चात्य गणतन्त्रात्मक पद्धतियों ने अत्यन्त प्राचीन यूनानी प्रजातन्त्र पद्धति से प्रेरणायें ली हैं ।

डेरियस की सेनाओं ने जब योरपीय प्रदेशों की सीमाओं पर अपना पग रक्खा तो यूनानियों ने इसे अपनी प्रभुसत्ता को चुनौती समझा और प्रतिरोध करने का निर्णय लिया । परन्तु डेरियस ने उनके विरोध की उपेक्षा की और अपनी सेनाओं को आगे बढ़ने का आदेश दिया । उसकी सेनाएँ डैन्यूब पार करके सीथियनों से भिड़ने के लिए आगे बढ़ीं । परन्तु सीथियनों ने उसकी सेनाओं से कहीं भी मैदानी लड़ाई नहीं लड़ी । वे छुटपुट युद्ध करते, लूटमार और हत्याएँ करके जंगलों में भाग जाते । आक्रमण करके वे ऐसे स्थानों में जाकर छिप जाते जहाँ ईरानी पहुँच ही न सकते । निदान डेरियस ने उनका पीछा छोड़ दिया और यूनानियों से भिड़ने के लिए कुछ सेनाएँ मैसिडोनियाँ और थ्रेस में छोड़ दीं । उसने यूनानी वेड़े से टक्कर लेने के लिए फिनीशियनों का एक समुद्री वेड़ा भी तैयार किया । भिड़न्त हुई परन्तु यूनानियों ने फिनीशियन वेड़े को तबाह कर दिया । फलतः डेरियस को अपनी सेनाएँ वापिस बुलानी पड़ीं । इस अभियान में उसको काफी क्षति उठानी पड़ी । यूनानी कुशल नाविक थे, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत यूनानी नाविकों ने चाँदी के टुकड़ों के लिए लड़ाई में उतरने वाले फिनीशियन नाविकों पर बड़ी शानदार विजय प्राप्त की ।

इस घटना के उपरान्त डेरियस ने इस प्रयास को छोड़ दिया और अपने विशाल साम्राज्य की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया । उस समय उसका साम्राज्य डैन्यूब से इन्डस और लीबिया से मध्य एशिया तक फैला हुआ था और पाश्चात्य ऐतिहासिकों के मतानुसार उसका यह साम्राज्य उस समय से पूर्व इतिहास गत सभी साम्राज्यों से बड़ा था । डेरियस एक महान् सेनापति, संगठन कर्ता और विद्वानों का आश्रयदाता था ।

डेरियस के पुत्र एवं उत्तराधिकारी क्षह्यार्थ ने यूनानियों से युद्ध जारी रखने का निश्चय किया । वह उन्हें सदा के लिए दमन कर देना चाहता था । एतदर्थ उसने एक विशाल सेना जिसमें उसके विशाल साम्राज्य के प्रत्येक भाग से आये हुए सैनिकों ने भाग लिया तैयार की । फिनीशियन लोग संसार के सबसे अच्छे नाविक समझे जाते थे, उनका एक सुदृढ़ समुद्री वेड़ा भी बनाया । भारतवर्ष से हाथियों की एक टुकड़ी भी सेना की सहायतार्थ पहुँची ।

इस विशाल सेना से पहिले तो यूनानी लोग भयातुर हुए परन्तु फिर उन्होंने साहस बटोर कर प्रतिरोध का ही निश्चय किया । सर्वप्रथम ईरानियों ने थेबीज ले लिया । ऐथैन्स निवासियों ने उसको छोड़ दिया और ईरानियों ने नगर को ध्वस्त कर उसमें आग लगा दी । उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि विजयश्री ईरानियों के हाथ लग जायगी परन्तु भाग्य ने यूनानियों का साथ दिया । समुद्री वेड़ों की भिड़न्त में फिनीशियनों ने फिर मुँह की खाई और एक बार फिर ईरानियों को उनकी वजह से मात खानी पड़ी । मुहान्तों के बन्द हो जाने से क्षह्यार्थ की सेनायें कट गईं और उसने बड़ी कठिनता से अपनी सेनाओं को वहाँ से निकाला ।

यद्यपि ईरानियों का यूनान पर यह अन्तिम प्रयास था तथापि उनके आक्रमणों ने यूनानियों के हृदयों में बड़ी कटुता के भाव उत्पन्न कर दिये थे । उनमें प्रतिहिंसा और बदले की भावना जाग्रत होगई थी । वहाँ के कवि, साहित्यकार और लेखकों ने अपनी कृतियों से इस अग्नि में घी का काम किया । वे निरन्तर प्रतिशोध के लिए राष्ट्रीय भावनाओं को उभाड़ते रहे । लेकिन बदला लेने का काम तो किसी ग्रीक द्वारा न होकर एक मैसिडोनियन द्वारा सम्पन्न होना था ।

डेरियस के आक्रमण के समय मैसिडोनियाँ एक महत्वहीन राज्य था परन्तु फिलिप्स के अधीन वह एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली राज्य बन गया । फिलिप्स एक बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी शासक था और ग्रीकों की तरह उसे बड़े साम्राज्य से घृणा न थी अपितु वह ग्रीकों और मैसिडोनियनों की सम्मिलित शक्ति से स्वयं एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने का पक्षपाती था । उसे ईरान की समृद्धि और शक्ति के प्रति ईर्ष्या थी । वह ग्रीकों की ईरानी साम्राज्य के प्रति प्रतिशोध की भावना का लाभ उठाकर ईरान के विरुद्ध एक सैनिक अभियान करना चाहता था । इसके लिए उसने अपनी सेना का पुनर्गठन किया और आक्रमण की नई पद्धति का आविष्कार किया जो मैसिडोनियन फैलैन्क्स के नाम से विख्यात हुई ।

जब फिलिप्स ने अपने नेतृत्व में ईरान पर ग्रीकों की चढ़ाई का विचार किया तो ग्रीकों ने उसका उपहास किया कारण ग्रीक लोग अपने को मैसिडोनियनों से अधिक सम्य और सुसंस्कृत ही नहीं समझते थे अपितु उनको असम्य और जंगली कहकर भी सम्बोधित करते थे । इस पर ईसापूर्व ३३८ में फिलिप्स ने ग्रीकों पर चढ़ाई कर दी और बहुत थोड़े युद्ध के बाद थेबीज और एथेन्स पर अधिकार कर लिया । निदान ग्रीकों ने फिलिप्स को अपना नेता मान लिया और फिलिप्स ने भी उनसे भाई चारे का बर्ताव किया और उनकी स्वतन्त्रता उनकी लौटा दी ।

जब फिलिप्स ईरान पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था तभी ई० पू० ३३६ में उसके ही किसी अधिकारी द्वारा उसकी हत्या कर दी गई और उसके बाद उसका पुत्र सिकन्दर जो उस समय केवल २० वर्ष का था उसका उत्तराधिकारी हुआ ।

अपने बाल्यकाल से ही सिकन्दर ने अरिस्टोटिल को अपना गुरु माना । यद्यपि ये दोनों ही महान् थे तथापि दोनों की प्रवृत्तियाँ भिन्न थीं । अरिस्टोटिल एक महान् दार्शनिक और वैज्ञानिक था जब सिकन्दर एक अत्यन्त साहसी और वीर सैनिक । अरिस्टोटिल नगर राष्ट्रों की प्रजातन्त्रीय प्रणाली का कट्टर समर्थक था जब कि सिकन्दर विश्व विजय और एक विशाल साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देख रहा था ।

सिकन्दर महान्

ईसा पूर्व ३३६ में राज्यारोहण के उपरान्त सिकन्दर ने शीघ्र ही यूनानी थल सेना और जल सेना को पुनर्व्यवस्थित किया । ३३४ ई० पू० में उसने ईरान पर आक्रमण कर दिया । उस समय परशियन सम्राट दार्यवहु (डेरियस) तृतीय ईरान का सम्राट था ।

डेरियस तृतीय एक निर्बल एवं विलास प्रिय सम्राट था । उसका ईसस में सिकन्दर से युद्ध हुआ । उस युद्ध में डेरियस अपने अन्तःपुर की स्त्रियों को भी लेकर चला था और जिस समय वह युद्ध से भागा अपनी माँ, स्त्रियों और पुत्रियों सभी को विजेताओं की दया पर छोड़ गया । वे सब की सब मैसिडोनियनों के हाथ लगीं । ईसस की लड़ाई के बाद सिकन्दर ने ईरान के समर्थकों की शक्ति को घटाना शुरू कर दिया और जिनसे उसे विरोध की आशङ्का थी उनको समाप्त कर देना ही उसने उचित समझा । सबसे कड़ा विरोध उसे फिनीशियनों से सहना पड़ा । उसने उनके दो प्रबल गढ़ टायर और सिडोन अपने अधिकार में कर लिये और इसके बाद उनका प्रतिरोध शान्त होगया ।

फिनीशियनों से निपटने के बाद उसने मिश्र पर आक्रमण कर दिया । मिश्र के लोग कई पीढ़ियों से ईरान की दासता से क्षुब्ध थे । उन्होंने सिकन्दर को अपना मुक्तिदाता समझा और

उसका शानदार स्वागत किया। जब वह मिश्र के देवता एमन के दर्शन करने गया तो मन्दिर के पुजारियों ने मिश्र देवता एमन और यूनानी देवता ज्यूस को एक ही बताया और उसी दिन से अपने देवता का नाम ज्यूस-एमन रख दिया। उन्होंने सिकन्दर को ज्यूस का पुत्र देवता कह कर गौरवान्वित किया। उसी समय से सिकन्दर अपने को देवता समझने लगा और उसकी अहम्मन्यता बहुत बढ़ गई। उसने अपने नाम से एलैक्जैण्डरिया नामक नगरी की स्थापना की।

इसके बाद ३३१ ई० पू० में सिकन्दर का परिशया (ईरान) से अरवेला में अन्तिम युद्ध हुआ। डेरियस फिर मैदान छोड़ कर भागा परन्तु इस बार उसी के एक अधिकारी ने उसकी हत्या कर दी। अब समूचा ईरानी साम्राज्य सिकन्दर के चरणों पर लोट गया। ईरान की शान शौकत ने सिकन्दर के मन पर बड़ा प्रभाव डाला। वह अपनी महान् सैनिक उपलब्धियों से इतना प्रभावित न हुआ जितना कि ईरान के राजसी ठाठ के जीवन से तथा वहाँ की सुन्दरियों से। उसने रौक्साना नाम की एक वैकिट्टयन राजकुमारी से अपना विवाह किया। उसने अपने सेनाध्यक्षों और अधीनस्थ सरदारों को भी परशियन सुन्दरियों से विवाह करने की अनुमति दे दी। परन्तु वे लोग सिकन्दर की इन बातों को अधिक पसन्द न करते थे। ईरान की विजय के बाद वे लोग अपने घरों को लौट जाना चाहते थे। सिकन्दर की महत्वाकांक्षा यह थी कि विश्व में विजय का डंका बजाया जाय।

सिकन्दर ने बड़ी क्रूरता से विद्रोह का दमन किया। जो लोग उसकी महत्वाकांक्षा के मार्ग में बाधक हुए उन्हें समाप्त कर दिया गया। एक भोंक में उसने अपने एक विश्वास पात्र साथी क्लीटस की जिसने कि एक बार उसकी प्राणरक्षा की थी हत्या करवा दी। उसका स्वभाव क्रूर और निरंकुश हो चला था। वह समझता था कि वह कभी भूल नहीं कर सकता कारण वह तो स्वयं देवता स्वरूप है। विश्व-विजय के स्वप्न देखते हुए उसने अपनी सेनाओं को भारत की ओर बढ़ने की आज्ञा दी।

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश अनेक गणराज्यों में विभाजित था। उनमें पारस्परिक सौहार्द न था और वे सदैव संघर्षरत रहते थे। इसी कारण से सिकन्दर को सम्मिलित शक्ति का सामना नहीं करना पड़ा। कुछ स्वार्थी और देशद्रोही राज्यों ने सिकन्दर को भारत पर चढ़ाई करने का निमन्त्रण भी दिया था। हिन्दूकुश के उत्तर में एक राज्य का अधिपति शशिगुप्त नाम का व्यक्ति था। वह ईरानी साम्राज्य के साथ सिकन्दर से युद्ध में लड़ा था और हार जाने पर सिकन्दर का मित्र बन गया था। शशिगुप्त ने सिकन्दर की भारतीय आक्रमण में सहायता की। इसी प्रकार तक्षशिला के राजकुमार आम्बि ने तो पहिले से ही सिकन्दर को भारत आने का निमन्त्रण भेज रक्खा था कारण उसकी केकयराज पुरु से पुरानी शत्रुता थी और वह पुरु को नीचा दिखाना चाहता था।

परन्तु सिकन्दर भारत में प्रवेश करके तक्षशिला का आतिथ्य तब तक स्वीकार नहीं कर सकता था जब तक कि वह कपिश और तक्षशिला के बीच में बसी हुई वीर जातियों को अपने अधीनस्थ न करले। इन जातियों ने सिकन्दर का डट कर विरोध किया। सबसे पहिले उसे अश्वकों और गोरों से युद्ध करना पड़ा। इन दोनों के पराजित होने के उपरान्त नीसा नाम की जाति के लोगों ने थोड़ा प्रतिरोध करके सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करली। इसके आगे सिकन्दर को मसग राज्य के अश्वहकों से बड़ा भीषण युद्ध करना पड़ा। उनमें से जब तक एक भी

आदमी जीवित रहा उन्होंने आत्म समर्पण न किया। इस भीषण युद्ध में बड़ा नर संहार हुआ। इसके बाद पश्चिमी गांधार के हस्ति नामक राजा ने सिकन्दर के अभियान को एक महीने तक मार्ग में ही रोक लिया। शशिगुप्त और राजकुमार आम्बि की सहायता से सिकन्दर ने सिंधु पार की और तक्षशिला पहुँचा। यहाँ तक के जीते हुए प्रदेश पर उसने शशिगुप्त को अपना क्षत्रप नियुक्त किया।

तक्षशिला पहुँच कर सिकन्दर ने राजकुमार आम्बि का आतिथ्य स्वीकार किया और केकयराज पुरु के पास दूत भेज कर अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहलवाया। पुरु ने उत्तर दिया कि वह तो रणभूमि में ही उसका स्वागत करेगा। सिकन्दर तो यह पहिले से ही जानता था। उसने अपने मित्रों की सेनाओं के साथ अपनी सेना को भेलम नदी के पश्चिमी किनारे पर लगा दिया। उधर पुरु भी अपने मित्र अभिसार के राजा की सेना के साथ अपनी सेनायें लेकर भेलम के पूर्वी किनारे पर आ डटा। महीनों तक दोनों ओर की सेनायें भेलम के दोनों किनारों पर आमने सामने पड़ी रहीं। किसी का एक दूसरे पर आक्रमण करने का साहस न हुआ। सर यदुनाथ सरकार ने इस युद्ध की रणनीति का बड़े रोमांचकारी शब्दों में वर्णन किया है। सिकन्दर युद्धों में दुःसाहस के कार्य करने का आदी होगया था। एक दिन रात को आँधी और वर्षा के अन्धकार में वह अपनी सेना के एक बड़े भाग को बीस मील दूर ऐसे स्थान पर ले गया जहाँ से वह शत्रु को बिना मालुम हुए सिंधु पार कर सकता था। उसी रात्रि को उसकी सेना सिंधु पार करके पुरु के सेनाओं की समीप ही जा डटीं।

पुरु के पास हाथियों और रथों से सुसज्जित एक अपार पदाति सेना थी। उसके सैनिक धनुष-बाण से लड़ने में बड़े कुशल थे। परन्तु दुर्भाग्य यह हुआ कि वर्षा के कारण भूमि में कीचड़ हो जाने से रथ और हाथी करीब-करीब बेकार हो गये। लम्बे धनुषों से उनको भूमि पर रख कर बाण चलाये जाते थे। कीचड़ के कारण धनुषों के प्रयोग में बड़ी बाधा उपस्थित हुई। सिकन्दर के विशाल बल्लमधारी धनुर्धर घुड़ सवारों ने बड़े जोर का आक्रमण किया। दुपहर तक भारतीय सेना ने बड़ी बीरता से युद्ध किया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि सिकन्दर की सेनायें पराजित हो जाँयगी। परन्तु इसी बीच में बाणों और भालों से घायल हाथी क्रुद्ध होकर उन्मत्त हो गये, वे पीछे लौट कर अपनी सेना को ही कुचलने लगे। इस दुर्घटना से पुरु की सेना में भगदड़ मच गई। परन्तु पुरु डेरियस की तरह मैदान छोड़ कर नहीं भागा और रणक्षेत्र के बीच में हाथी पर बैठ आ हुआ सेना का नेतृत्व करता रहा। पराजित होने पर पुरु को सिकन्दर के समीप बन्दी के रूप में खड़ा किया गया। सिकन्दर ने उससे पूछा, “तुम्हारे साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना उचित है।” उसने उत्तर दिया, “जिस प्रकार एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।” सिकन्दर पुरु के स्वाभिमान से बहुत प्रभावित हुआ और उसने पुरु का राज्य उसे लौटाकर उससे मित्रता करली। सिकन्दर के भावी सैनिक अभियानों में पुरु ने उसकी बड़ी सहायता की।

पुरु से सन्धि हो जाने के बाद सिकन्दर ने दो नये नगर बसाये। एक तो अपने अश्व वाउकेफला के नाम पर जो भारत में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ और दूसरा विजयदेवी के नाम से अपनी विजय के उपलक्ष में। इसके बाद सिकन्दर को ग्लुचकायन, अद्रिज और कठ नाम

की जातियों के गणराज्यों से युद्ध करना पड़ा। ग्लुचकायनों की पराजय हुई और उनके ३६ नगर सिकन्दर के आधिपत्य में चले गये। अद्रिजों की राजधानी पिम्प्रामा पर सिकन्दर का अधिकार हो गया। सब से कठिन सामना उसे कठों से करना पड़ा। कठों ने अपनी राजधानी सांकल के चारों ओर रथों का ऐसा घेरा बना लिया था जिसका भेदन सिकन्दर द्वारा सम्भव न हो सका। पुरु की सहायता से सिकन्दर ने कठों पर भी विजय प्राप्त की और उनकी राजधानी सांकल का ध्वंस कर दिया।

सिकन्दर को थोड़े से भारतीय क्षेत्र पर विजय तो प्राप्त हुई परन्तु उसे वह बड़ी मंहगी पड़ी। पश्चिमी एशिया, मिश्र, ईरान और बलख पर तो उसने बड़ी सुगमता से विजय प्राप्त की थी परन्तु भारत में उसे एक-एक इञ्च पर लड़ना पड़ा था। अश्वकों का विरोध, एक महीने तक हस्ति द्वारा रोका जाना, पुरु का लोमहर्षक युद्ध और आखिरी बार कठों का प्रतिरोध सभी घटनाएँ ऐसी थीं जिनसे उसके सैनिक क्षुब्ध थे और भारतीय उपलब्धि को कोई महत्व नहीं देते थे। वे तो वर्षों की विदेश यात्रा के बाद घर लौटना चाहते थे। उन्होंने नन्द साम्राज्य की अग्रणीत सेना और सैन्य सामग्री के वर्णन भी सुन लिये थे। सिकन्दर अब व्यास नदी के किनारे आ पहुँचा था उसके सैनिकों ने भारतीय भूमि पर आगे बढ़ने से कतई इन्कार कर दिया। सिकन्दर ने बड़ा ओजस्वी भाषण दिया, उनकी विश्व विजयिनी वीरता का उनको स्मरण कराया, अनेकों प्रलोभन भी दिये परन्तु वे किसी प्रकार आगे बढ़ने को सहमत न हुए। सिकन्दर बड़ा क्षुब्ध हुआ, ग्लानि के मारे वह तीन दिन तक अपने शिविर से भी न निकला। सैनिकों का आगे न बढ़ने का निर्णय अन्तिम समझ उसने उनको वापिस लौटने का आदेश दे दिया।

सिकन्दर के लौटने का दूसरा कारण उसके जीते हुए प्रदेशों में विद्रोहों का भी था। उसके दो क्षत्रपों (१) निकेनार, (२) शशिगुप्त की हत्या कर दी गई थी। पंजाब के अन्य गणराज्य उससे लड़ने की तयारी भी कर रहे थे। ठण्डे देश से आने वाले यूनानियों को भारतीय उष्ण वातावरण अनुकूल नहीं पड़ रहा था।

सिकन्दर को अपनी वापसी यात्रा में अनेक गणराज्यों से टक्कर लेनी पड़ी। व्यास नदी के किनारे-किनारे सिकन्दर अपने मित्र पुरु के राज्य भेलम की तरफ बढ़ा। वहाँ पहुँच कर उसने अपने जीते हुए प्रदेश की शासन-व्यवस्था की तथा नावों के एक बड़े बेड़े से भेलम नदी में दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। सब से पहिले उसे भेलम की घाटी में नमक की खानों के प्रदेश के राजा सोभूति से टक्कर लेनी पड़ी। यद्यपि उस राज्य के निवासी कठों के समान साहसी, रणकुशल और सम्य थे ऐसा प्रतीत होता है उन्होंने बहुत शीघ्र आत्मसमर्पण कर दिया। वहाँ से आगे चलकर सिकन्दर भेलम और चिनाव के पास पहुँचा। वहाँ सिकन्दर को शिवि गणराज्य से सामना करना पड़ा। उनके पास ४०००० पैदल सेना थी परन्तु सिकन्दर की शक्ति के आगे वे अधिक समय तक न ठहर सके और बहुत शीघ्र परास्त हुए। उसके बाद सिकन्दर को अलगस्त प्रथवा आग्नेय गण के लोगों से सामना करना पड़ा। ये हिसार जिले के अन्तर्गत अग्रोदक के निवासी थे। इन्होंने बड़ा भयङ्कर प्रतिरोध किया। जब इन्होंने देखा कि सिकन्दर को परास्त करना कठिन है तो उन्होंने नगर में आग लगा दी और अपने स्त्री बच्चों को उसमें भोंक कर आप

लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए । इतिहास में इस प्रकार के शौर्य का उदाहरण बहुत कम ही दृष्टिगोचर होता है ।

रावी के दोनों तटों पर मालवों का गणराज्य था । वे सिकन्दर का मार्ग रोकने की तयारी कर रहे थे । उनके पड़ोसी क्षुद्रकों का राज्य पूर्व में व्यास के तट पर था । इन राज्यों में परस्पर संघर्ष रहता था परन्तु विदेशी आक्रान्ता के विरोध में उन्होंने सन्धि करली । एक यूनानी लेखक के अनुसार मैत्री सम्बन्धों को टढ़ करने के लिये मालवों ने अपनी समस्त अविवाहित कुमारियों का विवाह क्षुद्रक कुमारों के साथ कर दिया और क्षुद्रकों ने भी इसी प्रकार अपनी अविवाहित लड़कियों का विवाह मालव-युवकों के साथ कर दिया । एक कुशल क्षुद्रक के नेतृत्व में दोनों जातियों का एक संघ बन गया । यद्यपि इन गणों में कोई स्थिर सेना नहीं थी तथापि इनकी जाति का प्रत्येक पुरुष योद्धा था । जब सिकन्दर के सैनिकों को ज्ञात हुआ कि इतनी लड़ाई लड़ने के बाद भी उन्हें अभी दो अत्यन्त वीर जातियों से और लड़ना है तो बड़े चिन्तातुर हुए और एक बार फिर सिकन्दर के प्रति विद्रोह करने को उद्यत हो गये । परन्तु सिकन्दर के यह कहने पर कि वे स्वदेश वापिस तो जा ही रहे हैं और मार्ग में यदि शत्रु लड़ने पर ही आमादा है तो उन्हें सिवाय युद्ध को और चारा ही क्या है वे शान्त हो गये ।

सिकन्दर ने यहाँ एक चाल चली । पूर्व इसके कि क्षुद्रकों की सेना मालवों की सहायता को आवे उसने मालवों पर आक्रमण कर दिया । मालव उस अचानक वार के लिये तयार न थे । उनकी बड़ी निर्दयता से हत्या की गई । फिर भी वे बड़ी वीरता से लड़े और उसी लड़ाई में सिकन्दर की छाती में एक घाव हो गया जो कि आगे जाकर उसका प्राणलेवा बना । चोट लगने पर सिकन्दर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसकी सेना ने मालव जाति के स्त्री बच्चों और पुरुषों का हजारों की संख्या में बड़ी निर्दयता से बध कर दिया । इसी बीच में क्षुद्रकों की अपार सेना मालवों की सहायता को आ पहुँची थी । सिकन्दर मालवों से लड़ते-लड़ते बहुत थक गया था । उसने क्षुद्रकों से सन्धि करने में ही अपना कल्याण समझा । दोनों पक्षों में सन्धि हो गई । मालवों और क्षुद्रकों के सौ प्रमुख प्रतिनिधि सिकन्दर के समीप उपस्थित हुए । सिकन्दर ने बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत किया । उनको बैठने के लिये सोने की कुर्सियाँ डाली गयीं और उनके स्वागत में एक बड़ा शानदार भोजन दिया गया । क्षुद्रकों और मालवों ने कहा कि आज तक हमारी स्वतन्त्रता अधुणा थी पर आज हम सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करते हैं कारण वह तो लोकोन्तर पुरुष है ।

भारतीय अनुश्रुति के आधार पर डा० जायसवाल का यह कथन है कि संस्कृत के प्राचीन व्याकरण-ग्रन्थों के अनुसार क्षुद्रकों ने सिकन्दर को परास्त किया था । महाभाष्य में लिखा है “एकाकिभिः क्षुद्रकैः जितम्” अर्थात् अनेके क्षुद्रकों द्वारा ही सिकन्दर पराजित हुआ था । जो भी हो, सिकन्दर की क्षुद्रकों से सन्धि बड़ी सम्मानपूर्ण और समानता के स्तर पर सम्पन्न हुई थी ।

इसके पश्चात् दक्षिणी पश्चिमी पंजाब के अम्बष्ठ, क्षत्र और वसाति नाम के गणों से भी सिकन्दर की मुठभेड़ हुई । अम्बष्ठ भी मालव क्षुद्रकों के समान वीर थे । उनकी सेना में ६० हजार

पैदल ६००० अश्वारोही और ५०० रथ थे । भयङ्कर युद्ध के उपरान्त अम्बष्ठ, क्षत्रु और वसाति गण भी पराजित हुए ।

इसके पश्चात् सिन्ध के मुषिक और शम्भु गणराज्यों ने बड़ी सुगमता से अधीनता स्वीकार करके सन्धि कर ली । पर सिन्ध में ब्राह्मणक जनपद के लोगों से सिकन्दर को बड़ी परेशानी हुई । उन्होंने न केवल स्वयं सिकन्दर का विरोध किया वरन् समस्त राज्यों में सिकन्दर के विरुद्ध विद्रोह करा दिया । उन्होंने प्रचार किया कि विदेशी यवनों की अधीनता स्वीकार करना बड़े ल-जा की बात है और राष्ट्रीय सम्मान के विरुद्ध है । सिकन्दर उन पर बड़ा क्रुद्ध हुआ । उसने अधिकांश ब्राह्मणक जनपद के निवासियों का वध करा दिया और उनके नेताओं के शवों को जनता में आतङ्क स्थापित करने के लिये बाजारों में प्रदर्शनायं लटकवा दिया ।

सिन्ध में जहाँ सिन्धु नदी दो धाराओं में विभाजित हो जाती है वहाँ पट्टल, पातन अथवा पातान प्रस्थ नगरों की स्थिति है । वहाँ की सेना का नेतृत्व दो वंश क्रमानुगत राजाओं के हाथ में था । यह नगर उस क्षेत्र में बसे हुए थे जहाँ आजकल हैदराबाद है । यूनानी इतिहासकारों ने वहाँ की शासन विधि की तुलना ग्रीक जनपद स्पार्टा से की हैं । इस राज्य के निवासियों ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार न की और अपने नगर को छोड़ कर अन्यत्र चले गये ।

सिकन्दर तो अपना सैनिक अभियान जारी रखना चाहता था और गङ्गा के मैदानों में उतरना चाहता था परन्तु भारतीय युद्ध के अपने कटु अनुभवों के आधार पर उसके सैनिक न माने जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है । सन् ३२५ ई० पू० में उसने सिन्धु के मुहाने पर पहुँच कर अपनी जन्मभूमि को प्रस्थान कर दिया । उसकी सेना का कुछ भाग निम्नार्कस के नेतृत्व में समुद्र मार्ग से पश्चिम की ओर चला । दूसरा भाग थल मार्ग से मकरान होकर बैबिलोन की तरफ चला । ईरान पहुँच कर सिकन्दर को ईरान के राजभवनों, नगरों और ईरानी सुन्दरियों के आकर्षण ने फिर रोक लिया । उसने दो परशियन सुन्दरियों से शादी की । उसने परशिया में ही बस जाने का निर्णय किया । वह चाहता था कि परशियन और ग्रीक लोगों का एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाया जाय और एक नया धर्म चालू किया जाय जिसका कि वह खुद मसीहा हो । परन्तु भाग्य ने कुछ और ही निर्णय किया था । वह युद्ध के घावों से घायल और रास्ते के श्रम से थका हुआ था । उसे भीषण ज्वर आया । असंयमी तो वह था ही । ज्वर में ही वह मद्यपान करता रहा । परिणाम यह हुआ कि विश्वका वह महान विजेता ३२ वर्ष की युवावस्था में ही स्वदेश पहुँचने के पहिले ही डग संसार से चल बसा ।

सिकन्दर भारत की भूमि पर १६ महीने रहा । इस कालावधि में उसे निरन्तर युद्धरत रहना पड़ा । युद्ध करते रहने की दृष्टि से यह समय बहुत काफी है । इतनी लम्बी अवधि में विश्व विजेता सिकन्दर भारत के केवल पश्चिमोत्तर छोर को ही स्पर्श कर पाया । भारत का हृदय तो उससे बिल्कुल अछूता ही रहा । एक-एक गणराज्य ने उसके सैनिकों को नाकों चने चबा दिये । यदि इन गणराज्यों की संख्या का आधा भाग भी सम्मिलित शक्ति से सिकन्दर का मुकाबिला करता तो परिणाम कुछ और ही होता । परन्तु सिकन्दर के भाग्य में तो अपने सैनिक अभियानों की सफलता के कारण महान कहलाना लिखा था । भारतीयों की वीरता में तो कोई

सन्देह ही नहीं रहा, संगठन शक्ति का अभाव और पारस्परिक कलह ने उनको पराजय का मुँह दिखाया ।

सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर कोई स्थायी प्रभाव न पड़ा । उसके फलस्वरूप भारत का केवल पश्चिमोत्तर प्रदेश, पश्चिमी पंजाब और सिन्ध ही प्रभावित हुए । यूनानी सत्ता यहाँ क्षत्रपीय व्यवस्था के रूप से स्थापित हुई । लेकिन सिकन्दर की मृत्यु के बाद वह फौरन ही नष्ट हो गई । सिकन्दर ने कई स्कन्धावार, उपनिवेश और नगरों की स्थापना की थी । सिकन्दर के आक्रमण से उत्तरी प्रदेश की सैनिक कमजोरी प्रकट हुई । यूनानी आक्रमण ने यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया कि कई भागों में विभक्त देश के छोटे-छोटे राज्य संगठित विदेशी शक्ति का सामना करने में असमर्थ हैं और विदेशी आक्रमण को रोकने के लिये भारतीय एकता और केन्द्रीय मुहृद शासन की आवश्यकता है ।

भारत और मध्यएशिया में यातायात तथा व्यापार की वृद्धि हुई । यों तो भारत और यूनान में पहिले से आवागमन था तथा समुद्री और स्थल मार्ग से व्यापारी और यात्री आते जाते रहते, थे मध्यएशिया में यूनानी साम्राज्य स्थापित होने से इसमें और भी उन्नति हुई ।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव बहुत कम पड़ा । इसका पहिला कारण तो यह है कि सिकन्दर और उसके क्षत्रप यहाँ बहुत थोड़े दिन रहे और दूसरा यह कि भारतीय संस्कृति पहिले ही यूनानी संस्कृति से अधिक विकसित और समुन्नत थी । उसे यूनानियों को देने के लिये सब कुछ था, लेने के लिये कुछ नहीं ।



स्व० श्री पालीवालजी के प्रति

(श्री भगवानदत्त चतुर्वेदी)

जनमन जेता नेता परम उदार चेता,
पर उपकार के विचार सर्व काल थे ।
साहसी सशक्त देशभक्त भव्य भाव भरे,
नाम के न भूँखे काम जिनके कमाल थे ॥
समर स्वतन्त्रा के धोर वीर सेनापति,
गतिमति तीक्ष्ण स्वच्छ उरके विशाल थे ॥
लाल ब्रज भूमि के दयालु दीन दुखियों के,
जन प्रतिपाल कृष्णदत्त पालीवाल थे ॥
साधक ब्रज साहित्य के, आराधक ब्रजराज के,
नाविक पालीवाल थे, भारत लाज जहाज के ॥

U. P. Cooperative Bank Ltd.

H. O. : **LUCKNOW.**

Estd. 1944

[*State Partnered, Govt. Audited, Apex Bank of the
Cooperative movement*]

Regional Offices : BAREILLY, GORAKHPUR, KANPUR,
LUCKNOW, and MEERUT,

Branches : AGRA, BAREILLY, FAIZABAD, KANPUR
Navin Market, KANPUR D. A. V. College,
LUCKNOW Nirala Nagar, LUCKNOW M. G.
Marg, LUCKNOW Naka-Hindola, RAMPUR,
and SITAPUR,

30-6-68

Paid up Share Capital	...	Rs. 4.31	Crores
Owened Funds	...	Rs. 7.68	"
Deposits	...	Rs. 20.63	"
Working Capital		Rs. 60.63	"

Offers Lucrative rates of interest on all types of deposit.

Current Account		$\frac{1}{2}\%$ per annum
Savings Bank Deposit	...	$3\frac{1}{2}\%$ " "
Fixed Deposit	---	4 % to $6\frac{1}{2}\%$ per annum.

D. S. Verma
General Manager

Mathura Singh
Vice-President

A. P. Singh
President

त्रैमासिक पत्रिका
ब्रज भारती
के विषय में विवरण

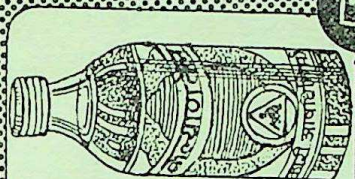
फार्म नं ४

१. प्रकाशन का स्थान— मथुरा ।
२. प्रकाशन का अवधि-क्रम— त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम— श्री हर्ष गुप्त
राष्ट्रीयता— भारतीय
पता— राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा ।
४. प्रकाशक का नाम— श्री वृन्दावन दास
राष्ट्रीयता— भारतीय
पता— ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा ।
५. सम्पादक का नाम— बाबू वृन्दावन दास
राष्ट्रीयता— भारतीय
पता— प्रकाश भवन, मथुरा ।
६. स्वत्वाधिकारी— अ० भा० ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा ।

मैं, वृन्दावन दास, यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं ।

(ह०) वृन्दावन दास
प्रकाशक

कल्याण तैल



गठिया का दर्द
शरीर की जकड़न
जोड़ों में दर्द
पसली के दर्द
कमर में दर्द को
आराम पहुंचाता है

५



निर्माता :-

सहकारी औषधि निर्माणशाला
रानीखेत उ.प्र.

- १-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनमूने धूल में मिला दिए ।
- २-हमारे यहाँ बने हथियारों के मामले अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके ।
- ३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है ।
- ४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है ।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है । जिला सहकारी बैंक में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैंकों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा ।



जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे ।



ब्याज की दरें

मेविंग खाता पर	४	प्रतिशत वार्षिक
कोल डिपोजिट पर	३।।	" "
६ माह की अमानत पर	५।।	" "
१ साल की अमानत पर	६।	" "
२ साल की अमानत पर	६।।	" "
३ साल की अमानत पर	६।।।	" "
४ साल की अमानत पर	७	" "
५ साल की अमानत पर	७।	" "
७ साल की अमानत पर	७।।	" "

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

प्रकाशक:-श्री वृन्दावन दास अध्यक्ष ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा के लिए
श्री हर्ष गुप्त द्वारा राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा में मुद्रित ।

